THE

ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUSPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. V

ANTARA-BHĀVĀLPABAHUTWĀNUGAMA

Edited

with introduction, translation, notes and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M A LL B

C. P Educational Service King Edward College Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Hiralal Siddhānta Shāstri Nyāyatirtha

With the cooperation of

Pandit Devakinandana Siddhānta Shāstri + Dr A. N Upadhye, M A D Litt.

Published by

Shrimanta Seth Shitabrai Laxmichandra,

Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya

AMRAOTI (Berar).

1942

Price rupees ten only

प्रकाशक—
श्रीमन्त सेठ शिताबराय लक्ष्मीचन्द,
जैन-साहित्योद्धारक-फण्ड कार्यालय,
अमरावती (बरार)

मुद्रक—
टी. एम्. पाटील,
मैनेजर
सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, अमरावती (बरार)

THE

ṢAṬKHAṆḌĀGAMA

OF

PUSPADANTA AND BHŪTABALI

WITH

THE COMMENTARY DHAVALĀ OF VĪRASENA

VOL. V

ANTARA BHĀVĀLPABAHUTWĀNUGAMA

Edited

with introduction, translation, notes and indexes

BY

HIRALAL JAIN, M A LL B

C. P Educational Service King Edward College Amraoti.

ASSISTED BY

Pandit Hiralal Siddhānta Shāstri Nyāyatirtha

With the cooperation of

Pandit Devakinandana Siddhānta Shāstri + Dr A. N Upadhye, M A D Litt.

Published by

Shrimanta Seth Shitabrai Laxmichandra,

Jaina Sāhitya Uddhāraka Fund Kāryālaya

AMRAOTI [Berar].

1942

Price rupees ten only

विषय सूची

है, क्योंकि, उनमें मूल पाठके निर्णयकी त्रुटियां तो नहीं के बराबर मिलती हैं, और अनुवादके भी मूलानुगामित्वमें कोई दोष नहीं दिखाये जा सके। हां, जहां शब्दोंकी अनुवृत्ति आदि जोड़ी गई है वहां कहीं कुछ प्रमाद हुआ पाया जाता है। पर एक ओर हम जब अपने अल्प ज्ञान, अल्प साधन सामग्री और अल्प समयका, तथा दूसरी ओर इन महान् ग्रंथोंके अतिगहन विषय-विवेचनका विचार करते हैं तब हमें आश्चर्य इस बातका बिल्कुल नहीं होता कि हमसे ऐसी कुछ भूलें हुई हैं, बल्कि, आश्चर्य इस बातका होता है कि वे भूलें उक्त परिस्थितिमें भी इतनी अल्प हैं। इस प्रकार उक्त छिद्रान्वेषी समालोचकोंके उल्लेख हमें अपने कार्यमें अधिक दृढ़ता और विश्वास ही उत्पन्न हुआ है और इसके लिये हम उनके हृदयसे कृतज्ञ हैं। जो अल्प भी त्रुटि या स्खलन जब भी हमारे दृष्टिगोचर होता है, तभी हम आगामी भागके शुद्धिपत्र व शंका समाधानमें उसका समावेश कर देते हैं। ऐसे स्खलनादिकी सूचना करनेवाले सज्जनोंके हम सदैव आभारी हैं। जो समालोचक अत्यन्त छोटी मोटी त्रुटियोंसे भी बचनेके लिये बड़ी बड़ी योजनायें सुझाते हैं, उन्हें इस बातका ध्यान रखना चाहिये, कि इस प्रकाशनके लिये उपलब्ध द्रव्य बहुत ही परिमित है और इससे भी अधिक कठिनाई जो हम अनुभव करते हैं, वह है समयकी। दिनों दिन काल बड़ा कराल होता जाता है और इस प्रकारके साहित्यके लिये रुचि उत्तरोत्तर हीन होती जाती है। ऐसी अवस्थामें हमारा तो अब मत यह है कि जितने शीघ्र हो सके इस प्राचीन साहित्यको प्रकाशित कर उसकी प्रतियां सब ओर फैला दी जांय, ताकि उसकी रक्षा तो हो। छोटी मोटी त्रुटियोंके सुधारके लिये यदि इस प्रकाशनको रोका गया तो संभव है उसका फिर उद्धार ही न हो पावे और न जाने कैसा संकट आ उपस्थित हो। योजनाएं सुझाना जितना सरल है, स्वार्थत्याग करके आजकल कुछ कर दिखाना उतना सरल नहीं है। हमारा समय, शक्ति, ज्ञान और साधन सब परिमित हैं। इस कार्यके लिये इससे अधिक साधन-सम्पन्न यदि कोई संस्था या व्यक्ति विशेष इस कार्यको भारसे अधिक योग्यताके साथ सम्हालनेको प्रस्तुत हो तो हम सहर्ष यह कार्य उन्हें सौंप सकते हैं। पर हमारी सामर्थ्योंमें फिर हाथ और अधिक विस्तारकी गुंजाइश नहीं है।

प्रस्तुत खंडांशमें जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे अन्तिम तीन प्ररूपणाएं सम्मिलित हैं—अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। इनमें क्रमशः ३९७, ९३ व १८२ सूत्र पाये जाते हैं। इनकी टीकामें क्रमशः लगभग ४८, ६५ तथा ७६ शंका-समाधान आये हैं। हिन्दी अनुवादमें अर्थको स्पष्ट करनेके लिये क्रमशः १, २ और ३ विशेषार्थ लिखे गये हैं। तुलनात्मक व पाठभेद संबंधी टिप्पणियोंकी संख्या क्रमशः २९९, ९३ और १४४ है। इस प्रकार इस ग्रंथ-भागमें लगभग १८९ शंका-समाधान, ६ विशेषार्थ और ५३६ टिप्पण पाये जावेंगे।

सम्पादन-व्यवस्था व प्रूफशोधनके लिये प्रतियोंका उपयोग पूर्ववत् [illegible]। पं. हीरालालजी शास्त्री यह कार्य नियमरूपसे कर रहे हैं। इस [illegible]

प्रस्तावना

INTRODUCTION

This volume contains the last three prarūpaṇās, namely Antara Bhāva and Alpa-bahutva, out of the eight prarūpaṇas of which the first five have been dealt with in the previous volumes The Antara prarupaṇa contains 397 Sūtras and deals with the minimum and maximum periods of time for which the continuity of a single soul (*eka jīva*) or souls in the aggregate (*nānā jīva*) in any particular spiritual stage (Guṇa-sthana) or soul-quest (Mārgaṇā-sthana) might be interrupted It is, thus, a necessary counterpart of kala prarūpaṇā which, as we have already seen, devotes itself to the study of similar periods of time for which continuity in any particular state could uninterruptedly be maintained The standard periods of time are, therefore the same as in the previous prarūpaṇā. The first Guṇasthāna is never interrupted from the point of view of souls in the aggregate i e there is no time when there might be no souls in this Guṇasthāna-some souls will always be at this spiritual stage But a single soul might deviate from this stage for a minimum period of less than 48 minutes (Antaramuhūrta) or for a maximum period of slightly less than 132 Sāgaropamas The second Guṇasthāna may claim no souls for a minimum period of one instant (eka samaya) or for a maximum period of an innumerable fraction of a palyopama, while a single soul might deviate from it in the minimum for an innumerable fraction of a palyopama and at the maximum for slightly less than an Ardha-pudgala-parivartana And so on with regard to all the rest of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas The commentator has explained at length how these periods are obtained by changes of attitude and transformations of life of the souls

The Bhāva prarūpaṇā, in 93 Sūtras deals with the mental dispositions which characterise each Guṇasthāna and Mārgaṇāsthāna. There are five such dispositions of which four arise from the karmas heading for fruition (udaya) or pacification (upaśama) or destruction (kshaya) or partly destruction and partly pacification (kshayopaśama,

while the fifth arises out of the natural potentialities inherent in each soul (pāriṇāmika) Thus, the first Gunasthāna is *audayika*, the second *pāriṇāmika*, the third, fifth, sixth and seventh *kshāyopaśamika*, the fourth *aupaśamika*, *kshāyika* or *kshāyopaśamika*, eighth, ninth and tenth *aupaśamika* or *kshāyika*, eleventh *Aupaśamika* and the twelfth, thirteenth and fourteenth *kshāyika* The commentary explains these at great length

The eighth and last prarūpaṇā is Alpa-bahutva which, as its very name signifies, shows, in 382 Sūtras, the comparative numerical strength of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas It is here shown that the number of souls in the 8th, 9th and 10th *Aupaśamika* Gunasthānas as well as in the 11th is the least of all and mutually equal In the same three *Kshapaka* Gunasthānas and in the 12th, 13th and 14th, they are several times larger and mutually equal This is the numerical order from the point of view of entries (praveśa) into the Gunasthānas From the point of view of the aggregates (saṃcaya) the souls at the 13th stage are several times larger than the last class, and similarly larger at each successive stage are those at the 7th and the 6th stage respectively Innumerably larger than the last at each successive stage are those at the 5th and the 2nd stage, and the last is exceeded several times by those at the 3rd stage At the 4th stage they are innumerably larger and at the 1st infinitely larger successively The whole discussion shows how the exact sciences like mathematics have been harnessed into the service of the most speculative philosophy

The results of these prarupaṇās we have tabulated in charts, as before, and added them to the Hindi introduction

धवलाका गणितशास्त्र

(पुस्तक ४ में प्रकाशित डा. अवधेश नारायण सिंह, लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद)

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित- अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिका अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगया है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके[1] अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी खूब आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य साधना समझी जाती थी[1]।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रंथ, महावीराचार्य कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीराचार्यकी रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रन्थ सामान्य रूपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ- गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्रायः सभी दूसरे ग्रंथोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएं पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलाबार और संभवतः बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थीं। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या

[1] देखो-भगवती सूत्र, अभयदेव सूरिकी टीका सहित, श्रेष्ठी आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित १९१९, सूत्र ९०। जैकोबी कृत उत्तराध्ययन सूत्रका अंग्रेजी अनुवाद, ऑक्सफोर्ड १८९५, अध्याय ७, ८, १८

while the fifth arises out of the natural potentialities inherent in each soul (pārināmika) Thus, the first Gunasthāna is *audayika*, the second *pāriṇāmika*, the third, fifth, sixth and seventh *kshāyopaśamika*, the fourth *aupaśamika*, *kshāyika* or *kshāyopaśamika*, eighth, ninth and tenth *aupaśamika* or *kshāyika*, eleventh *Aupaśamika* and the twelfth, thirteenth and fourteenth *kshāyika* The commentary explains these at great length

The eighth and last prarūpaṇā is Alpa-bahutva which, as its very name signifies, shows, in 382 Sūtras, the comparative numerical strength of the Guṇasthānas and the Mārgaṇāsthānas It is here shown that the number of souls in the 8th, 9th and 10th *Aupaśamika* Guṇasthānas as well as in the 11th is the least of all and mutually equal In the same three *Kshapaka* Guṇasthānas and in the 12th, 13th and 14th, they are several times larger and mutually equal This is the numerical order from the point of view of entries (praveśa) into the Guṇasthānas From the point of view of the aggregates (saṃcaya) the souls at the 13th stage are several times larger than the last class, and similarly larger at each successive stage are those at the 7th and the 6th stage respectively Innumerably larger than the last at each successive stage are those at the 5th and the 2nd stage, and the last is exceeded several times by those at the 3rd stage At the 4th stage they are innumerably larger and at the 1st infinitely larger successively The whole discussion shows how the exact sciences like mathematics have been harnessed into the service of the most speculative philosophy

The results of these prarupaṇās we have tabulated in charts, as before, and added them to the Hindi introduction

धवलाका गणितशास्त्र

(पुस्तक ४ में प्रकाशित डा. अवधेश नारायण सिंह,
लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद)

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित (अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदि) का अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगया है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसमाजके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध या जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नहीं हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी खूब आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य साधना समझी जाती थी[1]।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रंथ, महावीराचार्य कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीराचार्यका लेखनकाल सन् ८५० ई० है। उनका यह ग्रंथ सामान्य रूपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ— गणितसारसंग्रहके प्रश्न (problems) प्रायः सभी दूसरे ग्रंथोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलभ्य गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके अध्ययनसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शालाएं पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलाबार और सम्भवतः बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें प्रस्थापित थीं। जब तक अन्य प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन शालाओंमें परस्पर क्या

१ देखो—दत्तकी [illegible]
१९२९ पृष्ठ १० । [illegible]

[illegible] था। फिर भी हमें पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रूपरेखा तो एकसी है, किन्तु विस्तारसम्बन्धी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान प्रदानका सुयश था, छात्रगण और विद्वान एक शालासे दूसरी शालामें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये आविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्मके प्रचारने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी। सामान्यतः सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य, और मुख्यतः बौद्ध व जैनसाहित्य, बड़ी बड़ी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है। बड़ी संख्याओंके प्रयोगने उन संख्याओंको लिखनेके लिये सरल संकेतोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम (The place value system of notation) का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशयरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें ईस्वी सन्के प्रारम्भ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौद्धधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया क्रमचिन्ह बड़ा शक्तिशाली सिद्ध हुआ, और इसीने गणितशास्त्रको गतिप्रदान कर मुकुलित कर शुल्बसूत्रोंमें प्राप्त वेदकालीन प्रारम्भिक गणितको विकासकी ओर बढ़ाया, और वराहमिहिरके पूर्वके प्रायः पांचवीं शताब्दीके समुज्ज्वल गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया।

एक बड़ी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगाकर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रंथ उपलब्ध हैं, तथापि गणितसम्बन्धी साहित्यमें विच्छेद है। यथार्थतः सन् ४९९ में रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितसम्बन्धी रचना कदाचित् ही कोई हो। अपवादमें बख्शाली प्रति (Bakhshali-Manuscript) नामक वह अधूरी हस्तलिखित ग्रंथ ही है जो सम्भवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है। किन्तु इसकी उपलभ्य हस्तलिखित प्रतिसे हमें उस कालके गणितशास्त्रकी स्थितिके विषयमें कोई विस्तृत वृत्तान्त नहीं मिलता, क्योंकि यथार्थमें वह अंकगणित अथवा अन्य अर्थोंमें प्रयुक्त सदा गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है। वह कुछ चुने हुए गणितसम्बन्धी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणी ही है। इस हस्तलिखित प्रतिसे हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्सम्बन्धी अंकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थीं, और उनके गणितज्ञोंद्वारा संकलित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न (problems) भी ज्ञात थे।

यह ऊपर ही बतला चुके हैं कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विकसित रूप है, क्योंकि इसमें इससे भिन्न विविध विषयोंका उल्लेख मिलता है— वर्तमानकालीन प्रारम्भिक

गणितके सब भाग जिनमें अनुपात, विनिमय और ब्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा और वर्ग समीकरण, और सरल कुट्टक (indeterminate equations) की प्रक्रिया द्र बीजगणित भी है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभटने अपना ननाम विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभटीयमें अन्तर्हित है वह भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है? आर्यभट लिखते हैं "ब्रह्म, पृथ्वी, चंद्र, बुध, शुक्र, मगल, बृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट उस ज्ञानका वर्णन करता जिसका कि यहाँ कुसुमपुरमें आदर है[१]।" इससे पता चलता है कि उसने तसे कुछ ग्रहण नहीं किया। दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही ान होता है, क्योंकि आर्यभटीय गणित ससारके किसी भी देशके तत्कालीन गणितसे आगे बढ़ा हुआ था। विदेशसे ग्रहण करनेकी सभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर उपस्थित होता है कि आर्यभटसे पूर्वकालीन गणितशास्त्रसबधी कोई ग्रथ उपलब्ध क्यों है? इस शकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्के प्रारंभ के लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पाँच शताब्दियाँ गई होंगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभटका ग्रथ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रथ र होता है। आर्यभटके ग्रथसे पूर्वके ग्रथोंमें या तो पुराना सख्यापद्धतिका प्रयोग था, अथवा, मयकी कसौटी पर ठीक उतरने लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टिसे आर्यभटकी न ख्यातिका कारण, मेरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंने ही सर्वप्रथम एक ग्रथ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभटके ही कारण ी पुस्तकें अप्रचलित और विलीन हो गईं। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ श्चात् लिखी हुई तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रथ उपलब्ध हैं।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीसे पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका ण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्य से पूर्वके भारतीय गणितज्ञानका बोध करानेवाले ग्रथोंकी खोज करना एक विशेष महत्व काम हो जाता है। गणितशास्त्रसबधी ग्रथोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्व ीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुन निर्माण करनेके लिये हमें हिंदुओं, बौद्धों और

[१] ब्रह्मकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य ।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥ आर्यभटीय २, १

ब्रह्मभूमिनक्षत्रगणान्नमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्ये स्मिन्देशे अभ्यर्चितं ज्ञानं कुसुमपुरवासिभि पूजितं ाविज्ञानसाधनभूत तन्त्रमार्यभटो निगदति । (परमेश्वराचार्यकृत टीका)

जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषतः धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करना पड़ती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रंथोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी द्योतक है, और वह उस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्रायः तीन चार शताब्दियां पुरानी होती है। अतः यदि हम सन् ४०० से ८०० तककी किसी धार्मिक या दार्शनिक कृतिकी परीक्षा करें तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारम्भसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरूपणके प्रकाशमें ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारम्भकी रचना षट्खण्डागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्वपूर्ण समझते हैं। श्रीयुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरूपसे कृतज्ञताका ऋणी बना लिया है।

गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन् १९१२ में रंगाचार्यद्वारा गणितसारसंग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको अवगत होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णतः जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी।[1] हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रंथोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितसंबंधी उल्लेखोंका पता चला है।[2] जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभक्त है जो अनुयोग, (जैनधर्मके) तत्वोंका स्पष्टीकरण, कहलाते हैं। उनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबंधी तत्वोंका स्पष्टीकरण, है। इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रको कितना उच्च पद दिया गया है।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात हैं, परन्तु उनकी कृतियां लुप्त हो गई हैं। इनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे। वे ज्योतिष विषयके दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका, और (२) भद्रबाहवी संहिता नामक एक मौलिक ग्रंथ। मलयगिरि (लगभग ११५० ई.) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है और भट्टोत्पल (९६६) ने उनके ग्रंथके अवतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिर्विद्‌का उल्लेख वराहमिहिर (५०५) और भट्टोत्पल द्वारा दिये गये

१ देखो—ऐम. रंगाचार्यद्वारा सम्पादित गणितसारसंग्रहकी प्रस्तावना, डी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, पृष्ठ १४.

२ बी. दत्त, दि जैन स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स, बुलेटिन कलकत्ता मैथमेटिकल सोसायटी, जिल्द २१ (१९२९), पृष्ठ ११५-१४५.

३ [illegible] पृ. ११६

है। अर्धमागधी और प्राकृत भाषामें लिखे हुए गणितसम्बन्धी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। धवलामें इसप्रकारके बहुसंख्यक अवतरण विद्यमान हैं। इन अवतरणोंपर यथास्थान विचार किया जायगा। किन्तु यहां यह बात उल्लेखनीय है कि ये अवतरण निःसंशयरूपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिखे गये गणितग्रंथ थे जो कि अब लुप्त हो गये हैं[1]। क्षेत्रसमास और करणभावनाके नामसे जैन विद्वानोंद्वारा लिखित ग्रंथ गणितशास्त्रसम्बन्धी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यंत खंडित ज्ञान स्थानांग सूत्र, उमास्वातिकृत तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार आदि गणितेतर ग्रन्थोंसे संकलित है। अब इन ग्रन्थोंमें धवलाका नाम भी जोड़ा जा सकता है।

धवलाका महत्व

धवला नौवीं सदीके प्रारम्भमें वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्वज्ञानी और धार्मिक दिव्यपुरुष थे। वे वस्तुतः गणितज्ञ नहीं थे। अतः जो गणितशास्त्रीयसामग्री धवलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचका इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया है। ये टीकाकार कुंदकुंद, शामकुंद, तुंबुलूर, समन्तभद्र और बप्पदेव थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अंतिम सन् ६०० के लगभग हुए। अतः धवलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है। इस प्रकार भारतवर्षीय गणित शास्त्रके इतिहासकारोंके लिये धवला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रंथ हो जाता है, क्योंकि उसमें हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अंधकारपूर्ण समय, अर्थात् पांचवीं शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं। विशेष अध्ययनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि धवलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है। उदाहरणार्थ– धवलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रंथमें नहीं पाई जातीं, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थूलताका आभास भी है जिसकी झलक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है। धवलाके गणितभागमें वह परिपूर्णता और परिष्कार नहीं है जो आर्यभटीय और उससे पश्चात्के ग्रंथोंमें है।

धवलान्तर्गत गणितशास्त्र

संख्याएं और संकेत—धवलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णतः परिचित हैं। इसके प्रमाण

---

१ शीलांकने सूत्रकृतांगसूत्र, समयाध्ययन अनुयोगद्वार श्लोक २८, पर अपनी टीकामें भंगसम्बन्धी (regarding permutations and combinations) तीन नियम उद्धृत किये हैं। ये नियम किसी जैन गणित ग्रन्थमेंसे लिये गये ज्ञात पड़ते हैं।

सर्वत्र उपलब्ध होते हैं। हम यहां धवलाके अंतर्गत अवतरणोंमें दी गईं संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते हैं—

(१) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह बार ९ की पुनरावृत्ति है[1]।

(२) ४६६६६६६४ व्यक्त किया गया है– चौंसठ, छह सौ, छयासठ हजार, छयासठ लाख, और चार करोड[2]।

(३) २२७९९४९८ व्यक्त किया गया है— दो करोड़, सत्ताइस, निन्यानवे हजार, चारसौ और अट्ठानवे[3]।

इनमेंसे (१) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोंमें भी पायी जाती है, और गणितसारसंग्रहमें[4] भी कुछ स्थानोंमें है। उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है। (२) में छोटी संख्याएं पहले व्यक्त की गई हैं। यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है। उसी प्रकार यहां संकेत-क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणतः संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है[5]। किंतु पाली और प्राकृतमें सौ का क्रम ही प्रायः उपयोगमें लाया गया है। (३) में सबसे बडी संख्या पहले व्यक्त की गई है। अवतरण (२) और (३) स्पष्टतः भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं।

बडी संख्यायें— यह सुविदित है कि जैन साहित्यमें बडी संख्यायें बहुतायतसे उपयोगमें आई हैं। धवलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों (द्रव्यप्रमाण) आदि पर तर्क वितर्क है। निश्चितरूपसे लिखी गई सबसे बडी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है। यह संख्या धवलामें[6] दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है। याने—

$२^{२^६}$ और $२^{२^७}$ के बीचकी। अथवा, और अधिक नियत- $(१,००,००,०००)^३$ और $(१,००,००,०००)^४$ के बीचकी। अथवा, सर्वथा निश्चित- $२^{२^५} \times २^{२^६}$। इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ है।

---

१ ध भाग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१। देखो गोम्मटसार, जीवकांड पृष्ठ ६३३

२ ध भाग ३, पृ ९९, गाथा ५२   ३ ध भाग ३ पृ १००, गाथा ५३

४ देखो– गणितसारसंग्रह १, २७ और भी देखो– दत्त और सिंहका हिन्दूगणितशास्त्रका इतिहास, जिल्द १, लाहौर १९३५ पृ १६   ५ दत्त और सिंह, पूर्ववत्, पृ १४

६ ध भाग ३ पृ २५३   ७ गोम्मटसार, जीवकांड, (से बु जै सीरिज) पृ १०४

वर्गित-संवर्गित

पारिभाषिक शब्द वर्गित संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ—$न^{न}$ न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका 'विरलन' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एक-एकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

११११ ... न बार

'देय' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एककी जगह न (विवक्षित संख्या) को रख देना। फिर उस विरलन देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित संवर्गित $न^{न}$।

विरलन-देयकी एकबार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $न^{न}$ को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^{न})^{न^{न}}$ प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकबार करनेसे न का तृतीय वर्गित संवर्गित $\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}^{\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}}$ प्राप्त होता है।

धवलामें इस प्रक्रियाका प्रयोग तीन बारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तीसरे वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकबार बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके सम्बन्धमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $२५६^{२५६}$ हो जाता है।

घातांक सिद्धान्त

यह स्पष्ट बतलाया गया है कि घातांक सम्बन्धी निम्नलिखित सिद्धान्त सुपरिचित थे। जैसे—

(१) $अ^{म} \cdot अ^{न} = अ^{म+न}$

(२) $अ^{म} / अ^{न} = अ^{म-न}$

(३) $(अ^{म})^{न} = अ^{मन}$

१ धवला [illegible]

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसम्बन्धी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]—कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्ध आता है। अर्थात्—

$$२^{२^{७}}/२^{२^{६}} = २^{२^{६}}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया था तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएं (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रंथोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसम्बन्धी ग्रंथोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिह्न मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पता चलता है। धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधार वाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिक्थ (Logarithm)

धवलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं[2]—

(१) अर्धच्छेद— जितनी बार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकती है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं। जैसे— $२^{म}$ के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं—

क का अछे (या अछे क) = लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) वर्गशलाका— किसी संख्याके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद उस संख्याकी वर्गशलाका होती है। जैसे— क की वर्गशलाका = वश क = अछे अछे क = लरि लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) त्रिकच्छेद[3]— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे— क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि३ क। यहां लघुरिक्थका आधार ३ है।

---

१ धवला भाग ३, पृ. २५३ आदि २ धवला भाग ३, पृ. २१ आदि

३ धवला भाग ३, पृ. ५६

वर्गित-संवर्गित

पारिभाषिक शब्द वर्गित संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ—$न^न$ न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका 'विरलन' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

१ १ १ १ १ ... न बार

'देय' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एकके जगह न (विरलित संख्या) को रख देना। फिर उस विरलन देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित संवर्गित $न^न$।

विरलन देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $न^न$ को लेकर वही विधि फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^न)^{न^न}$ प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे

न का तृतीय वर्गित संवर्गित $\left\{(न^न)^{न^न}\right\}^{\left\{(न^न)^{न^न}\right\}}$ प्राप्त होता है।

धवलामें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन बारसे अधिक [illegible] नहीं हुआ है। किंतु, तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकवार बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके सम्बन्धमें [illegible] है। इस प्रक्रियासे कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $२५६^{२५६}$ हो जाता है।

घाताङ्क सिद्धान्त

ज्ञात होता है कि धवलाकार घाताङ्क सिद्धान्तसे पूर्ण परिचित थे। जैसे—

(१) $अ^म \cdot अ^न = अ^{म+न}$

(२) $अ^म / अ^न = अ^{म-न}$

(३) $(अ^म)^न = अ^{मन}$

[illegible]

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसंबंधी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]—कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्ध आता है। अर्थात्—

$$२^{२^७}/२^{२^६} = २^{२^६}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया था तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएं (The operations of duplation and mediation) महत्त्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रंथोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसंबंधी ग्रंथोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिह्न मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। इसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पता चलता है। धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधार वाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिक्थ (Logarithm)

धवलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं[2]—

(१) अर्धच्छेद— जितनी बार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकती है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं। जैसे— $२^म$ के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं—

क का अछे (या अछे क) = लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) वर्गशलाका— किसी संख्याके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद उस संख्याकी वर्गशलाका होती है। जैसे— क की वर्गशलाका = वश क = अछे अछे क = लरि लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) त्रिकच्छेद[3]— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे— क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि३ क। यहां लघुरिक्थका आधार ३ है।

---

१ धवला भाग ३, पृ. २५३ आदि २ धवला भाग ३, पृ. २१ आदि.
३ धवला भाग ३, पृ. ५६

वर्गित-संवर्गित

पारिभाषिक शब्द वर्गित संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

उदाहरणार्थ—$न^{न}$ न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आता है। किसी संख्याका 'विरलन' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

१ १ १ १ १ न बार

'देय' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एकके जगह न (विरलित संख्या) को रख देना। फिर उस विरलन देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित संवर्गित $न^{न}$।

विरलन-देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $न^{न}$ को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^{न})^{न^{न}}$ प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे न का तृतीय वर्गित संवर्गित $\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}^{\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}}$ प्राप्त होता है।

धवलाने उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन बारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकबार बड़ी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके सम्बन्धमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी बड़ी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $२५६^{२५६}$ हो जाता है।

घातांक सिद्धान्त

इससे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्ण परिचित थे। जैसे—

(१) $अ^{म} \cdot अ^{न} = अ^{म+न}$

(२) $अ^{म} / अ^{न} = अ^{म-न}$

(३) $(अ^{म})^{न} = अ^{मन}$

[illegible]

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसम्बन्धी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]— कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्ध आता है। अर्थात्—

$$२^{२^{७}}/२^{२^{६}} = २^{२^{६}}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया था तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रम प्रक्रियाएं (The operations of duplation and mediation) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रन्थोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिह्न नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसम्बन्धी ग्रन्थोंमें वे स्वतन्त्र स्वीकार की जाती थीं। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिह्न मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयतः द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। इसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पता चलता है। धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधार वाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

लघुरिक्थ (Logarithm)

धवलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं[2]—

(१) अर्धच्छेद— जितनी बार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकती है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं। जैसे— $२^{म}$ के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं—

क का अछे (या अछे क) = लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) वर्गशलाका— किसी संख्याके अर्धच्छेदोंके अर्धच्छेद उस संख्याकी वर्गशलाका होती है। जैसे— क की वर्गशलाका = वश क = अछे अछे क = लरि लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) त्रिकच्छेद[3]— जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे— क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = $लरि_{३}$ क। यहां लघुरिक्थका आधार ३ है।

---

१ धवला भा. ३, पृ. २०१ आदि २ धवला भा. ३, पृ. २१ आदि

३ धवला भा. ३, पृ. ५६

(४) चतुर्थच्छेद[1]—जितने बार एक संख्या उत्तरोत्तर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्याके चतुर्थच्छेद होते हैं। जैसे— क के चतुर्थच्छेद = चछे क = लरि ४ क। यहां लघुरिक्थका आधार ४ है।

धवलामें लघुरिक्थसंबंधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है—

(१)[2] लरि (म/न) = लरि म − लरि न

(२) लरि (म न) = लरि म + लरि न

(३)[3] २ लरि म　= म। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(४)[4] लरि$(क^{क})^{२}$ = २ क लरि क

(५)[5] लरि लरि $(क^{क})^{२}$ = लरि क + १ + लरि लरि क,

(बाईं ओर) = लरि (२ क लरि क)

= लरि क + लरि २ + लरि लरि क

= लरि क + १ + लरि लरि क।

चूंकि लरि २ = १, जब कि आधार २ है।

(६)[6] लरि $(क^{क})^{क^{क}}$ = $क^{क}$ लरि $क^{क}$

(७) मानलो अ एक संख्या है, तो—

अ का प्रथम वर्गित-संवर्गित = $अ^{अ}$ = ब (मानलो)

,, द्वितीय　,,　= $ब^{ब}$ = म　,,

,, तृतीय　,,　= $म^{म}$ = म　,,

धवलामें निम्न परिणाम दिये गये हैं —

(क) लरि ब = अ लरि अ

(ख) लरि लरि ब = लरि अ + लरि लरि अ

(ग) लरि म = ब लरि ब

---

१ धवला भाग ३ पृ ५६　२ धवला भाग ३ पृ ६०　३ धवला, भाग ३, पृ ५५

४ धवला भाग ३ पृ २१ आदि　५ पूर्ववत्

६ पूर्ववत्। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि इसमें व लघुरिक्थ पूर्णांकों तक ही परिमित नहीं हैं। इसका क व ? भी संख्या हो सकती है। $क^{क}$ प्रथम वर्गितसंवर्गित राशि और $(क^{क})^{क^{क}}$ द्वितीय वर्गित संवर्गित है।

७ धवला, भाग ३, पृ २१-२४

(घ) लरि लरि म = लरि व + लरि लरि व

= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ

(ङ) लरि म = म लरि म

(च) लरि लरि म = लरि म + लरि लरि म। इत्यादि

(८)[1] लरि लरि म < व^2

इस असाम्यतासे भिन्न असाम्यता आती है—

व लरि व + लरि व + लरि लरि व < व^2

भिन्न— अकगणितमें भिन्नोंकी मौलिक प्रक्रियाओं, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहां हम भिन्नसंबंधी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते हैं जो अन्य किसी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रंथमें नहीं मिलते। इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय हैं—

(१)[2] $$\frac{\text{न}^2}{\text{न} \pm (\text{न}/\text{प})} = \text{न} \mp \frac{\text{न}}{\text{प} \pm १}$$

(२)[3] मान लो कि किसी एक संख्या म में द, द' ऐसे दो भाजकों का भाग दिया गया और उनसे क्रमशः क और क' ये दो लब्ध (या भिन्न) उत्पन्न हुए। निम्न लिखित सूत्रमें म के द ± द' से भाग देने का परिणाम दिया गया है—

$$\frac{\text{म}}{\text{द} \pm \text{द}'} = \frac{\text{क}'}{(\text{क}'/\text{क}) \pm १}$$

$$\text{अथवा} = \frac{\text{क}}{१ \pm (\text{क}/\text{क}')}$$

(३)[4] यदि $\frac{\text{म}}{\text{द}} = \text{क}$, और $\frac{\text{म}'}{\text{द}} = \text{क}'$, तो— द (क – क') + म' = म

(४)[5] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, तो— $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \frac{\text{ब}}{\text{न}}} = \text{क} - \frac{\text{क}}{\text{न} + १};$$

१ धवला, भाग ३ पृ २४ ३ धवला भाग ३ पृ ४६
२ धवला भाग ३, पृ ४१ ४ धवला भाग ३ पृ ४७ गाथा २७
५ भाग ३, पृ ४६, गाथा २४

और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \frac{\text{ब}}{\text{न}}} = \text{क} + \frac{\text{क}}{\text{न} - १}$

(५)[1] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, तो— $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{स}} = \text{क} - \frac{\text{क}}{\frac{\text{ब}}{\text{स}} + १}$;

और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \text{स}} = \text{क} + \frac{\text{क}}{\frac{\text{ब}}{\text{स}} - १}$

(६)[2] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} + \text{स}$, तो—

$$\text{ब}' = \text{ब} - \frac{\text{ब}}{\frac{\text{क}}{\text{स}} + १},$$

और यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} - \text{स}$, तो— $\text{ब}' = \text{ब} + \frac{\text{ब}}{\frac{\text{क}}{\text{स}} - १}$

(७)[3] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} - \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'}$ दूसरा भिन्न है, तो—

$$\frac{\text{अ}}{\text{ब}} - \frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} \left(\frac{\text{ब}' - \text{ब}}{\text{ब}'}\right)$$

(८)[4] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{ख}} = \text{क} - \text{स}$, तो— $\text{ख} = \frac{\text{ब स}}{\text{क} - \text{स}}$

(९)[5] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \text{ख}} = \text{क} + \text{स}$, तो— $\text{ख} = \frac{\text{ब स}}{\text{क} + \text{स}}$

(१०)[6] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{स}} = \text{क}'$, तो— $\text{क}' = \text{क} - \frac{\text{क स}}{\text{ब} + \text{स}}$

---

१ भाग ३, पृ ४६, गाथा २४

२ भाग ३, पृ ४६, गाथा २५

३ भाग ३, पृ ४६ गाथा २८

४ भाग ३, पृ ४८, गाथा २९

५ भाग ३, पृ ४९, गाथा ३०

६ भाग ३, पृ ४९, गाथा ३१

और $\frac{अ}{ब - \frac{ब}{न}} = क + \frac{क}{न - १}$

(५)[1] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, तो— $\frac{अ}{ब + स} = क - \frac{क}{\frac{ब}{स} + १}$,

और $\frac{अ}{ब - स} = क + \frac{क}{\frac{ब}{स} - १}$

(६)[2] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब'} = क + स$, तो—

$$ब' = ब - \frac{ब}{\frac{क}{स} + १},$$

और यदि $\frac{अ}{ब'} = क - स$, तो— $ब' = ब + \frac{ब}{\frac{क}{स} - १}$

(७)[3] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब'}$ दूसरा भिन्न है, तो—

$$\frac{अ}{ब} - \frac{अ}{ब'} = क\ (\frac{ब' - ब}{ब'})$$

(८)[4] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब + स} = क - स$, तो— $स = \frac{ब\ स}{क - स}$

(९) यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब - स} = क + स$, तो— $स = \frac{ब\ स}{क + स}$

(१०) यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब + स} = क'$, तो— $क' = क - \frac{क\ स}{ब + स}$

---

१ भाग ३ पृ ४६ गाथा २८   २ भाग ३ पृ ४६ गाथा २५
३ भाग ३ पृ ४६ गाथा २८   ४ भाग ३, पृ ४६, गाथा ३
५ भाग ३ पृ ४, गाथा ३   ६ भाग ३ पृ ४२, गाथा ३१

$$(११)^{1}\ \text{यदि}\ \frac{अ}{ब} = क,\ \text{और}\ \frac{अ}{ब - स} = क',\ \text{तो}\ क' = क + \frac{क\,स}{ब - स}$$

ये सब परिणाम धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। ये किसी भी गणित सबंधी ज्ञात ग्रंथमें नहीं मिलते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रंथोंके हैं। अनुमान यही होता है कि ये सब किन्हीं गणितसंबंधी जैन ग्रंथोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिये गये हैं। ये अंकगणितकी किसी सारभूत प्रक्रियाका निरूपण नहीं करते। ये उस कालके स्मारकस्वरूप हैं जब कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चयतः उस कालके हैं जब कि दाशमिक क्रमका अंकगणितकी प्रक्रियाओंमें उपयोग सुप्रचलित नहीं हुआ था।

त्रैराशिक— त्रैराशिक क्रियाका धवलामें अनेक स्थानों पर उल्लेख और उपयोग किया गया है। इस प्रक्रियासंबंधी पारिभाषिक शब्द हैं— फल, इच्छा और प्रमाण— ठीक वही जो ज्ञात ग्रंथोंमें मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतवर्षमें दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

अनन्त

बड़ी संख्याओंका प्रयोग—'अनन्त' शब्दका विविध अर्थोंमें प्रयोग सभी प्राचीन जातियोंके साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पीछे आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्हीं लोगोंद्वारा विकसित हुई जो बड़ी संख्याओंका प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमें ऐसी संख्याओंके अभ्यस्त थे। निम्न विवेचनसे यह प्रकट हो जायगा कि भारतवर्षमें जैन दार्शनिक अनन्तसे संबंध रखनेवाली विविध भावनाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासंबंधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निकालनेमें सफल हुए।

बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये उचित संकेतोंका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब विचारक और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुंच जाते हैं। यूरोपमें आर्किमिडीजने समुद्र-तटकी रेतके कणोंके प्रमाणके अंदाज लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोंने अनन्त एवं सीमा (limit) के विषयमें विचार किया था। किन्तु उनके पास बड़ी संख्याओंको व्यक्त करनेके योग्य संकेत नहीं थे। भारतवर्षमें हिन्दू, जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बड़ी संख्याओंका प्रयोग किया और उस कार्यके लिये उन्होंने उचित संकेतोंका

भी आविष्कार किया। विशेषत जैनियोंने लोकभरके समस्त जीवों, काल प्रदेशों और क्षेत्र अथवा आकाश प्रदेशों आदिके प्रमाणका निरूपण करनेका प्रयत्न किया है।

बडी सख्यायें व्यक्त करनेके तीन प्रकार उपयोगमें लाये गये—

(१) दाशमिक क्रम (Place value notation)— जिसमें दशमानका उपयोग किया गया। इस सबधमें यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानके[1] आधारपर $१०^{१४}$ जैसी बडी सख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

(२) घातांक नियम (Law of indices वर्ग सवर्ग) का उपयोग बडी सख्याओंको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेके लिये किया गया। जैसे—

(अ) $२^२ = ४$

(ब) $(२^२)^{२^२} = ४^४ = २५६$

(स) $\{(२^२)^{२^२}\}^{\{(२^२)^{२^२}\}} = २५६^{२५६}$

जिसको २ का तृतीय वर्गित सवर्गित कहा है। यह सख्या समस्त विश्व (universe) के विद्युत्कणों (protons and electrons) की सख्यासे बडी है।

(३) लघुरिक्थ (अर्धच्छेद) अथवा लघुरिक्थके लघुरिक्थ (अर्धच्छेदशलाका) का उपयोग बडी सख्याओंके विचारको छोटी सख्याओंके विचारमें उतारनेके लिये किया गया। जैसे—

(अ) $लरि_२\ २^२ = २$

(ब) $लरि_२\ लरि_२\ ४^४ = ३$

(स) $लरि_२\ लरि_२\ २५६^{२५६} = ११$

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी सख्याओंको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारका उपयोग करते हैं। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहां बडी सख्याओंका गणित करना पडता है, वहां लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञानमें परिमाणों (magnitudes) को व्यक्त करनेके

---

[1] बडी संख्याओं तथा संख्या-नामोंके संबंधमें विशेष जाननेके लिये देखिये दत्त और सिंह कृत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास (History of Hindu Mathematics), मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ. ११ आदि

(२) स्थापनानन्त[1]— आरोपित या आनुषंगिक, या स्थापित अनन्त। यह भी यथार्थ अनन्त नहीं है। जहां किसी वस्तुमें अनन्तका आरोपण कर लिया जाता है वहां इस शब्दका प्रयोग किया जाता है।

(३) द्रव्यानन्त[1]— तत्काल उपयोगमें न आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस शब्दका उपयोग उन पुरुषोंके लिये किया जाता है जिन्हें अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है, किन्तु वर्तमानमें उपयोग नहीं है।

(४) गणनानन्त— संख्यात्मक अनन्त। यह संज्ञा गणितशास्त्रमें प्रयुक्त वास्तविक अनन्तके अर्थमें आई है।

(५) अप्रदेशिकानन्त— परिमाणहीन अर्थात् अत्यन्त अल्प परमाणुरूप।

(६) एकानन्त— एकदिशात्मक अनन्त। यह वह अनन्त है जो एक दिशामें [illegible] एक रेखारूपसे देखनेमें प्रतीत होता है।

(७) विस्तारानन्त— द्विविस्तारात्मक अथवा पृष्ठदेशीय अनन्त। इसका अर्थ है [illegible]।

(८) उभयानन्त— द्विदिशात्मक अनन्त। इसका उदाहरण है एक सीधी रेखा जो दोनों दिशाओंमें अनन्त तक जाती है।

(९) सर्वानन्त— आकाशात्मक अनन्त। इसका अर्थ है त्रिधा-विस्तृत अनन्त, अर्थात् [illegible]।

(१०) भावानन्त— तत्काल उपयोगमें आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस शब्दका उपयोग उन पुरुषोंके लिये किया जाता है जिन्हें अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है और जिनका उसमें उपयोग है।

(११) शाश्वतानन्त— निरवच्छिन्न या अविनाशी अनन्त।

ऊपर दी हुई सूची [illegible] है जिससे उन सब अर्थोंका स्पष्टता हो जाता है जिन अर्थोंमें [illegible] शब्दका प्रयोग जैन साहित्यमें हुआ है।

---

१ [illegible]

२ [illegible]

गणनानन्त (Numerical infinite)

धवलामें यह स्पष्टरूपसे कह दिया गया है कि प्रस्तुतमें अनन्त शब्दका प्रयोग[1] गणनानन्तके अर्थमें ही लिया गया है, अन्य अनन्तोंके अर्थमें नहीं, 'क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके द्वारा प्रमाणका प्ररूपण नहीं पाया जाता'[1]। यह भी कहा गया है कि 'गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है'[2]। इस कथनका अर्थ समझना यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणनानन्तकी परिभाषा अधिक विशदरूपसे भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और ज्ञान भी सुप्रचलित हो गया था। किंतु धवलामें अनन्तकी परिभाषा नहीं दी गई। तो भी अनन्तसम्बन्धी प्रक्रियाएं संख्यात और असंख्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत बार उल्लिखित हुई हैं।

संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन साहित्यमें प्राचीनतम ज्ञात कालसे किया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहा। प्राचीनतर ग्रंथोंमें अनन्त सचमुच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसकी परिभाषा करते हैं। किंतु पीछेके ग्रंथोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया। उदाहरणार्थ– नेमिचंद्र द्वारा दशवीं शताब्दिमें लिखित ग्रंथ त्रिलोकसारके अनुसार परीतानन्त, युक्तानन्त एवं जघन्य अनन्तानन्त एक बड़ी भारी संख्या है, किंतु है वह सान्त। उस ग्रंथके अनुसार संख्याओंके तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं—

(१) संख्यात—जिसका संकेत हम स मान लेते हैं।

(२) असंख्यात—जिसका संकेत हम अ मान लेते हैं।

(३) अनन्त—जिसका संकेत हम न मान लेते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या प्रमाणोंके पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं—

(१) संख्यात— (गणनीय) संख्याओंके तीन भेद हैं—

(अ) जघन्य संख्यात (अल्पतम संख्या) जिसका संकेत है [illegible] है।

(ब) मध्यम संख्यात (बीचकी संख्या) जिसका संकेत हम [illegible] है।

१ धवला ३ पृ. १९

ण च सेसअणंतेहि पमाणस्स [illegible] । ध. [illegible]

२ जं तं गणणाणंतं तं बहुवण्णणीयं सुगमं च । ध. ३ पृ. १९

१	जघन्य युक्तानन्त	न यु ज
२	मध्यम-युक्तानन्त	न यु म
३	उत्कृष्ट-युक्तानन्त	न यु उ
१	जघन्य अनन्तानन्त	न न ज
२	मध्यम अनन्तानन्त	न न म
३	उत्कृष्ट अनन्तानन्त	न न उ

संख्यातका संख्यात्मक परिमाण— सभी जैन ग्रंथोंके अनुसार जघन्य संख्यात २ है, क्योंकि, उन ग्रंथोंके मतसे भिन्नताकी बोधक यही सबसे छोटी संख्या है। एकको संख्यातमें सम्मिलित नहीं किया। मध्यम संख्यातमें २ और उत्कृष्ट संख्यातके बीचकी समस्त गणना आ जाती है, तथा उत्कृष्ट संख्यात जघन्य परीतासंख्यातसे पूर्ववर्ती अर्थात् एक कम गणनाका नाम है। अर्थात् स उ = अ प ज – १। अ प ज को त्रिलोकसारमें निम्न प्रकारसे समझाया है[1]—

जैन भूगोलानुसार यह विश्व, अर्थात् मध्यलोक, भूमि और जलके क्रमवार वलयोंसे बना हुआ है। उनकी सीमाएं उत्तरोत्तर बढ़ती हुई त्रिज्याओंवाले समकेन्द्रीय वृत्ताकार हैं। किसी भी भूमि या जलमय एक वलयका विस्तार उससे पूर्ववर्ती वलयके विस्तारसे दुगुना है। केन्द्रवर्ती वृत्त (सबसे प्रथम वलयका वृत्त) एक लाख (१००,०००) योजन व्यासवाला है, और जम्बूद्वीप कहलाता है।

अब बेलनके आकारके चार ऐसे गड्ढोंकी कल्पना कीजिये जो प्रत्येक एक लाख योजन व्यासवाले और एक हजार योजन गहरे हों। इन्हें अ$_1$, ब$_1$, स$_1$ और द$_1$ कहिये। अब कल्पना कीजिये कि अ$_1$ सरसोंके बीजोंसे पूरा भर दिया गया और फिर भी उन पर और सरसों डाले गये जब तक कि उसकी शिखा शंकुके आकारकी हो जाय, जिसमें सबसे ऊपर एक सरसोंका बीज रहे। इस प्रक्रियामें जितने सरसोंके दानोंकी आवश्यकता है उनकी संख्या इस प्रकार है—

बेलनाकार गड्ढे लिये—१९७९१२०९२९९९६८१० । ऊपर शंकुका शिखाके लिये— १७२९२००८४५४५१६१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६.६३६। समूचा सरसोंका प्रमाण— १९९७११२९३८४५१३१६३६३६.६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६

---

[1] देखो त्रिलोकसार गाथा १५

इस पूर्वोक्त प्रक्रियासे हम बेलनाकार गड्ढेको सरसोंके बीजोंसे 'शिखायुक्त पूर्ण' कहेंगे। अब उपर्युक्त शिखायुक्त पूरित गड्ढेमेंसे उन बीजोंको निकालिये और जम्बूद्वीपसे प्रारंभ करके प्रत्येक द्वीप और समुद्रके वलयमें एक एक बीज डालिये। चूंकि बीजोंकी संख्या सम है, इसलिये अंतिम बीज समुद्रवलय पर पड़ेगा। अब एक बीज $ब_{१}$ नामक गड्ढेमें डाल दीजिये, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया एक बार होगई।

अब एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उस समुद्रकी सीमापर्यन्त व्यासके बराबर हो जिसमें यह अंतिम सरसोंका बीज डाला हो। इस बेलनको $अ_{२}$ कहिये। अब इस $अ_{२}$ को भी पूर्वोक्त प्रकार सरसोंसे शिखायुक्त भर देनेकी कल्पना कीजिये। फिर इन बीजोंको भी पूर्व प्राप्त अंतिम समुद्रवलयसे आगेके द्वीप समुद्ररूप वलयोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः एक एक बीज डालिये। इस द्वितीय बार बिखेरनमें भी अंतिम सरसप किसी समुद्रवलय पर ही पड़ेगा। अब $ब_{१}$ में एक और सरसप डाल दो, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया द्वितीय बार हो चुकी।

अब फिर एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उसी अंतिम प्राप्त समुद्रवलयके व्यासके बराबर हो तथा जो एक हजार योजन गहरा हो। इस बेलनको $अ_{३}$ कहिये। $अ_{३}$ को भी सरसोंसे शिखायुक्त भर देना चाहिये और फिर उन बीजोंको आगेके द्वीपसमुद्रोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे एक एक डालना चाहिये। अन्तमें एक और सरसप $ब_{१}$ में डाल देना चाहिये।

कल्पना कीजिये कि यही प्रक्रिया तब तक चालू रही गई जब तक कि $ब_{१}$ शिखायुक्त न भर जाय। इस प्रक्रियामें हमें उत्तरोत्तर बढ़ते हुए आकारके बेलन लेना पड़ेंगे—

$अ_{१}$, $अ_{२}$, ... $अ_{१}$,

मान लीजिये कि $ब_{१}$ के शिखायुक्त भरने पर अंतिम बेलन अ' प्राप्त हुआ।

अब अ' को प्रथम शिखायुक्त भरा गड्ढा मान कर उस जघन्यके बादसे जिसमें शिखा मिलके अनुसार अंतिम बीज डाला गया था, प्रारम्भ करके प्रत्येक जल और स्थलके वलयमें एक एक बीज डालने की क्रियाको आगे बढ़ाइये। तब $स_{१}$ में एक बीज छोड़िये। इस प्रक्रियाको तब तक चालू रखिये जब तक कि $स_{१}$ शिखायुक्त न भर जाय। मान लीजिये कि इस प्रक्रियामें हमें अन्तिम बेलन अ'' प्राप्त हुआ। तब फिर इस अ'' से यही प्रक्रिया प्रारम्भ कर दीजिये और उसे $ड_{१}$ के शिखायुक्त भर जाने तक चालू रखिये। मान लीजिये कि इस प्रक्रियामें अन्तमें हमें अ''' प्राप्त हुआ। अनन्तर जघन्यपरीतासंख्यात

अ प ज का प्रमाण अ''' में समानेवाले सरसप बीजोंकी संख्याके बराबर होगा और उत्कृष्ट-संख्यात = स उ = अ प ज − १

पर्यालोचन— संख्याओंको तीन भेदोंमें विभक्त करनेका मुख्य अभिप्राय यह प्रतीत होता है— संख्यात अर्थात् गणना वहां तक की जा सकती है यह भाषामें संख्या नामोंकी उपलब्धि अथवा संख्याशक्तिके अन्य उपायोंकी प्राप्ति पर अवलम्बित है। अतएव भाषामें गणनाका क्षेत्र बढ़ानेके लिये भारतवर्षमें प्रधानत दश-मानके आधारपर संख्या-नामोंकी एक लम्बी श्रेणी बनाई गई। हिंदू $१०^{१७}$ तककी गणनाको भाषामें व्यक्त कर सकनेवाले अठारह नामोंसे सन्तुष्ट होगये। $१०^{१८}$ से ऊपरकी संख्याएं उन्हीं नामोंकी पुनरावृत्ति द्वारा व्यक्त की जा सकती थी, जैसा कि अब हम दश दश-लाख (million million) आदि कह कर करते हैं। किन्तु इस बातका अनुभव होगया कि यह पुनरावृत्ति भारभूत (cumbersome) है। बौद्धों और जैनियोंको अपने दर्शन और विश्वरचना सबंधी विचारोंके लिये $१०^{१७}$ से बहुत बड़ी संख्याओंकी आवश्यकता पड़ी। अतएव उन्होंने और बड़ी बड़ी संख्याओंके नाम कल्पित कर लिये। जैनियोंके संख्यानामोंका तो अब हमें पता नहीं है[१], किन्तु बौद्धोंद्वारा कल्पित संख्या

---

१ जैनियोंके प्राचीन साहित्यमें दीर्घ काल प्रमाणोंके पृथक् नामोंकी तालिका पाई जाती है जो एक वर्ष प्रमाणसे प्रारम्भ होती है। वह नामावली इस प्रकार है—

१ वर्ष		
२ युग	=	५ वर्ष
३ पूर्वांग	=	८४ लाख वर्ष
४ पूर्व	=	,, लाख पूर्वांग
५ नयुतांग	=	,, पूर्व
६ नयुत	=	,, लाख नयुतांग
७ कुमुदांग	=	नयुत
८ कुमुद	=	लाख कुमुदांग
९ पद्मांग	=	,, कुमुद
१० पद्म	=	,, लाख पद्मांग
११ नलिनांग	=	,, पद्म
१२ नलिन	=	लाख नलिनांग
१३ कमलांग	=	नलिन
१४ कमल	=	लाख कमलांग
१५ त्रुटितांग	=	कमल
१६ त्रुटित	=	लाख त्रुटितांग
१७ अटटांग	=	८४ त्रुटित
१८ अटट	=	,, लाख अटटांग
१९ अममांग	=	अटट
२० अमम	=	,, लाख अममांग
२१ हाहांग	=	,, अमम
२२ हाहा	=	,, लाख हाहांग
२३ हूहांग	=	,, हाहा
२४ हूहू	=	लाख हूहांग
२५ लतांग	=	,, हूहू
२६ लता	=	लाख लतांग
२७ महालतांग	=	,, लता
२८ महालता	=	लाख महालतांग
२९ श्रीकल्प	=	लाख महालता
३० हस्तप्रहेलित	=	लाख श्रीकल्प
३१ अचलात्म	=	लाख हस्तप्रहेलित

यह नामावली [illegible] तिलोयपण्णत्ति [illegible] बातिक [illegible] में कुछ नामभेदके साथ पाई जाती है। [illegible] प्रमाण ८४ को ३१ बार परस्पर गुणा करनेसे प्राप्त हो [illegible] होती है। [illegible] मात्र होती है। [illegible] —सम्पादक

उत्कृष्ट-युक्त असंख्यात (अ यु उ = अ अ ज − १

जहाँ—

जघन्य असंख्यातासंख्यात (अ अ ज) = (अ यु ज)²

मध्यम असंख्यातासंख्यात (अ अ म) है > अ अ ज, किन्तु < अ अ उ

उत्कृष्ट असंख्यातासंख्यात (अ अ उ) = अ प ज − १

जहाँ—

न प ज जघन्य परीत अनन्तका बोधक है।

अनन्त— अनन्त अंकोंकी संख्याएं निम्न प्रकार हैं—

जघन्य परीत अनन्त(न प ज) निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$\text{प} = \left[\left\{ (\text{अअज})^{(\text{अअज})} \right\}^{\left\{ (\text{अअज})^{(\text{अअज})} \right\}} \right]^{\left[\left\{ (\text{अअज})^{(\text{अअज})} \right\}^{\left\{ (\text{अअज})^{(\text{अअज})} \right\}} \right]}$$

मानलो ध = प + छह द्रव्य[1]

$$\text{मानलो ग} = \left\{ (\text{ध}^{\text{ध}})^{\text{ध}^{\text{ध}}} \right\}^{\left\{ (\text{ध}^{\text{ध}})^{\text{ध}^{\text{ध}}} \right\}} + \text{४ राशियाँ}^{2}$$

तब—

$$\text{जघन्य परीत-अनन्त (न प ज)} = \left\{ (\text{ग}^{\text{ग}})^{\text{ग}^{\text{ग}}} \right\}^{\left\{ (\text{ग}^{\text{ग}})^{\text{ग}^{\text{ग}}} \right\}}$$

मध्यम परीत अनन्त (न प म) है > न प ज, किंतु < न प उ

उत्कृष्ट परीत अनन्त (न प उ) = न यु ज − १,

१ छह द्रव्य— (१) धर्म (२) अधर्म (३) एक जीव (४) लोकाकाश (५) अप्रतिष्ठित (वनस्पति जीव) (६) प्रतिष्ठित वनस्पति जीव)

२ चार राशियाँ— (१) एक कल्पकालके समय (२) लोकाकाशके प्रदेश, (३) अनुभागबंध अध्यवसायस्थान और (४) योग के अविभाग-प्रतिच्छेद

जहां—

जघन्य युक्त अनन्त (न यु ज) $= (\text{अ प ज})^{(\text{अ प ज})}$

मध्यम युक्त-अनन्त (न यु म) है > न यु ज, किंतु < न यु उ

उत्कृष्ट-युक्त अनन्त (न यु उ) = न न ज − १

जहां—

जघन्य अनन्तानन्त (न न ज) $= (\text{न यु ज})^2$

मध्यम-अनन्तानन्त (न न म) > है न न ज, किंतु < न न उ

जहां—

न न उ उत्कृष्ट अनन्तानन्तके लिये प्रयुक्त है, जो कि नेमिचन्द्रके अनुसार निम्न प्रकारसे प्राप्त होता है—

$$\text{क्ष} = \left[\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननज}} \right\}^{\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननन}} \right\}} \right]^{\left[\left\{ (\text{ननन})^{\text{ननज}} \right\}^{\left\{ (\text{ननज})^{\text{ननज}} \right\}} \right]} + \text{छह राशियां}^{1}$$

$$\text{त्र} = \left\{ (\text{क्ष}^{\text{क्ष}})^{\text{क्ष}^{\text{क्ष}}} \right\}^{\left\{ (\text{क्ष}^{\text{क्ष}})^{\text{क्ष}^{\text{क्ष}}} \right\}} + \text{दो राशियां}^{2}$$

$$\text{ज्ञ} = \left\{ (\text{त्र}^{\text{त्र}})^{\text{त्र}^{\text{त्र}}} \right\}^{\left\{ (\text{त्र}^{\text{त्र}})^{\text{त्र}^{\text{त्र}}} \right\}}$$

अब, केवलज्ञान राशि ज्ञ से भी बड़ी है और—

न न उ = केवलज्ञान − ज्ञ + ज्ञ = केवलज्ञान

पर्यालोचन— उपर्युक्त विवरणका यह निष्कर्ष निकलता है—

(१) जघन्य परीत अनन्त (न प ज) अनन्त नहीं होता जबतक उसमें प्रक्षिप्त किये गये छह द्रव्यों या चार राशियोंमेंसे एक या अधिक अनन्त न मान लिये जाय।

---

१ छह राशियां ये हैं– (१) सिद्ध, (२) साधारण वनस्पति निगोद, (३) वनस्पति, (४) पुद्गल, (५) व्यवहारकाल और (६) अलोकाकाश

२ ये दो राशियां हैं– (१) धर्मद्रव्य, (२) अधर्मद्रव्य, (इन दोनोंके अगुरुलघु गुणके अविभाग प्रतिच्छेद)

(२) उत्कृष्ट अनन्त अनन्त (न न उ) केवलज्ञानराशिके समप्रमाण है। उपर्युक्त विवरणसे यह अभिप्राय निकलता है कि उत्कृष्ट अनन्तानन्त असंख्यगणितकी किसी प्रक्रियाद्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता, चाहे वह प्रक्रिया कितनी ही दूर क्यों न ले जाई जाय। यथार्थतः वह असंख्यगणितद्वारा प्राप्त हुई किसी भी संख्यासे अधिक ही रहेगा। अतः मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि केवलज्ञान अनन्त है, और इसीलिये उत्कृष्ट अनन्तानन्त भी अनन्त है।

इस प्रकार त्रिलोकसारान्तर्गत विवरण हमें कुछ संशयमें ही छोड देता है कि परीतानन्त और युक्तानन्तके तीन तीन प्रकार तथा जघन्य अनन्तानन्त सचमुच अनन्त है या नहीं, क्योंकि ये सब असंख्यातके ही गुणनफल कहे गये हैं, और जो राशियां उनमें जोडी गई हैं वे भी असंख्यातमात्र ही हैं। किन्तु धवलाका अनन्त सचमुच अनन्त ही है, क्योंकि यहां यह स्पष्ट कह दिया गया है कि 'व्यय होनेसे जो राशि नष्ट हो वह अनन्त नहीं कही जा सकती'[1]। धवलामें यह भी कह दिया गया है कि अनन्तानन्तसे सर्वत्र तात्पर्य मध्यम अनन्तानन्तसे है[2]। अतः धवलानुसार मध्यम अनन्तानन्त अनन्त ही है। धवलामें उल्लिखित दो राशियोंके मिलानकी निम्न रीति बडी रोचक है[3]—

एक ओर गतकालकी समस्त अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी अर्थात् कल्पकालके समयोंको (time instants) स्थापित करो। (इनमें अनादि सान्त होनेसे अनन्तत्व है ही।) दूसरी ओर मिथ्यादृष्टि जीवराशि रखो। अब दोनों राशियोंमेंसे एक एक रूप बराबर उठा-उठा कर फेंकते जाओ। इस प्रकार करते जानेसे कालराशि नष्ट हो जाती है, किन्तु जीवराशिका अपहार नहीं होता। धवलामें इस प्रकारसे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि मिथ्यादृष्टि राशि अतीत कल्पोंके समयोंसे अधिक है।

यह उपर्युक्त रीति और कुछ नहीं केवल एकसे-एककी संगति (one to-one correspondence) का प्रकार है जो आधुनिक अनन्त गणनांकोंके सिद्धान्त (Theory of infinite cardinals) का मूलाधार है। यह कहा जा सकता है कि यह रीति परिमित गणनांकोंके मिलानमें भी उपयुक्त होती है, और इसीलिये उसका आलम्बन दो बडी परिमित राशियोंके मिलानके लिये किया गया था—इतनी बडी राशियां जिनके अंगों (elements)

१ सते वए णट्ठंतस्स अणंतत्तविरोहादो। ध ३ पृ १५

२ धवला ३ पृ २८

३ 'अणंताणंताहि ओसप्पिणि उस्सप्पिणीहि ण अवहिरंति कालेण। ध ३ पृ २८ सूत्र ३। देखो टीका पृ २८ [illegible] 'आदि।

की गणना किसी संख्यात्मक संज्ञा द्वारा नहीं की जा सकी। यह दृष्टिकोण इस बातसे और भी पुष्ट होता है कि जैन ग्रंथोंमें समयके अवधानका भी निश्चय कर दिया गया है, और इसलिये एक कल्प (अवसर्पिणी-उत्सर्पिणी) के कालप्रदेश परिमित ही होना चाहिये, क्योंकि, कल्प स्वयं कोई अनन्त कालमान नहीं है। इस अंतिम मतके अनुसार जघन्य परीत अनन्त, जो कि परिभाषानुसार कल्पके कालप्रदेशोंकी राशिसे अधिक है, परिमित ही है।

जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, एकसे-एककी संगतिकी रीति अनन्त गणनाओंके अध्ययनके लिये सबसे प्रबल साधन सिद्ध हुई है, और उस सिद्धान्तके अन्वेषण तथा सर्व प्रथम प्रयोगका श्रेय जैनियोंको ही है।

संख्याओंके उपर्युक्त वर्गीकरणमें मुझे अनन्त गणनाओंके सिद्धान्तके विकसित करनेका प्राथमिक प्रयत्न दिखाई देता है। किन्तु इस सिद्धान्तमें कुछ गंभीर दोष हैं। ये दोष विरोध उत्पन्न करेंगे। इनमेंसे एक स − १ की संख्याकी कल्पनाका है, जहां स अनन्त है और एक वर्गकी सीमाका नियामक है। इसके विपरीत जैनियोंका यह सिद्धान्त कि एक संख्या स का वर्गित संवर्गित रूप अर्थात् $स^{स}$ एक नवीन संख्या उत्पन्न कर देता है, युक्तपूर्ण है। यदि यह सच हो कि प्राचीन जैन साहित्यका उत्कृष्ट-असंख्यात अनन्तसे मेल खाता है, तो अनन्त संख्याओंकी उत्पत्तिमें आधुनिक अनन्त गणनाओंके सिद्धान्त (*Theory of infinite cardinals*) का कुछ सीमा तक पूर्वनिरूपण हो गया है। गणितशास्त्रीय विकासके उतने प्राचीन काल और उस प्रारम्भिक स्थितिमें इस प्रकारके किसी भी प्रयत्नकी असफलता अवश्यभावी थी। आश्चर्य तो यह है कि ऐसा प्रयत्न किया गया था।

अनन्तके अनेक प्रकारोंकी सत्ताको जार्ज केन्टरने उन्नीसवीं शताब्दिके मध्यकालके लगभग प्रयोग-सिद्ध करके दिखाया था। उन्होंने सीमातीत (transfinite) संख्याओंका सिद्धान्त स्थापित किया। अनन्त राशियोंके क्षेत्र (domain) के विषयमें केन्टरके अन्वेषणोंसे गणितशास्त्रके लिये एक पुष्ट आधार, खोजके लिये एक प्रबल साधन और गणितसम्बन्धी अत्यन्त गूढ विचारोंको ठीक रूपसे व्यक्त करनेके लिये एक भाषा मिल गई है। तो भी यह सीमातीत संख्याओंका सिद्धान्त अभी अपनी प्राथमिक अवस्थामें ही है। अभी तक इन संख्याओंका कलन (Calculus) प्राप्त नहीं हो पाया है, और इसलिये हम उन्हें अभी तक प्रबलतासे गणितशास्त्रीय निरूपणमें नहीं उतार सके हैं।

शब्द-सूची

'धवलाका गणितशास्त्र' शीर्षक लेखमें जो गणितसे सम्बन्ध रखनेवाले विशेष हिन्दी शब्दोंका उपयोग किया गया है उनके समरूप अंग्रेजी शब्द निम्न प्रकार हैं—

अनन्त-Infinite
अनन्त गणनांक सिद्धान्त-Theory of infinite cardinals
अनुपात-Proportion
अर्धक्रम-Operation of mediation
अर्धच्छेद-Number of times a number is halved mediation; logarithm
असंख्यात-Innumerable
असमानता-Inequality
अंक-Notational place
अंकगणित-Arithmetic
अंग-Element
आधार-Base (of logarithm)
आविष्कार-Discovery, invention
उत्तरोत्तर-Successive
एकदिशा क्रम-One directional
एक-एककी संगति-One-to-one correspondence
कला-Art
कालप्रदेश-Time instant
कुट्टक-Indeterminate equation
केन्द्रवर्ती वृत्त-Initial circle; central core
क्रिया-Operation
क्षेत्रप्रदेश-Location; points or places
क्षेत्रमिति-Mensuration
गणित शास्त्र-Mathematics
गणितज्ञ-Mathematician
गुणा-Multiplication
घनमूल-Cube root
घात निकालना, करना-Raising of numbers to given powers
घातांक-Powers
घातांक सिद्धान्त-Theory of indices
चतुर्थच्छेद-Number of times that a number can be divided by 4
चिह्न-Trace
जोड़-Addition
ज्योतिर्विद्या-Astronomy
टिप्पणी-Notes
त्रिच्छेद-Number of times that a number can be divided by 3
त्रिज्या-Radius
त्रैराशिक-Rule of three
दशमान-Scale of ten
दाशमिकक्रम-Decimal place value notation
द्विगुणक्रम-Operation of duplation
द्विमितात्मक-Two-dimensional; superficial
[illegible]-Abstract reasoning
नियम-Rule
पद्धति-Method
परिणाम-Result
परिमाण-Magnitude
परिमाणत्व-Dimensions
परीत अनन्त-Finite cardinal

पुस्तक ४, पृष्ठ १००

४ शंका— पृ. १०० पर मूल पाठमें कुछ पाठ छूटा हुआ प्रतीत होता है ?

(जैनसन्देश ३० । ४२)

समाधान—शंकाकारने यद्यपि पृष्ठका नाममात्र ही दिया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं किया कि उक्त पेजपर २४ वें सूत्रकी व्याख्यामें पाठ छूटा हुआ उन्हें प्रतीत हुआ या २५ वें सूत्रकी व्याख्यामें। जहां तक हमारा अनुमान जाता है २४ वें सूत्रकी व्याख्यामें 'बादरवाउअपज्जत्तेसु अंतब्भावादो' के पूर्व कुछ पाठ उन्हें स्खलित जान पड़ा है। पर न तो उक्त स्थलपर काममें ली जानेवाली तीनों प्रतियोंमें ही तदतिरिक्त कोई नवीन पाठ है, और न मूडबिद्रीसे ही कोई संशोधन आया है। फिर मौजूदा पंक्तिका अर्थ भी वहां बैठ जाता है।

पुस्तक ४, पृ. १३५

५ शंका—उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके अतिरिक्त अन्य उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंके मरणका निषेध है, इससे यह ध्वनित होता है कि उपशमश्रेणीमें चढ़नेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं होता। परन्तु पृष्ठ ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर स्पष्टतासे चढ़ते हुए भी मरण लिखा है, सो क्या कारण है ?

(नानकचन्द जैन, खतौली, पत्र ता. १-४-४२)

समाधान—उक्त पृष्ठपर दी गई शंका-समाधानके अभिप्राय समझनेमें भ्रम हुआ है। यह शंका-समाधान केवल चतुर्थ गुणस्थानवर्ती उन उपशमसम्यग्दृष्टियोंके लिये है, जो कि उपशमश्रेणीसे उतरकर आये हैं। इसका सीधा अभिप्राय यह है कि सर्वसाधारण उपशमसम्यग्दृष्टि असंयतोंका मरण नहीं होता है। अपवादरूप जिन उपशमसम्यग्दृष्टि असंयतोंका मरण होता है उन्हें श्रेणीसे उतरते हुए ही समझना चाहिए। आगे पृ. ३५१ से ३५४ तक कई स्थानोंपर जो श्रेणीपर चढ़ते या उतरते हुए मरण लिखा है, वह उपशामक गुणस्थानोंकी अपेक्षा लिखा है, न कि असंयतगुणस्थानकी अपेक्षा।

पुस्तक ४, पृष्ठ १७४

६ शंका— पृष्ठ १७४ में 'एक्कम्हि इंदए सेढिबद्ध-पइण्णए व सट्ठिदगामागारबहुविधबिले' का अर्थ- 'एक ही इन्द्रक, श्रेणीबद्ध या प्रकीर्णक नरकमें विद्यमान ग्राम, घर और बहुत प्रकारके बिलोंमें' किया है। क्या नरकमें भी ग्राम घर होते हैं ? बिले तो जरूर होते हैं। असलमें 'गामागार' का अर्थ 'ग्रामके आकारवाले अर्थात् गांवके समान बहुत प्रकारके बिलोंमें' ऐसा होना चाहिए ?

(जैनसन्देश, ता. २३-४-४२)

समाधान—सुझाया गया अर्थ भी माना जा सकता है, पर किया गया अर्थ गलत नहीं है, क्योंकि, दोनों ही मुद्रितप्रतिके पाठ पर से है। समालोचकके कथनानुसार 'ग्रामके आकार रूपसे अर्थात् गांवके समान' ऐसा भी 'ग्रामाकार' पदका अर्थ मान लिया जाय तो भी उन्हींके द्वारा उठाई गई शंका तो ज्यों की त्यों ही बनी रहती है, क्योंकि, ग्रामके आकारवालोंसे ग्राम पदार्थमें कोई असंगति नहीं है। इसलिए इस सुझाए गए अर्थमें कोई विशेषता दृष्टिगोचर नहीं होती।

पुस्तक ४, पृ. १८०

७ शंका—पृ. १८० में मूलमें एक पंक्तिमें 'च' और 'ण' ये दो शब्द जोड़े गये हैं। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि 'घणराजु' में जो 'घण' शब्द है वह अधिक है और लेखकोंकी असावधानीसे 'च ण' का 'घण' हो गया है। (जैनसन्देश ता. २१-४-४२)

समाधान—प्रस्तुत पाठके संशोधन करते समय हमें उपलब्ध पाठमें अर्थकी दृष्टिसे 'च ण' पाठकी न्यूनता प्रतीत हुआ। अतएव हमने उपलब्ध पाठकी रक्षा करते हुए हमारे नियमानुसार 'च' और 'ण' को यथास्थान कोष्टकके अन्दर रख दिया। शंकाकारकी दृष्टि हमारे संशोधनके आधारसे उक्त पाठपर अटकी और उन्होंने 'च ण' पाठकी वहां आवश्यकता अनुभव की। इससे हमारी कल्पनाकी पूरी पुष्टि होगई। अब यदि 'च ण' पाठ की पूर्ति उपलब्ध पाठके 'घण' को 'चण' बनाकर कर ही जाय तो भी अर्थका निर्वाह हो जाता है और किये गये अर्थमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। बात इतनी है कि ऐसा पाठ उपलब्ध प्रतियोंमें नहीं मिलता और न मूडबिद्रीसे कोई सुधार प्राप्त हुआ।

पुस्तक ४, पृ. २४०

८ शंका—पृ. २४० में ५७ वें सूत्रके अर्थमें एकेन्द्रियपर्याप्त एकेन्द्रियअपर्याप्त भेद गलत किये हैं, ये नहीं होना चाहिए, क्योंकि, इस सूत्रकी व्याख्यामें इनका उल्लेख नहीं है। (जैनसन्देश ता. १-४-४२)

समाधान—यद्यपि यहां व्याख्यामें उक्त भेदोंका कोई उल्लेख नहीं है, तथापि द्रव्यप्रमाणानुगम (भाग ३ पृ. ३०५) में इन्हीं शब्दोंसे रचित सूत्र नं. ७४ की टीकामें धवलाकारने उन भेदोंका स्पष्ट उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है— "एइंदिया बादरइंदिया सुहुमइंदिया पज्जत्ता अपज्जत्ता च एदे णव वि रासीओ"। धवलाकारके इसी स्पष्टीकरणको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत स्थल पर भी नौ भेद गिनाये गये हैं। तथा उन भेदोंके यहां ग्रहण करने पर कोई दोष भी नहीं दिखता। अतएव जो अर्थ किया गया है वह सप्रमाण और शुद्ध है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३१२

९ शंका— पृ ३१२ में– 'स्वपरप्रकाशकप्रमाणप्रदीपादिवत्' पाठ अशुद्ध प्रतीत
है, इसके स्थानमें यदि 'स्वपरप्रकाशकप्रमाणप्रदीपादीन्' पाठ हो तो अर्थ संगति
बैठ जाती है ?
(जैनसन्देश, ३० ...

समाधान— प्रस्तुत स्थलपर उपलब्ध तीनों प्रतियोंमें जो विभिन्न पाठ प्राप्त हु...
मूडबिद्रीसे जो पाठ प्राप्त हुआ उन सबका उल्लेख वहीं टिप्पणीमें दे दिया गया है।
अधिक हेर फेर करना हमने उचित नहीं समझा और यथाशक्ति उपलब्ध पाठोंपरसे ही ...
संगति बैठा दी। यदि पाठ बदलकर और अधिक सुसंगत अर्थ निकालना ही अभीष्ट ...
उक्त पाठको इस प्रकार रखना अधिक सुसंगत होगा– स्वपरप्रकाशकप्रमाणप्रदीपादीन्दु...
इस पाठके अनुसार अर्थ इस प्रकार होगा– "क्योंकि स्वपरप्रकाशक प्रमाण व प्रदीपादिक
पाये जाते हैं (इसलिये शब्दके भी स्वप्रतिपादकता बन जाती है)"।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५०

१० शंका—षट्खंडागम खंड ४, पृष्ठ ३५०, ३६६ पर सम्मूर्छन जीवके सम्य...
होना लिखा है। परन्तु लब्धिसार गाथा २ में सम्यग्दर्शनकी योग्यता गर्भजके लिखी है, सो
विरोधसा प्रतीत होता है, खुलासा करिए।
(नानकचन्द जैन खतौली, पत्र १६ २...

समाधान—लब्धिसार गाथा दूसरीमें जो गर्भजका उल्लेख है, वह प्रथमोपशमसम्य...
प्राप्तिकी अपेक्षासे है। किन्तु यहां उपर्युक्त पृष्ठोंमें जो सम्मूर्छिम जीवके संयमासंयम ...
निरूपण है, उसमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वका उल्लेख नहीं है, जिससे ज्ञात होता है कि यहां
कथन वेदकसम्यक्त्वकी अपेक्षासे किया गया है। अतएव दोनों कथनोंमें कोई विरोध
समझना चाहिए।

पुस्तक ४, पृष्ठ ३५२

११ शंका—आपने अपूर्वकरण उपशामकको मरण करके अनुत्तर विमानोंमें उत्पन्न
लिखा है, जब कि मूलमें 'उत्तमा देवा' पाठ है। क्या उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले
नियमसे अनुत्तरमें ही जाते हैं? क्या प्रमत्त और अप्रमत्तवाले भी सर्वार्थसिद्धिमें जा सकते है...
(नानकचन्द जैन खतौली पत्र ता १-४-...

समाधान—इस शंकामें तीन शंकायें गर्भित हैं जिनका समाधान क्रमशः इस प्रकार ...

(१) मूलमें 'उत्तमा देवा' पाठ नहीं, किन्तु 'लवसत्तमा देवा' पाठ है। लवसत्त...
अर्थ अनुत्तर विमानवासी देव होता है। यथा–लवसत्तम–लवसत्तम–पु०। पञ्चानुत्तरविमा...

देवेसु । मूला० १ छ ६ अ । तथाहि श्वेताम्बरसम्मतमाह—

तत्त च्चा जह जाव बहु समाण तवो उ विसेसेता ।
लविसमत्त न हु न तो त लवसत्तमा आया ॥ १११ ॥
सव्वट्ठसिद्धिनामे उक्कोसठिई य विजयमाईसु ।
एगावसेसगब्भा भवंति लवसत्तमा देवा ॥ ११२ ॥ व्य ५ उ
अभिधानराजेन्द्र लवसत्तमशब्द.

(२) उपशमश्रेणीमें मरण करनेवाले जीव नियमसे अनुत्तर विमानोंमें ही जाते हैं, ऐसा तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु त्रिलोकप्रज्ञप्तिकी जिस गाथासे ऐसा अवश्य ज्ञात होता है कि चतुर्दशपूर्वधारी जीव लान्तव-कापिष्ठ कल्पसे लगाकर सर्वार्थसिद्धिपर्यंत उत्पन्न होते हैं। चूंकि 'सुक्के चाद पुव्विणो' के नियमानुसार उपशमश्रेणीवाले भी जीव पूर्ववित् हो जाते हैं, अतएव उनकी लान्तवकल्पसे ऊपर ही उत्पत्ति होती है नीचे नहीं, ऐसा अवश्य कहा जा सकता है। वह गाथा इस प्रकार है—

दसपुव्वधरा सोहम्मप्पहुदि सव्वट्ठसिद्धिपरियंत
चोद्दसपुव्वधरा तह लंतवकप्पादि, वच्चंति ॥ ति प पत्र २१७, १६

(३) उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़नेवाले, प्रमत्त अप्रमत्तसंयत गुणस्थानोंमें ही परिवर्तन-सहस्रोंको करनेवाले साधु सर्वार्थसिद्धिमें नहीं जा सकते हैं, ऐसा स्पष्ट उल्लेख देखनेमें नहीं आया। प्रत्युत इसके त्रिलोकसार गाथा नं ५४६ के 'सव्वट्ठो त्ति सुदिट्ठी महव्वई' पदसे द्रव्य भावरूपसे महाव्रती सयमीका सर्वार्थसिद्धि तक जानेका स्पष्ट विधान मिलता है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४११

१२ शंका—योग परिवर्तन और व्याघात परिवर्तनमें क्या अन्तर है?

(नानकचन्द जैन खतौली पत्र ता १ ४ ४२)

समाधान—विवक्षित योगका अन्य किसी व्याघातके विना कालक्षय हो जाने पर अन्य योगके परिणमनको योग परिवर्तन कहते हैं। किन्तु विवक्षित योगका कालक्षय होनेके पूर्व ही क्रोधादि निमित्तसे योग परिवर्तनको व्याघात कहते हैं। जैसे– कोई एक जीव मनोयोगके साथ विद्यमान है। जब अन्तर्मुहूर्तप्रमाण मनोयोगका काल पूरा हो गया तब वह वचनयोगी या काययोगी हो गया। यह योग परिवर्तन है। इसी जीवके मनोयोगका काल पूरा होनेके पूर्व ही कषाय, उपद्रव, उपसर्ग आदि निमित्तसे मन चंचल हो उठा और वह वचनयोगी या काययोगी हो गया, तो यह योगका परिवर्तन व्याघातकी अपेक्षासे हुआ। योग परिवर्तनमें कालक्षय प्रधान है, जब कि व्याघात-परिवर्तनमें कषाय आदिका आघात प्रधान है। यही दोनोंमें अन्तर है।

पुस्तक ४, पृष्ठ ४५६

१३ शंका— पृष्ठ ४५६ में ' अण्णलेस्सागमणासंभवा ' का अर्थ ' अन्य
आगमन असम्भव है ' किया है, होना चाहिए— अन्य लेश्यामें गमन असम्भव है '

(जैनसन्देश, ता. ३०-

समाधान— किये गये अर्थमें और सुझाये गये अर्थमें कोई भेद नहीं है।
लेश्याका आगमन ' और ' अन्य लेश्यामें गमन ' कहनेसे अर्थमें कोई अन्तर नहीं पडता
भी दोनों प्रकारके प्रयोग पाये जाते हैं। उदाहरणार्थ— प्रस्तुत पाठके ऊपर ही वा
' हीयमाण-वड्ढमाणकिण्हलेस्साए काउलेस्साए वा अच्छिदस्स णीललेस्सा आगदा ' अर्थात् हीयमा
लेश्यामें अथवा वर्धमान कापोतलेश्यामें विद्यमान किसी जीवके नीललेश्या आ गई, इत्यादि

---

४ विषय परिचय

जीवस्थानकी आठ प्ररूपणाओंमेंसे प्रथम पांच प्ररूपणाओंका वर्णन पूर्व प्रकाशि
भागोंमें किया गया है। अब प्रस्तुत भागमें अवशिष्ट तीन प्ररूपणाएं प्रकाशित की
हैं— अन्तरानुगम, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम।

१ अन्तरानुगम

विवक्षित गुणस्थानवर्ती जीवका उस गुणस्थानको छोडकर अन्य गुणस्थानमें च
पर पुनः उसी गुणस्थानकी प्राप्तिके पूर्व तकके कालको अन्तर, व्युच्छेद या विरहकाल कह
सबसे छोटे विरहकालको जघन्य अन्तर और सबसे बडे विरहकालको उत्कृष्ट अन्तर कह
गुणस्थान और मार्गणास्थानोंमें इन दोनों प्रकारोंके अन्तरोंके प्रतिपादन करनेवाले अनुयो
अन्तरानुगम कहते हैं।

पूर्व प्ररूपणाओंके समान इस अन्तरप्ररूपणामें भी ओघ और आदेशकी अपेक्षा
निर्णय किया गया है, अर्थात् यह बतलाया गया है कि यह जीव किस गुणस्थान या
स्थानसे कमसे कम कितने काल तक के लिए और अधिकसे अधिक कितने काल तक
अन्तरको प्राप्त होता है।

उदाहरणार्थ—ओघकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल हो
इस प्रश्नके उत्तरमें बतलाया गया है कि नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निर

इसका अभिप्राय यह है कि मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं है, अर्थात् इस संसारमें मिथ्यादृष्टि जीव सर्वकाल पाये जाते हैं। किन्तु एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तकालप्रमाण है। यह जघन्य अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंकी विशुद्धिके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्तकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानवर्ती हुआ। वह चतुर्थ गुणस्थानमें सबसे छोटे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण सम्यक्त्वके साथ रहकर संक्लेश आदि के निमित्तसे गिरा और मिथ्यात्वको प्राप्त होगया, अर्थात् पुनः मिथ्यादृष्टि होगया। इस प्रकार मिथ्यात्व गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर पुनः उसी गुणस्थानमें आनेके पूर्व तक जो अन्तर्मुहूर्तकाल मिथ्यात्वपर्यायसे विरहित रहा, यही उस एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जघन्य अन्तर माना जायगा।

इसी एक जीवकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ अर्थात् एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोपम काल है। यह उत्कृष्ट अन्तरकाल इस प्रकार घटित होता है कि कोई एक मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अथवा मनुष्य चौदह सागरोपम आयुस्थितिवाले लान्तव कापिष्ठ कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां वह एक सागरोपम कालके पश्चात् सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तेरह सागरोपम काल वहां सम्यक्त्वके साथ रहकर च्युत हो मनुष्य होगया। उस मनुष्यभवमें संयमको, अथवा संयमासंयमको पालन कर बाईस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आरण अच्युत कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पुनः मनुष्य हुआ। इस मनुष्यभवमें संयम धारण कर मरा और इकतीस सागरोपमकी आयुवाले उपरिम ग्रैवेयकके अहमिन्द्रोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो मनुष्य हुआ, और संयम धारण कर पुनः उक्त प्रकारसे बीस, बाईस और चौबीस सागरोपमकी आयुवाले देवों और अहमिन्द्रोंमें क्रमशः उत्पन्न हुआ। इस प्रकार वह पूरे एक सौ बत्तीस (१३२) सागरोंतक सम्यक्त्वके साथ रहकर अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस तरह मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर सिद्ध होगया। उक्त विवेचनमें यह बात ध्यान रखनेकी है कि वह जीव जितने बार मनुष्य हुआ, उतने बार मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम ही देवायुको प्राप्त हुआ है, अन्यथा बतलाए गए कालसे अधिक अन्तर हो जायगा। कुछ कम दो छयासठ सागरोपम कहनेका अभिप्राय यह है कि वह जीव दो छयासठ सागरोपम कालके प्रारंभमें ही मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वी बना और उसी दो छयासठ सागरोपमकालके अन्तमें पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया। इसलिए उतना काल उनमेंसे घटा दिया गया।

यहां ध्यान रखनेकी खास बात यह है कि काल प्ररूपणामें जिन जिन गुणस्थानोंका काल नानाजीवोंकी अपेक्षा सर्वकाल बतलाया गया है, उन-उन गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है। किन्तु उनके सिवाय शेष सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंका नानाजीवोंकी

यहां यह बात ध्यानमें रखने योग्य है कि चौथे गुणस्थान तक भावोंका प्ररूपण दर्शन-मोहनीय कर्मकी अपेक्षा किया गया है। इसका कारण यह है कि गुणस्थानोंका तारतम्य या विकाश-क्रम मोह और योगके आश्रित है। मोहकर्मके दो भेद हैं– एक दर्शनमोहनीय और दूसरा चारित्रमोहनीय। आत्माके सम्यक्त्वगुणको घातनेवाला दर्शनमोहनीय है जिसके निमित्तसे आत्मा वस्तुस्वभावको या अपने हित-अहितको देखता और जानता हुआ भी श्रद्धान नहीं कर सकता है। चारित्रगुणको घातनेवाला चारित्रमोहनीयकर्म है। यह वह कर्म है जिसके निमित्तसे वस्तुस्वरूपका यथार्थ श्रद्धान करते हुए भी, सन्मार्गको जानते हुए भी, जीव उसपर चल नहीं पाता है। मन, वचन और कायकी चंचलताको योग कहते हैं। इसके निमित्तसे आत्मा सदैव परिस्पन्दनयुक्त रहता है, और कर्मास्रवका कारण भी यही है। प्रारम्भके चार गुणस्थान दर्शन-मोहनीय कर्मके उदय, उपशम, क्षयोपशम आदिसे उत्पन्न होते हैं, इसलिए उन गुणस्थानोंमें दर्शनमोहकी अपेक्षासे (अन्य भावोंके होते हुए भी) भावोंका निरूपण किया गया है। तथापि चौथे गुणस्थान तक रहनेवाला असंयमभाव चारित्रमोहनीयकर्मके उदयकी अपेक्षासे है, अतः उसे औदयिकभाव ही जानना चाहिए। पांचवेंसे लेकर बारहवें तक आठ गुणस्थानोंका आधार चारित्रमोहनीयकर्म है अर्थात् ये आठों गुणस्थान चारित्रमोहनीयकर्मके क्रमशः क्षयोपशम, उपशम और क्षयसे होते हैं, अर्थात् पांचवें, छठे और सातवें गुणस्थानमें क्षायोपशमिकभाव, आठवें, नवें, दशवें और ग्यारहवें, इन चारों उपशामक गुणस्थानोंमें औपशमिकभाव, तथा क्षपकश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानमें क्षायिकभाव कहा गया है। तेरहवें गुणस्थानमें मोहका अभाव हो जानेसे केवल योगकी ही प्रधानता है और इसीलिए इस गुणस्थानका नाम सयोगिकेवली रखा गया है। चौदहवें गुणस्थानमें योगके अभावकी प्रधानता है, अतएव अयोगिकेवली ऐसा नाम सार्थक है। इस प्रकार यहांपर यह फलितार्थ जानना चाहिए कि विवक्षित गुणस्थानमें समस्त अन्य भाव पाये जाते हैं, किन्तु यहां भावप्ररूपणामें केवल उन्हीं भावोंको बताया गया है, जो कि उन गुणस्थानोंके मुख्य आधार हैं।

आदेशकी अपेक्षा भी इसी प्रकारसे भावोंका प्रतिपादन किया गया है, जो कि प्रथमोपशम वर्णनसे व प्ररूपणमें दिये गये नकशोंपर सिंहावलोकनसे सहजमें ही जाने जा सकते हैं।

३ अल्पबहुत्वानुगम

द्रव्यप्रमाणानुगममें बतलाये गये संख्याप्रमाणके आधार पर गुणस्थानों और मार्गणा-स्थानोंमें संभव पारस्परिक संख्याकृत हीनता और अधिकताका निर्णय करनेवाला अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार है। यद्यपि द्रव्यप्रमाणानुगम अनुयोगद्वारके द्वारा ही उस अल्पबहुत्वका निर्णय हो सकता है, पर मन्दबुद्धि शिष्योंके लाभार्थ इस नामका

एक पृथक् ही अनुयोगद्वार बनाया, क्योंकि, संक्षेपरुचि शिष्योंकी जिज्ञासाको दूर करना ही शास्त्र प्रणयनका फल बतलाया गया है।

अन्य प्ररूपणाओंके समान यहां भी ओघनिर्देश और आदेशनिर्देशकी अपेक्षा अल्पबहुत्वका निर्णय किया गया है। ओघनिर्देशसे अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा शेष सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं, क्योंकि, इन तीनों ही गुणस्थानोंमें पृथक् पृथक् रूपसे प्रवेश करनेवाले जीव एक दो या आदि लेकर अधिकसे अधिक चौवन तक ही पाये जाते हैं। इतने कम जीव इन तीनों उपशामक गुणस्थानोंको छोड़कर और किसी गुणस्थानमें नहीं पाये जाते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव भी पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त उपशामक जीव ही प्रवेश करते हुए इस ग्यारहवें गुणस्थानमें आते हैं। उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानवर्ती क्षपक संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, उपशामकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौवन जीवोंकी अपेक्षा क्षपकके एक गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले एक सौ आठ जीवोंके दूने प्रमाण स्वरूप संख्यातगुणितता पाई जाती है। क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं, क्योंकि, उक्त क्षपक जीव ही इस बारहवें गुणस्थानमें प्रवेश करते हैं। सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही परस्पर तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण अर्थात् एक सौ आठ हैं। किन्तु सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा प्रविश्यमान जीवोंसे संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, पांचसौ अट्ठानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख अट्ठानवे हजार पांचसौ दो (८९८५०२) संख्याप्रमाण जीवोंके संख्यातगुणितता पाई जाती है। इसकी वजह यह है कि इस तेरहवें गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्त अधिक आठ वर्षसे कम पूर्वकोटिवर्ष माना गया है। सयोगिकेवली जिनोंसे उपशम और क्षपक श्रेणीपर नहीं चढ़नेवाले अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एकसौ तीन (२९६९९१०३) है। अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, इनका प्रमाण दूना अर्थात् पांच करोड़ तेरानवे लाख अट्ठानवे हजार दोसौ छह (५९३९८२०६) है। प्रमत्तसंयतोंसे [illegible] असंख्यातगुणित हैं [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

दूसरे गुणस्थानकी अपेक्षा तीसरे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है। सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयत सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, तीसरे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिकी अपेक्षा चौथे गुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवें भागगुणित है। असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, क्योंकि, मिथ्यादृष्टि जीव अनन्त होते हैं। इस प्रकार यह चौदहों गुणस्थानोंकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा गया है, जिसका मूल आधार द्रव्यप्रमाण है। यह अल्पबहुत्व गुणस्थानोंमें दो दृष्टियोंसे बताया गया है प्रवेशकी अपेक्षा और संचयकालकी अपेक्षा। जिन गुणस्थानोंमें अन्तरका अभाव है अर्थात् जो गुणस्थान सर्वकाल सम्भव हैं, उनका अल्पबहुत्व संचयकालकी ही अपेक्षासे कहा गया है। ऐसे गुणस्थान, जैसा कि अन्तरप्ररूपणामें बताया जा चुका है, मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चार और सयोगिकेवली, ये छह हैं। जिन गुणस्थानोंमें अन्तर पड़ता है, उनमें अल्पबहुत्व प्रवेश और संचयकाल, इन दोनोंकी अपेक्षा बताया गया है। जैसे– अन्तरकाल समाप्त होनेके पश्चात् उपशामक और क्षपक गुणस्थानोंमें कमसे कम एक दो तीनसे लगाकर अधिकसे अधिक ५४ और १०८ तक जीव एक समयमें प्रवेश कर सकते हैं, और निरन्तर आठ समयोंमें प्रवेश करने पर उनके संचयका प्रमाण क्रमशः ३०४ और ६०८ तक एक एक गुणस्थानमें हो जाता है। दूसरे और तीसरे गुणस्थानका प्रवेश और संचय क्रमानुसार जानना चाहिए। ऐसे गुणस्थान चारों उपशामक, चारों क्षपक, अयोगिकेवली सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टि हैं।

इसके अतिरिक्त इस अनुयोगद्वारमें मूलसूत्रकारने एक एक गुणस्थानमें सम्यक्त्वकी अपेक्षासे भी अल्पबहुत्व बताया है। जैसे— असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं और क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। इस हीनाधिकताका कारण उत्तरोत्तर संचयकालकी अधिकता है। संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि, देशसंयमको धारण करनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका होना अत्यन्त दुर्लभ है। दूसरी बात यह है कि तिर्यचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ देशसंयम नहीं पाया जाता है। इसका कारण यह है कि तिर्यंचोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणा नहीं होती है। इसी संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं और उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं। प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। इस अल्पबहुत्वका कारण संचयकालकी हीनाधिकता

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद		अन्तर: नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य	अन्तर: नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट	एक … जघन्य
१ गतिमार्गणा	नरकगति	मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर		अन्तर्मुहूर्त
		सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि	एक समय	पल्योपमका असंख्यातवाँ भाग	पल्योपमका अस… अन्तर्मुहूर्त
	तिर्यञ्चगति	मिथ्यादृष्टि	निरन्तर		अन्तर्मुहूर्त
		सासादनादि चार गुणस्थान	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्
	मनुष्यगति	मिथ्यादृष्टि	निरन्तर		अन्तर्मुहूर्त
		सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्
		असंयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर		अन्तर्मुहूर्त
		संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत	निरन्तर		,
		चारों उपशामक	ओघवत्	ओघवत्	,
		चारों क्षपक, सयोगिकेवली, अयोगिकेवली	,		ओघवत्
	देवगति	मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर		अन्तर्मुहूर्त
		सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि	ओघवत्	ओघवत्	ओघवत्
२ इन्द्रियमार्गणा	एकेन्द्रिय		निरन्तर		क्षुद्रभवग्रहण
	विकलेन्द्रिय				

न्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

	अपेक्षा	भाव	अल्पबहुत्व	
	उत्कृष्ट		गुणस्थान	प्रमाण
	देशोन ३३ सागरोपम	औदयिक		
	ओघवत्	ओघवत्	सर्वगुणस्थान	ओघवत्
रन्तर		क्षायिक		
	अन्तर्मुहूर्त	ओघवत्	,,	,,
रन्तर		,,		
	ओघवत्	,,	,,	,,
	[illegible]	ओघवत्	असंयतसम्यग्दृष्टि तक	पुरुषवेदवत्
			मिथ्यादृष्टि	अनन्तगुणित
रन्तर	ओघवत्	,,	सूक्ष्म उप	विशेषाधिक
			,, क्षपक	संख्यातगुणित
रन्तर		,,		
			चारों गुणस्थान	ओघवत्
	,	क्षायिक		
रन्तर		औदयिक	सासादनसम्यग्दृष्टि	सबसे कम
			मिथ्यादृष्टि	असंख्यातगुणित अनन्तगुणित
,,		पारिणामिक		

मार्गणा

७ ज्ञानमार्गणा

मार्गणास्थानोंकी

मार्गणा	मार्गणाके अवान्तर भेद	अन्तर: नाना जीवोंकी अपेक्षा — जघन्य	नाना जीवोंकी अपेक्षा — उत्कृष्ट	
	यथाख्यातसंयत संयतासंयत असंयत मिथ्यादृष्टि	अकषायवत् निरन्तर	अकषायवत्	
	,, १–३ गुण	ओघवत्	ओघवत्	अ[…]
९ दर्शनमार्गणा — चक्षुदर्शनी	मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	,, ,,	,, ,,	
	असंयतसम्यग्दृष्टिसे अप्रमत्तसंयत तक	निरन्तर		
	चारों उपशामक	,,	,,	
	,, क्षपक	,,	,,	
अचक्षुदर्शनी	मिथ्यादृष्टिसे क्षीणकषाय तक	,,	,,	
	अवधिदर्शनी	अवधिज्ञानिवत्	अवधिज्ञानिवत्	अ[…]
	केवलदर्शनी	केवलज्ञानि[…]	केवलज्ञानिवत्	के[…]
कृष्ण नील कापोत लेश्यावाले	मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर		व[…]
	सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	ओघवत्	ओघवत्	पल्योप[…] व[…]
	मिथ्यादृष्टि असंयतसम्यग्दृष्टि	निरन्तर		

...जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

एक जीवकी अपेक्षा		भाव	अल्पबहुत्व	
...घय	उत्कृष्ट		गुणस्थान	प्रमाण
...षायवत्	अकषायवत्	क्षायिक	चारों गुणस्थान	ओघवत्
निरंतर		आघवत्	गुणस्थानसमासवत्	अल्पबहुत्वसमासवत्
...तर्मुहूर्त	देशोन ३३ सागरोपम	,,		
...ओघवत्	ओघवत्	,,	चारों गुणस्थान	ओघवत्
,,	,,	औदयिक		
...का अस भाग ...तर्मुहूर्त	देशोन दो हजार सागरोपम	ओघवत्		
,,	,,	,,	सवगुणस्थान	मनोयोगिवत्
,,	,,	औपशमिक		
ओघवत्	ओघवत्	क्षायिक		
,,	,,	ओघवत्	,,	वाययोगिवत्
...धिज्ञानिवत्	अवधिज्ञानिवत्	,,	,,	अवधिज्ञानिवत्
...ज्ञानिवत्	केवलज्ञानिवत्	क्षायिक	दोनों गुणस्थान	केवलज्ञानिवत्
...तर्मुहूर्त	कृ नी का देशोन ३३ १७ ७ सागरोपम	ओघवत्	सासादनसम्यग्दृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि	सबसे कम संख्यातगुणित
...का अस भाग ...न्तर्मुहूर्त	,,	,,	असयतसम्यग्दृष्टि मिथ्यादृष्टि	असख्यातगुणित अनन्तगुणित
	तेज पद्म साधिक २ १८ सागरोपम	,,	अप्रमत्तसयत प्रमत्तसयत सयतासयत	सबसे कम सख्यातगुणित असख्यातगुणित

ा जीवोंके अन्तर, भाव और अल्पबहुत्वका प्रमाण.

एक जीवकी अपेक्षा		भाव	अल्पबहुत्व	
जघन्य	उत्कृष्ट		गुणस्थान	प्रमाण
ओघवत्	ओघवत्	क्षायिक	असयतसम्यग्दृष्टि	असख्यातगुणित
अन्तर्मुहूर्त	देशोन पूर्वकोटी	क्षायोपशमिक	अप्रमत्तसयत	सबसे कम
,,	,, ६६ सागरोपम	,,	प्रमत्तसयत	संख्यातगुणित
			सयतासयत	असख्यातगुणित
,,	साधिक ३३ ,,	,,	असयतसम्यग्दृष्टि	,,
,,	अन्तर्मुहूर्त	औपशमिक	चारों उपशामक	सबसे कम
,,	,,	क्षायोपशमिक	अप्रमत्तसयत	सख्यातगुणित
,,	,,	,,	प्रमत्तसयत	,,
,,	,,	औपशमिक	संयतासयत	असख्यातगुणित
निरन्तर		,,	असयतसम्यग्दृष्टि	,,
निरंतर		ओघवत्	गुणस्थानभेदाभाव	अल्पबहुत्वाभाव
			,,	,,
,,		औदयिक	,,	,,
ओघवत् स्त्रवेदिवत्	ओघवत् पुरुषवेदिवत्	औदयिक ओघवत्	सवगुणस्थान	मनोयोगिवत्
ओघवत्	ओघवत्	क्षायिक		
निरन्तर		औदयिक	गुणस्थानभेदाभाव	अल्पबहुत्वाभाव

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

अन्तरानुगम विषय सूची

५ विषयसूची

(अन्तरानुगम)

५ विषयसूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

५ विषय सूची

(अन्तरानुगम)

क्रम नं.	विषय	पृष्ठ नं.
	२ ओघसे भावानुगमनिर्देश १९४-२०६	

अल्पबहुत्वानुगम

१

(पुस्तक ५)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	१६	अंतररूप आगमको	अंतरके प्रतिपादक द्रव्यरूप आगमको
"	२८	वर्तमानमें इस समय	वर्तमानमें अन्य पदार्थके
७	९	सासाण	सासण
१०	१४	कालमें रहने पर	कालके स्थानमें अंतर्मुहूर्तके द्वारा
१२	८	गमिदसम्मत्त	गहिदसम्मत्त
१४	१७	असंयतादि	प्रमत्तादि
१८	४	वासपुधते	वासपुधत्ते
१९	१०	वेदगसम्मत्तमुवणमिय	वेदगसम्मत्तमुवसामिय
"	२७	प्राप्त कर	उपशामित कर अर्थात् द्वितीयोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त कर
५६	२२	यह तो राशियोंका	यह तो इस राशिका
५९	२१,२२	उत्कृष्ट अंतर	जघन्य अन्तर
७१	१९	आयुके	उसके
७७	२६	गतिकी	इन्द्रियकी
९७	७	देवेसु	देवीसु
"	२२	देवोंमें	देवियोंमें
१०६	२१	अंतरसे अधिक अंतरका	अंतरका
१९८	९	उक्कस्समेण	उक्कस्सेण
११७	१९	तीनों ज्ञानवाले	मति-श्रुतज्ञानवाले
१-१	१	अंतरब्भंतरादो	अंतरब्भंतरा दो
"	१५	अप्रमत्तसंयतका काल	अप्रमत्तसंयतके दो काल
"	२४	तीनों ज्ञानवाले	मति श्रुतज्ञानवाले
१ ३	५	पमत्तसंजदाण	पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजदाण
"	१८	और प्रमत्तसंयत	प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत
१५८	१६	(अध्यारोहण करता हुआ) सिद्ध	सिद्ध
"	२०	(गुणस्थान और आयुके) बाउअम	आयुके

तव्वदिरित्तदव्वंतरं तिविहं सचित्ताचित्त मिस्सभेएण । तत्थ सचित्तंतरं उसह-
मज्झे ट्ठिओ अजिओ । अचित्ततव्वदिरित्तदव्वंतरं णाम घणोअहिं-तणु
मज्झे ट्ठिओ घणाणिलो । मिस्संतरं जहा उज्जंत-सत्तुंजयाणं विच्चालट्ठिदगाम
। खेत्त-कालंतराणि दव्वंतरे पविट्ठाणि, छद्दव्ववदिरित्तखेत्त-कालाणमभावा ।
दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अंतरपाहुडजाणओ उवजुत्तो भावागमो वा आगम
। णोआगमभावंतरं णाम ओदइयादी पंच भावा दोण्हं भावाणमंतरे ट्ठिदा ।
एत्थ केण अंतरेण पयदं ? णोआगमदो भावंतरेण । तत्थ वि अजीवभावंतर
जीवभावंतरे पयदं, अजीवभावंतरेण इह पओजणाभावा । अंतरमुच्छेदो विरहो
तरगमणं णत्थित्तगमणं अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो । एदस्स अंतरस्स अणु
तराणुगमो । तेण अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबणेण ।
णिद्देसो तिण्णि होज्ज ? ण, तइज्जस्स णयस्स अभावा । तं पि कधं णव्वदे ?

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर सचित्त अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका
ऋषभ जिन और संभव जिनके मध्यमें स्थित अजित जिन सचित्त तद्
त द्रव्यान्तरके उदाहरण हैं। घनोदधि और तनुवातके मध्यमें स्थित घनवात अचित्त
रिक्त द्रव्यान्तर है। ऊर्जयन्त और शत्रुंजयके मध्यमें स्थित ग्राम नगरादिक मिश्र
रिक्त द्रव्यान्तर हैं। क्षेत्रान्तर और कालान्तर, ये दोनों ही द्रव्यान्तरमें प्रविष्ट हो
, क्योंकि, छह द्रव्योंसे व्यतिरिक्त क्षेत्र और कालका अभाव है।

भावान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। अन्तरशास्त्रके ज्ञायक
पयुक्त पुरुषको आगमभावान्तर कहते हैं; अथवा भावरूप अन्तर आगमको
भावान्तर कहते हैं। औदयिक आदि पांच भावोंमेंसे किन्हीं दो भावोंके मध्यमें
विवक्षित भावको नोआगम भावान्तर कहते हैं।

शंका—यहां पर किस प्रकारके अन्तरसे प्रयोजन है?

समाधान—नोआगमभावान्तरसे प्रयोजन है। उसमें भी अजीवभावान्तरको
जीवभावान्तर प्रकृत है, क्योंकि यहां पर अजीवभावान्तरसे कोई प्रयोजन नहीं है।

अन्तर, उच्छेद, विरह, परिणामान्तरगमन, नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यव
सब एकार्थवाची नाम हैं। इस प्रकारके अन्तरके अनुगमको अन्तरानुगम कहते
अन्तरानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है, क्योंकि, यह निर्देश द्रव्यार्थिक और
र्थिक नयका अवलम्बन करनेवाला है।

शंका—तीन प्रकारका निर्देश क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तीसरे प्रकारका कोई नय ही नहीं है।

शंका—यह भी कैसे जाना?

१ प्रतिषु 'अजिओ' इति पाठः । 'अजीओ' इति पाठः ।
२ प्रतिषु ... इति पाठः । ३ प्रतिषु ... इति पाठः ।

मोत्तूण अप्पाणम्हि पयट्टो । ठवणंतरं दुविहं सब्भावासब्भावभेएण । भरह-बाहुबलीणमंतरं बुद्धीए सब्भावट्ठवणंतरं । अंतरमिदि बुद्धीए सरूविय दंड-कंड-कोदंडादओ असब्भावट्ठवणंतरं । दव्वंतरं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अंतरपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो अंतरदव्वागमो वा आगमदव्वंतरं । णोआगमदव्वंतरं जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण तिविहं । आधारे आधेयोवयारेण लद्धंतरसण्णं जाणुगसरीरं भविय-वट्टमाण-समुज्झाद-भेएण तिविहं । कधं भवियस्स अणाहारदाए ट्ठिदस्स अंतरसण्णा ? ण एस दोसो, कुंभपज्जायाणाहारेसु वि तंदुलेसु एत्थ कुंभववएसुवलंभा । कधं भूदे एसो ववहारो ? ण, रज्जपज्जायअणाहारे वि पुरिसे राओ आगच्छदि त्ति ववहारुवलंभा । भवियणोआगम-दव्वंतरं भविस्सकाले अंतरपाहुडजाणओ संपहि संते वि उवजोए अंतरपाहुडअगम

यह नाम अन्तरनिक्षेप है। स्थापना अन्तर सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है। भरत और बाहुबलिके बीच उभड़ता हुआ यह सद्भावस्थापना अन्तर है। अन्तर इस प्रकारकी बुद्धिसे स्वरूप करके दंड, बाण, धनुष आदिक असद्भावस्थापना अन्तर हैं, अर्थात् दंड, बाणादिक न होते हुए भी तत्प्रमाण क्षेत्रवर्ती अन्तरकी, यह अंतर इतने धनुष है ऐसी जो कल्पना कर लेते हैं, उसे असद्भावस्थापना अन्तर कहते हैं।

द्रव्यान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। अन्तर विषयक प्राभृतके ज्ञायक किन्तु वर्तमानमें अनुपयुक्त पुरुषको आगमद्रव्यान्तर कहते हैं। अथवा, अन्तरका द्रव्यके प्रतिपादक आगमको आगमद्रव्यान्तर कहते हैं। नोआगमद्रव्यान्तर ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है। आधारमें आधेयके उपचारसे प्राप्त हुई है अन्तरसंज्ञा जिसको ऐसा ज्ञायकशरीर भव्य, वर्तमान और समुत्यक्तके भेदसे तीन प्रकारका है।

शंका—अनाधारतासे स्थित, अर्थात् वर्तमानमें जो अन्तरागमका आधार नहीं है ऐसे, भावी शरीरके ‘ अन्तर ’ इस संज्ञाका व्यवहार कैसे हो सकता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, कुंभ (घट) रूप पर्यायके आधार न होने पर भी तंदुलोंमें यहां अर्थात् व्यवहारमें कुंभ संज्ञा पाई जाती है।

शंका—भूत ज्ञायकशरीरमें यह अन्तरका व्यवहार कैसे बनेगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि राज्यपर्यायके नहीं धारण करनेवाले पुरुषमें भी ‘राजा आता है’ इस प्रकारका व्यवहार पाया जाता है।

भविष्यकालमें जो अन्तरप्राभृतका ज्ञायक होगा, परन्तु वर्तमानमें इस समय उपयोगके होते हुए भी अन्तरप्राभृतके ज्ञानसे रहित है, उस पुरुषको भव्य नोआगमद्रव्यान्तर कहते हैं।

तव्वदिरित्तदव्वंतरं तिविहं सचित्ताचित्त-मिस्सभेएण। तत्थ सचित्तंतरं उसह-मज्झे ट्ठिओ अजिओ। अचित्तंतरं तव्वदिरित्तदव्वंतरं णाम घणोअहि-तणु-ज्झे ट्ठिओ घणाणिलो। मिस्संतरं जहा उज्जंत-सत्तुंजयाणं विच्चालट्ठिदगाम-खेत्त-कालंतराणि दव्वंतरं पविट्ठाणि, छद्दव्ववदिरित्तखेत्त-कालाणमभावा। विहं आगम-णोआगमभेएण। अंतरपाहुडजाणओ उवजुत्तो भावागमो वा आगम णोआगमभावंतरं णाम ओदइयादी पंच भावा दोण्हं भावाणमंतरे ट्ठिदा। त्थ केण अंतरेण पयदं? णोआगमदो भावंतरेण। तत्थ वि अजीवभावंतरं जीवभावंतरे पयदं, अजीवभावंतरेण इह पओजणाभावा। अंतरमुच्छेदो विरहो रिणमणं णत्थित्तगमणं अण्णभावव्ववहाणमिदि एयट्ठो। एदस्स अंतरस्स अणु-राणुगमो। तेण अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो दव्वट्ठिय-पज्जवट्ठियणयावलंबणेण। णिद्देसो किण्ण होज्ज? ण, तइज्जस्स णयस्स अभावा। तं पि कधं णव्वदे?

तद्व्यतिरिक्त द्रव्यान्तर सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका से वृषभ जिन और सम्भव जिनके मध्यमें स्थित अजित जिन सचित्त तद् द्रव्यान्तरके उदाहरण हैं। घनोदधि और तनुवातके मध्यमें स्थित घनवात अचित्त रिक्त द्रव्यान्तर है। ऊर्जयन्त और शत्रुंजयके मध्यमें स्थित ग्राम नगरादिक मिश्र रिक्त द्रव्यान्तर हैं। क्षेत्रान्तर और कालान्तर, ये दोनों ही द्रव्यान्तरमें प्रविष्ट हो क्योंकि, छह द्रव्योंसे व्यतिरिक्त क्षेत्र और कालका अभाव है।

भावान्तर आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। अन्तरशास्त्रके ज्ञायक युक्त पुरुषको आगमभावान्तर कहते हैं, अथवा भावरूप अन्तर आगमको वान्तर कहते हैं। औदयिक आदि पांच भावोंमेंसे किन्हीं दो भावोंके मध्यमें स्थित भावको नोआगम भावान्तर कहते हैं।

शंका—यहां पर किस प्रकारके अन्तरसे प्रयोजन है?

समाधान—नोआगमभावान्तरसे प्रयोजन है। उसमें भी अजीवभावान्तरको जीवभावान्तर प्रकृत है क्योंकि यहां पर अजीवभावान्तरसे कोई प्रयोजन नहीं है। अन्तर उच्छेद विरह परिणामान्तरगमन नास्तित्वगमन और अन्यभावव्यव सब एकार्थवाची नाम हैं। इस प्रकारके अन्तरके अनुगमको अन्तरानुगम कहते अन्तरानुगमसे दो प्रकारका निर्देश है क्योंकि यह निर्देश द्रव्यार्थिक और क अथवा अवलम्बन करनेवाला है।

शंका—तीन प्रकारका निर्देश क्यों नहीं होता है?

समाधान—नहीं क्योंकि तीसरे प्रकारका कोई नय ही नहीं है।

शंका—यह भी कैसे जाना?

१ प्रतिषु ५ अ मप अजिओ इति पा ।

संगहासंगहवदिरित्तअण्णणयाणुवलंभा। एदं मणम्मि काऊण ओघेणादेसेण चेदि[1] उत्तं। एक्केण णिद्देसेण पज्जत्तमिदि चे ण, एक्केण दुणयावलंबिजीवाणमणुग्गहकरणे उवायाभावा।

ओघेण मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायसंभालणट्ठं ओघेणेत्ति उत्तं। सेसगुणट्ठाणपडिसेहट्ठो मिच्छादिट्ठिणिद्देसो। केवचिरं कालादो होदि त्ति पुच्छा एदस्स पमाणत्तपदुप्पायणफला। णाणाजीवमिदि बहुत्ते एगवयणणिद्देसो कधं घडदे? णाणाजीवट्ठियसामण्णविवक्खाए बहूणं पि एगत्तविरोहाभावा। णत्थि अंतरं[2] मिच्छत्तपज्जयपरिणदजीवाणं तिसु वि कालेसु वोच्छेदो विरहो अभावो[3] णत्थि त्ति उत्तं होदि। अंतरस्स पडिसेहे कदे सो पडिसेहो तुच्छो ण होदि त्ति जाणावणट्ठं णिरंतरग्गहणं, णिरंतरेण पडिसेहादो वदिरित्तेण

समाधान—क्योंकि, संग्रह (सामान्य) और असंग्रह (विशेष) को छोड़कर किसी अन्य नयका विषयभूत कोई पदार्थ नहीं पाया जाता है।

इस उक्त प्रकारके शंका-समाधानको मनमें धारण करके सूत्रकारने 'ओघसे और आदेशसे' ऐसा पद कहा है।

शंका—एक ही निर्देश करना पर्याप्त था?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक निर्देशसे दोनों नयोंके अवलम्बन करनेवाले जीवोंके उपकार करनेमें उपायका अभाव है।

ओघसे मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरंतर है ॥ २ ॥

'जैसा उद्देश होता है, वैसा निर्देश होता है' इस न्यायके रक्षणार्थ 'ओघसे' यह पद कहा। मिथ्यादृष्टि पदका निर्देश शेष गुणस्थानोंके प्रतिषेधके लिए है। 'कितने काल होता है' इस पृच्छाका फल इस सूत्रकी प्रमाणताका प्रतिपादन करना है।

शंका—'णाणाजीव' इस प्रकारका यह एक वचनका निर्देश बहुतसे जीवोंमें कैसे घटित होता है?

समाधान—नाना जीवोंमें स्थित सामान्यकी विवक्षासे बहुतोंके लिए भी एक वचनके प्रयोगमें विरोध नहीं आता।

'अन्तर नहीं है' अर्थात् मिथ्यात्वपर्यायसे परिणत जीवोंका तीनों ही कालोंमें व्युच्छेद, विरह या अभाव नहीं होता है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए। अन्तरके प्रतिषेध करने पर यह प्रतिषेध तुच्छ अभावरूप नहीं होता है, किन्तु भावान्तरभावरूप होता है, इस बातके जतलानेके लिए 'निरन्तर' पदका ग्रहण किया है। प्रतिषेधसे

---

१ प्रतिषु 'एवं' इति पाठः।

२ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

३ प्रतिषु 'अभावा' इति पाठः।

मिच्छादिट्ठिणो सव्वकालमतरं णत्थि त्ति उत्त होदि। अथवा पज्जवट्ठियणयावलंबियजीवाणुग्गहट्ठं णत्थि अतरमिदि पडिसेहवयण, दव्वट्ठियणयावलंबिजीवाणुग्गहट्ठं णिरतरमिदि विहिवयण। एसो अत्थो उवरि सव्वत्थ वत्तव्वो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३ ॥

त जधा— एक्को मिच्छादिट्ठी सम्मामिच्छत्त-सम्मत्त-सजमासजम-सजमेसु बहुसो परियट्टिदो परिणामपच्चएण सम्मत्त गदो सव्वलहुमतोमुहुत्तं सम्मत्तेण अच्छिय मिच्छत्तं गदो, लद्धमतोमुहुत्तं सव्वजहण्ण मिच्छत्ततर। एत्थ चोदगो भणदि— ज पडिमिल्लमिच्छत्त त पुणो सम्मत्तुत्तरकाले ण होदि, पुव्वकाले वट्टतस्स उत्तरकाले पउत्तिविरोहा। ण च त चेव उत्तरकाले उप्पज्जइ, उप्पण्णस्स उप्पत्तिविरोहा। तदो अतिल्ल मिच्छत्त पडिमिल्लं ण होदि त्ति अतरस्स अभावो चेयेत्ति ? एत्थ परिहारो उच्चदे— सच्चमेवमेद जदि सुद्धो पज्जवणओ अवलंबिज्जदि। किंतु णइगमणयमवलबिय अतर

व्यतिरिक्त होनेके कारण विधिरूपसे मिथ्यादृष्टि जीव सब काल रहते हैं, यह अर्थ कहा गया है। अथवा, पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिए 'अन्तर नहीं है' इस प्रकारका प्रतिषेधवचन और द्रव्यार्थिक नयका अवलम्बन करनेवाले जीवोंके अनुग्रहके लिये 'निरन्तर' इस प्रकारका विधिपरक वचन कहा गया है। यह अर्थ आगेके सभी सूत्रोंमें भी कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३ ॥

जैसे—एक मिथ्यादृष्टि जीव, सम्यग्मिथ्यात्व, अविरतसम्यक्त्व, सयमासयम और सयममें बहुतबार परिवर्तित होता हुआ परिणामोंके निमित्तसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और वहा पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्तकाल तक सम्यक्त्वके साथ रहकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर प्राप्त हो गया।

शका—यहा पर शकाकार कहता है कि अन्तर करनेके पूर्व जो पहलेका मिथ्यात्व था, वही पुन सम्यक्त्वके उत्तरकालमें नहीं होता है, क्योंकि सम्यक्त्व प्राप्तिके पूर्वकालमें वर्तमान मिथ्यात्वका उत्तरकालमें अर्थात् सम्यक्त्व छोडनेके पश्चात् प्रवृत्ति होनेका विरोध है। तथा, वही मिथ्यात्व उत्तरकालमें भी उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि, उत्पन्न हुई वस्तुके पुन उत्पन्न होनेका विरोध है। इसलिए सम्यक्त्व छूटनेके पश्चात् होनेवाला अन्तिम मिथ्यात्व पहलेका मिथ्यात्व नहीं हो सकता है इसमे अन्तरका अभाव ही सिद्ध होता है ?

समाधान—यहां उक्त शकाका परिहार करते हैं—उक्त कथन सत्य ही है यदि शुद्ध पर्यायार्थिक नयका अवलम्बन किया जाय। किन्तु नैगमनयका अवलम्बन लेकर अन्तर

१ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स सि १, ८

२ मिच्छ म मिच्छ च पडिमिल्लमिच्छ इति पाठः।

देवेसु मणुसाउगेणूणएक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तूणछावट्ठिसागरोवमचरिमसमए परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं गदो। तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय विस्समिय चुदो मणुसो जादो। तत्थ संजमं संजमासंजमं वा अणुपालिय मणुस्साउएणूणवीससागरोवमाउट्ठिदिएसुववज्जिय पुणो जहाकमेण मणुसाउवेणूणबावीस-चउवीससागरोवमट्ठिदिएसु देवेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तूणबेछावट्ठिसागरोवमचरिमसमए मिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं अंतोमुहुत्तूणबेछावट्ठिसागरोवमाणि। एसो उप्पत्तिकमो अउप्पण्णउप्पायणट्ठं उत्तो। परमत्थदो पुण जेण केण वि पयारेण छावट्ठी पूरेदव्वा।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ५ ॥

तं जहा, सासणसम्मादिट्ठिस्स ताव उच्चदे— दो जीवमादिं काऊण एगुत्तरकमेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवियप्पेण उवसमसम्मादिट्ठिणो उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमयमादिं काऊण जाव छावलियावसेसाए आसाणं गदा। तेत्तियं पि कालं सासण-

भवमें मनुष्य आयुसे कम इकतीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले अहमिन्द्र देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर अन्तर्मुहूर्त कम छ्यासठ सागरोपम कालके चरम समयमें परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। उस सम्यग्मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्त काल रहकर पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, विश्राम ले, च्युत हो, मनुष्य हो गया। उस मनुष्य भवमें संयमको अथवा संयमासंयमको परिपालन कर इस मनुष्यभवसम्बन्धी आयुसे कम बीस सागरोपम आयुकी स्थितिवाले आनत प्राणत कल्पोंके देवोंमें उत्पन्न होकर पुनः यथाक्रमसे मनुष्यायुसे कम बाईस और चौबीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न होकर, अन्तर्मुहूर्त कम दो छ्यासठ सागरोपम कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्त कम दो छ्यासठ सागरोपम कालप्रमाण अन्तर प्राप्त हुआ। यह ऊपर बतलाया गया उत्पत्तिका क्रम अव्युत्पन्न जनोंके समझानेके लिए कहा है। परमार्थसे तो जिस किसी भी प्रकारसे छ्यासठ सागरोपम काल पूरा किया जा सकता है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ ५ ॥

जैसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं— दो जीवोंको आदि करके एक एक अधिकके क्रमसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र विकल्पसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समयको आदि करके अधिकसे अधिक छह आवली कालके अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए। जितना काल अवशेष

१ सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः [illegible] सम्यग्मिथ्यादृष्टेर्नाना-जीवापेक्षया सासादनवत्। स. सि. १

ा चरित्तमोहमुवसामेदूण हेट्ठा ओयरिय आसाणं गदस्स अंतोमुहुत्तंतरं किण्ण परूविदं ? उवसमसेडीदो ओदिण्णाणं सासणगमणाभावादो । तं पि कुदो णव्वदे ? एदम्हादो चेव वक्खाणादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी परिणामपच्चएण मिच्छत्तं सम्मत्तं वा पडिवण्णो अंतरिदो । अंतोमुहुत्तेण भूओ सम्मामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरमंतोमुहुत्तं ।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ ८ ॥

तात्र सासणस्सुदाहरणं उच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो । पुणो अंतोमुहुत्तं सम्मत्तेणच्छिय आसाणं गदो (१) । मिच्छत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं मिच्छत्तेण परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो एगसमयावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । भूओ मिच्छा-

शम पर चढ़ और नीचे उतारकर, सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त ाण अन्तर क्यों नहीं बताया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवोंके सासादन गुणस्थानमें गमन करनेका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—भूतबली आचार्यके इसी वचनसे जाना ।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर कहते हैं– एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको, अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त अन्तरको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त ा । इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया ।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥८॥

उनमेंसे पहले सासादन गुणस्थानका उदाहरण कहते हैं– एक अनादि मिथ्याट जीवने अधःप्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम ययमें अनन्त संसारको छिन्न कर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया । पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल यक्त्वके साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त कर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमणकर सारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । पुनः उपशम यक्त्वके कालमें एक समय मात्र रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस ारसे सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया । पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ (२) । पुनः पहले

१ उत्कर्षेणार्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः । स. सि. १, ८.

पडिवज्जिय छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए सासणं गदो। लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। अंतोमुहुत्तकालेण सासणं किण्ण णीदो? ण, उवसमसम्मत्तेण विणा सासणगुणग्गहणाभावा। उवसमसम्मत्तं पि अंतोमुहुत्तेण किण्ण पडिवज्जइ? ण, उवसमसम्मादिट्ठी मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लमाणो तेसिमंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदिं घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुधत्तादो वा जाव हेट्ठा ण करेदि ताव उवसमसम्मत्तग्गहणसंभवाभावा। ताओ ट्ठिदीओ अंतोमुहुत्तेण घादिय सागरोवमादो सागरोवमपुधत्तादो वा हेट्ठा किण्ण करेदि? ण, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तायामेण अंतोमुहुत्तुक्कीरणकालेहि उव्वेल्लणकंडएहि घादिज्जमाणाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण विणा सागरोवमस्स वा सागरोवमपुधत्तस्स वा हेट्ठा पदणाणुववत्तीदो[1]। सासणपच्छायदमिच्छादिट्ठि संजमं गेण्हाविय दंसणतियमुवसामिय

भागमात्र कालसे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर, उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवली काल अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हो गया। इस प्रकारसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध हो गया।

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण कालमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको क्यों नहीं प्राप्त कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके विना सासादन गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है।

शंका—वही जीव उपशमसम्यक्त्वको भी अन्तर्मुहूर्तकालके पश्चात् ही क्यों नहीं प्राप्त होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वको प्राप्त होकर, सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी उद्वेलना करता हुआ, उनकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिको घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपमपृथक्त्वसे जबतक नीचे नहीं करता है, तब तक उपशमसम्यक्त्वका ग्रहण करना ही संभव नहीं है।

शंका—सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितियोंको अन्तर्मुहूर्त कालमें घात करके सागरोपमसे, अथवा सागरोपमपृथक्त्व कालसे नीचे क्यों नहीं करता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र आयामके द्वारा अन्तर्मुहूर्त उत्कीरणकालवाले उद्वेलनाकांडकोंसे घात कीजानेवाली सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिका, पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालके विना सागरोपमके, अथवा सागरोपमपृथक्त्वके नीचे पतन नहीं हो सकता है।

शंका—सासादन गुणस्थानसे पीछे लौटे हुए मिथ्यादृष्टि जीवको संयम ग्रहण कराकर और दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उपशमन कराकर, पुनः चारित्रमोहका

१ प्रतिषु 'पदेणा' इति पाठः।

पुणो चरित्तमोहमुवसामेदूण हेट्ठा ओयरिय आसाणं गदस्स अंतोमुहुत्तंतरं किण्ण परूविदं? ण, उवसमसेढीदो ओदिण्णाणं सासणगमणाभावादो। तं पि कुदो णव्वदे? एदम्हादो चेव भूदबलीवयणादो।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी परिणामपच्चएण मिच्छत्तं सम्मत्तं वा पडिवण्णो अंतरिदो। अंतोमुहुत्तेण भूओ सम्मामिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरमंतोमुहुत्तं।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं[1] ॥ ८ ॥

ताव सासणस्सुदाहरणं वुच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो। पुणो अंतोमुहुत्तं सम्मत्तेणच्छिय आसाणं गदो (१)। मिच्छत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं मिच्छत्तेण परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो एगसमयावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं। भूओ मिच्छा

उपशम करके और नीचे उतरकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त प्रमाण अन्तर क्यों नहीं बताया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवोंके सासादन गुणस्थानमें गमन करनेका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना?

समाधान—भूतबली आचार्यके इसी वचनसे जाना।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर कहते हैं– एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामोंके निमित्तसे मिथ्यात्वको, अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् ही पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ८ ॥

उनमेंसे पहले सासादन गुणस्थानका उदाहरण कहते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अधःप्रवृत्तादि तीनों करण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको छिन्न कर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया। पुनः अन्तर्मुहूर्तकाल सम्यक्त्वके साथ रहकर वह सासादनसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल मिथ्यात्वके साथ परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हो गया। पुनः मिथ्यादृष्टि हुआ (२)। पुनः वेदक

---

1 उक्कर्षेण अर्धपुद्गलपरिवर्तो देशोनः। स. सि. १, ८.

ट्ठी जादो (२)। वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (३) अणंताणुबंधिं विसंजोइय (४) दंसणमोहणीयं खविय (५) अप्पमत्तो जादो (६)। पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेडीपाओग्गविसोहीए विसुज्झिदूण (८) अपुव्वखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धो जादो। एवं समयाहियचोद्दसअंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सासणसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे — एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि वि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं गेण्हंतेण गहिदसम्मत्तपढमसमए अणंतो संसारो छिंदिदूण अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो। उवसमसम्मत्तेण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (२)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। तत्थेव अणंताणुबंधिं विसंजोइय सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतरं (३)। तदो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय (४) दंसणमोहणीयं खविदूण (५) अप्पमत्तो जादो (६)। पुणो पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेडीपाओग्ग-

---

सम्यक्त्वको प्राप्त होकर (३) अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षपण कर (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानोंमें सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (८) अपूर्वकरण क्षपक (९), अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०), सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (११), क्षीणकषाय वीतराग छद्मस्थ (१२), सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्ध होगया। इस प्रकारसे एक समय अधिक चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं — एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तन मात्र किया। उपशमसम्यक्त्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर वह (१) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (२)। पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हो अन्तरको प्राप्त हो गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिभ्रमण कर संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, और वहांपर ही अनन्तानुबन्धीकषायकी विसंयोजना कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर उपलब्ध हो गया (३)। तत्पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (४) दर्शनमोहनीयका क्षपण करके (५) अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध

विसोहीए विसुज्झिदूण (८) अपुव्वखवगो (९) अणियट्टिखवगो (१०) सुहुमखवगो (११) खीणकसाओ (१२) सजोगिकेवली (१३) अजोगिकेवली (१४) होदूण सिद्धिं गदो। एदेहि चोद्दसअंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदा त्ति अंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९ ॥

कुदो? सव्वकालमेदाणमुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १० ॥

एदस्स सुत्तस्स गुणट्ठाणपरिवाडीए अत्थो उच्चदे। तं जहा– एक्को असंजदसम्मादिट्ठी संजमासंजमं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ असंजदसम्मादिट्ठी जादो। लद्धमंतरमंतोमुहुत्तं। संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्को संजदासंजदो असंजदसम्मादिट्ठिं मिच्छादिट्ठिं संजमं वा पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमंतरिय भूओ संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धमंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं संजदासंजदस्स। पमत्तसंजदस्स उच्चदे– एगो पमत्तो अप्पमत्तो

क्षपक (८) अपूर्वकरण क्षपक (९) अनिवृत्तिकरण क्षपक (१०) सूक्ष्मसाम्पराय क्षपक (११) क्षीणकषाय (१२) सयोगिकेवली (१३) और अयोगिकेवली (१४) होकरके सिद्धपदको प्राप्त हुआ। इन चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको आदि लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तकके प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९ ॥

क्योंकि, सर्वकाल ही उक्त गुणस्थानवर्ती जीव पाये जाते हैं।

उक्त गुणस्थानोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ॥ १० ॥

इस सूत्रका गुणस्थानकी परिपाटीसे अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है– एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहांपर अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर अन्तरको प्राप्त हो पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त होगया।

अब संयतासंयतका अन्तर कहते हैं– एक संयतासंयत जीव असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानको अथवा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानको अथवा संयमको प्राप्त हुआ और अन्तर्मुहूर्तकाल वहांपर रह कर अन्तरको प्राप्त हो पुनः संयमासंयमको प्राप्त होगया। इस प्रकारसे संयतासंयतका अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर प्राप्त हुआ।

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

संसारे परिणामपच्चएण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं (२) । पुणो अप्पमत्त भावेण संजमं पडिवज्जिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) खवगसेडी पाओग्गविसोहीए विसुज्झिय (५) अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८) खीणो (९) सजोगी (१०) अजोगी (११) होदूण परिणिव्वुदो । एवमेक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमसंजदसम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं होदि ।

संजदासंजदस्स उच्चदे– एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि कादूण गहिदसम्मत्तपढमसमए सम्मत्तगुणेण अणंतो संसारो छिण्णो अद्धपोग्गलपरियट्ट मेत्तो कदो । सम्मत्तेण सह गहिदसंजमासंजमेण अंतोमुहुत्तमच्छिय छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गदो (१) अंतरिदो मिच्छत्तेण अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय अपच्छिमे भवे सासणं सम्मत्तं संजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण परिणाम पच्चएण संजमासंजमं पडिवण्णो (२) । लद्धमंतरं । अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवज्जिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) खवगसेडीपाओग्गविसोहीए विसुज्झिय (५) अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८) खीणकसाओ (९) सजोगी (१०)

होगया । इस प्रकार सूत्रोक्त अन्तरकाल प्राप्त हुआ (२) । पुनः अप्रमत्त भावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होकर (५) अपूर्वकरणसंयत (६) अनिवृत्तिकरणसंयत (७) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (८) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (९) सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाणको प्राप्त हो गया । इस प्रकारसे इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरि वर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों करण करके सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्वगुणके द्वारा अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण किया । पुनः सम्यक्त्वके साथ ही ग्रहण किए संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहजाने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो (१) अन्तरको प्राप्त हो और मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें सासादन सम्यक्त्वको अथवा संयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी हो परिणाम निमित्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२) । इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर होगया । पुनः अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर (३) प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके योग्य विशुद्धिसे विशुद्ध हो (५) अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) क्षीणकषाय (९)

जोगी (११) होदूण परिणिव्वुदो। एवमेक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्ट-
क्कस्संतरं संजदासंजदस्स होदि।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि काढूण उवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवज्जंतेण अणंतो संसारो छिंदिओ, अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तो कदो। अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) पमत्तो जादो (२)। आदी दिट्ठा। छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गंतूणंतरिय मिच्छत्तेणद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिय अपच्छिमे भवे असंजमसम्मत्तं संजमासंजमं वा पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण अप्पमत्तभावेण संजमं पडिवज्जिय पमत्तो जादो (३)। लद्धमंतरं। तदो खवगसेडीपाओग्गो अप्पमत्तो जादो (४)। पुणो अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) खीणकसाओ (८) सजोगी (९) अजोगी (१०) होदूण णिव्वाणं गदो। एवं दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं पमत्तस्सुक्कस्संतरं होदि।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि वि करणाणि काऊण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णेण छेत्तूण अणंतो संसारो अद्धपोग्गल-

---

सयोगिकेवली (१०) और अयोगिकेवली (११) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे इन ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब प्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होते हुए अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र किया। पुनः उस अवस्थामें अन्तर्मुहूर्त रह कर (१) प्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकारसे यह अर्धपुद्गलपरिवर्तनकी आदि दृष्टिगोचर हुई। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहजाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होकर मिथ्यात्वके साथ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें असंयमसहित सम्यक्त्वको अथवा संयमासंयमको प्राप्त होकर कृतकृत्य वेदकसम्यक्त्वी हो अप्रमत्तभावके साथ संयमको प्राप्त होकर प्रमत्तसंयत हो गया (३)। इस प्रकारसे इस गुणस्थानका अन्तर प्राप्त हो गया। पश्चात् क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। पुनः अपूर्वकरणसंयत (५) अनिवृत्तिकरणसंयत (६) सूक्ष्मसाम्परायसंयत (७) क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ (८) सयोगिकेवली (९) और अयोगिकेवली (१०) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त होकर सम्यक्त्व ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसार छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १३ ॥

तं जधा- सत्तट्ठ जणा बहुआ वा अपुव्वउवसामगा अणियट्टिउवसामगा अप्पमत्ता वा कालं करिय देवा जादा। अंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं वास उक्कस्सेण वासपुधत्तं। तदो अदिक्कंते वासपुधत्ते सत्तट्ठ जणा बहुआ वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणउवसामगा जादा। लद्धमुक्कस्संतरं वासपुधत्तं। एवं चेव सेसतिण्हमुवसामगाणं वासपुधत्तंतरं वत्तव्वं, विसेसाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४ ॥

तं जधा- एक्को अपुव्वकरणो अणियट्टिउवसामगो सुहुमउवसामगो उवसंतकसाओ होदूण पुणो वि सुहुमउवसामगो अणियट्टिउवसामगो होदूण अपुव्वउवसामगो जादो। लद्धमंतरं। एदाओ पंच वि अद्धाओ एक्कट्ठ कदे वि अंतोमुहुत्तमेव होदि त्ति जहण्णंतरमंतोमुहुत्तं होदि।

एवं चेव सेसतिण्हमुवसामगाणमेगजीवजहण्णंतरं वत्तव्वं। णवरि अणियट्टि

उक्त चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १३ ॥

जैसे- सात आठ जन, अथवा बहुतसे अपूर्वकरण उपशामक जीव, अनिवृत्तिकरण उपशामक अथवा अप्रमत्तसंयत हुए और वे मरण करके देव हुए। इस प्रकार यह अपूर्वकरण उपशामक गुणस्थान उत्कृष्टरूपसे वर्षपृथक्त्वके लिए अन्तरको प्राप्त होगया। तत्पश्चात् वर्षपृथक्त्वकालके व्यतीत होनेपर सात आठ जन, अथवा बहुतसे अप्रमत्तसंयत जीव, अपूर्वकरण उपशामक हुए। इस प्रकार वर्षपृथक्त्व प्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होगया। इसी प्रकार अनिवृत्तिकरणादि तीनों उपशामकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व प्रमाण कहना चाहिए, क्योंकि, अपूर्वकरण उपशामकके अन्तरसे तीनों उपशामकोंके अन्तरमें कोई विशेषता नहीं है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४ ॥

जैसे- एक अपूर्वकरण उपशामक जीव, अनिवृत्ति उपशामक, सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और उपशान्तकषाय उपशामक होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और अनिवृत्तिकरण उपशामक होकर अपूर्वकरण उपशामक होगया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तकाल प्रमाण जघन्य अन्तर उपलब्ध हुआ। यद्यपि अनिवृत्तिकरणसे लगाकर पुनः अपूर्वकरण उपशामक होनेके पूर्व तकके पांचों ही गुणस्थानोंके कालोंको एकत्र करने पर भी यह काल अन्तर्मुहूर्त ही होता है, इसलिए जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त ही होता है।

इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका एक जीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सूक्ष्मसाम्परायिक

---

१ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्यमन्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

उवसामगस्स दो सुहुमद्धाओ एगा उवसंतकसायद्धा च जहण्णंतरं होदि। सुहुमउवसामगस्स उवसंतकसायद्धा एक्का चेव जहण्णंतरं होदि। उवसंतकसायस्स पुण हेट्ठा उवसंतकसायमोदरिय सुहुमसांपराओ अणियट्टिकरणो अपुव्वकरणो अप्पमत्तो होदूण पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं करिय अप्पमत्तो अपुव्वो अणियट्टी सुहुमो होदूण पुणो उवसंतकसायगुणट्ठाणं पडिवण्णस्स पयद्धासमूहमेत्तमंतोमुहुत्तमंतरं होदि।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ॥ १५ ॥

अपुव्वस्स ताव उच्चदे- एक्केण अणादियमिच्छादिट्ठिणा तिण्णि करणाणि करिय उवसमसम्मत्तं संजमं च अक्कमेण पडिवण्णपढमसमए अणंतसंसारं छिंदिय अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तं कदेण अप्पमत्तद्धा अंतोमुहुत्तमच्छिय अणुपालिदा (१)। तदो पमत्तो जादो (२)। वेदगसम्मत्तमुप्पाइय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) उवसमसेढीपाओग्गो अप्पमत्तो जादो (५)। अपुव्वो (६) अणियट्टी (७) सुहुमो (८) उवसंतकसाओ (९) पुणो सुहुमो (१०) अणियट्टी (११) अपुव्वकरणो जादो (१२)।

सम्बन्धी दो अन्तर्मुहूर्तकाल और उपशान्तकषायसम्बन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल, ये तीनों मिलाकर जघन्य अन्तर होता है। सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकके उपशान्तकषायसम्बन्धी एक अन्तर्मुहूर्तकाल ही जघन्य अन्तर होता है। किन्तु उपशान्तकषाय उपशामकका उपशान्तकषायसे नीचे उतरकर सूक्ष्मसाम्पराय (१) अनिवृत्तिकरण (२) अपूर्वकरण (३) और अप्रमत्तसंयत (४) होकर, प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके ( ) पुनः अप्रमत्त (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) और सूक्ष्मसाम्परायिक होकर (९) पुनः उपशान्तकषाय गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके उन सभी कालोंका सम्मिलित प्रमाण अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर होता है।

उक्त चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अर्ध पुद्गलपरिवर्तन काल है ॥ १५ ॥

इनमेंसे पहले एक जीवकी अपेक्षा अपूर्वकरण गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने तीनों ही करण करके उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेके प्रथम समयमें ही अनन्त संसारको छेदकर अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र करके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अप्रमत्तसंयतके कालका अनुपालन किया (१)। पीछे प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पुनः वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर (३) सहस्रों प्रमत्त-अप्रमत्त परावर्तनोंको करके (४) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होगया (५)। पुनः अपूर्वकरण (६) अनिवृत्तिकरण (७) सूक्ष्मसाम्पराय (८) उपशान्तकषाय (९) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (१०) अनिवृत्तिकरण (११) और पुनः अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती होगया (१२)। पश्चात् [illegible]

---

१ [illegible]

२ [illegible]

हेट्ठा पडिय अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवे दंसणतियं खविय अपुव्वुवसामगो जादो (१३)। लद्धमंतरं। तदो अणियट्टी (१४) सुहुमो (१५) उवसंतकसाओ (१६) जादो। पुणो पडिणियत्तो सुहुमो (१७) अणियट्टी (१८) अपुव्वो (१९) अप्पमत्तो (२०) पमत्तो (२१) पुणो अप्पमत्तो (२२) अपुव्वखवगो (२३) अणियट्टी (२४) सुहुमो (२५) खीणकसाओ (२६) सजोगी (२७) अजोगी (२८) होदूण णिव्वुदो। एवमट्ठावीसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमपुव्वकरणस्सुक्कस्संतरं होदि। एवं तिण्हमुवसामगाणं। णवरि परिवाडीए छव्वीस चउवीस बावीस अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं तिण्हमुक्कस्संतरं होदि।

चदुण्हं खवग-अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६ ॥

तं जहा— सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अपुव्वकरणखवगा एक्कम्हि चेव समए सव्वे अणियट्टिखवगा जादा। एगसमयमंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं। बिदियसमए सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अपुव्वकरणखवगा जादा। लद्धमंतरमेगसमओ। एवं

गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल प्रमाण परिवर्तन करके अन्तिम भवमें दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका क्षपण करके अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१३)। इस प्रकार अन्तरकाल उपलब्ध होगया। पुनः अनिवृत्तिकरण (१४) सूक्ष्मसाम्परायिक (१५) और उपशान्तकषाय उपशामक होगया (१६)। पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्परायिक (१७) अनिवृत्तिकरण (१८) अपूर्वकरण (१९) अप्रमत्तसंयत (२०) प्रमत्तसंयत (२१) पुनः अप्रमत्तसंयत (२२) अपूर्वकरण क्षपक (२३) अनिवृत्तिकरण क्षपक (२४) सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक (२५) क्षीणकषाय क्षपक (२६) सयोगिकेवली (२७) और अयोगिकेवली (२८) होकर निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अट्ठाईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल अपूर्वकरणका उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे तीनों उपशामकोंका अन्तर जानना चाहिए। किन्तु विशेष बात यह है कि परिपाटीक्रमसे अनिवृत्तिकरण उपशामकके छब्बीस, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके चौबीस और उपशान्तकषायके बाईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय होता है ॥ १६ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा अधिकसे अधिक एक सौ आठ अपूर्वकरण क्षपक एक ही समयमें सबके सब अनिवृत्तिक्षपक होगये। इस प्रकार एक समयके लिए अपूर्वकरण गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया। द्वितीय समयमें सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत एक साथ अपूर्वकरण क्षपक हुए। इस प्रकारसे अपूर्वकरण क्षपकका एक समय प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया। इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी

१ चतुर्णां क्षपकाणामयोगकेवलिनां च नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

सेसगुणट्ठाणाणं वि अंतरमेगसमयो वत्तव्वो।

उक्कस्सेण छम्मासं ॥ १७ ॥

तं जधा- सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अपुव्वकरणखवगा अणियट्टिखवगा जादा। अंतरिदमपुव्वखवगगुणट्ठाणं उक्कस्सेण जाव छम्मासा त्ति। तदो सत्तट्ठ जणा अट्ठुत्तरसदं वा अप्पमत्ता अपुव्वखवगा जादा। लद्धं छम्मासुक्कस्संतरं। एवं सेसगुणट्ठाणाणं पि छम्मासुक्कस्संतरं वत्तव्वं।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ १८ ॥

कुदो? खवगाणं पदणाभावा।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९ ॥

कुदो? सजोगिकेवलिविरहिदकालाभावा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २० ॥

अन्तरकाल एक समय प्रमाण कहना चाहिए।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तरकाल छह मास है ॥ १७ ॥

जैसे— सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अपूर्वकरणक्षपक जीव अनिवृत्तिकरण क्षपक हुए। अतः अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थान उत्कर्षसे छह मासके लिए अन्तरको प्राप्त होगया। तत्पश्चात् सात आठ जन, अथवा एक सौ आठ अप्रमत्तसंयत जीव अपूर्वकरणक्षपक हुए। इस प्रकारसे छह मास उत्कृष्ट अन्तरकाल उपलब्ध होगया। इसी प्रकारसे शेष गुणस्थानोंका भी छह मासका उत्कृष्ट अन्तरकाल कहना चाहिए।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त चारों क्षपकोंका और अयोगिकेवलीका अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ १८ ॥

क्योंकि क्षपक श्रेणीवाले जीवोंके पतनका अभाव है।

सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है, निरन्तर है ॥ १९ ॥

क्योंकि सयोगिकेवली जिनोंसे विरहित कालका अभाव है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २० ॥

१ प्रतिषु 'हि' इति पाठः। २ उत्कर्षेण षण्मासाः। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

४ सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

कुदो? सजोगिणमजोगिभावेण परिणदाणं पुणो सजोगिभावेण परिणमणाभावा।

एवमोघाणुगमो समत्तो।

आदेसेण गदियाणुवादेण णिरयगदीए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २१ ॥

कुदो? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि विरहिदपुढवीणं सव्वद्धमणुवलंभा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २२ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे— एक्को मिच्छादिट्ठी दिट्ठमग्गो परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तं वा सम्मत्तं वा पडिवज्जिय सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो मिच्छादिट्ठी जादो। लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं। सम्मादिट्ठिं पि मिच्छत्तं णेदूण सव्वजहण्णेणंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवज्जाविय असंजदसम्मादिट्ठिस्स जहण्णंतरं वत्तव्वं।

क्योंकि, अयोगिकेवलीरूपसे परिणत हुए सयोगिकेवलियोंका पुनः सयोगिकेवलीरूपसे परिणमन नहीं होता है।

इस प्रकारसे ओघानुगम समाप्त हुआ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें, नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २१ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे रहित रत्नप्रभादि पृथिवियां किसी भी कालमें नहीं पायी जाती हैं।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २२ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर कहते हैं— देखा है मार्गको जिसने ऐसा एक मिथ्यादृष्टि नारकी परिणामोंके निमित्तसे सम्यग्मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर, सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल रहकर, पुनः मिथ्यादृष्टि होगया। इस प्रकारसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तरकाल लब्ध हुआ। इसी प्रकार किसी एक [illegible] नारकीको मिथ्यात्व गुणस्थानमें ले जाकर सर्वजघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल [illegible] सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका जघन्य अन्तर [illegible] चाहिए।

१ विशेषेण गत्यनुवादेन नारकाणां सप्तसु पृथिवीषु मिथ्यादृष्टयसंयतसम्यग्दृष्टयोर्नानाजीवापेक्षया [illegible]। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४ ॥

तं जहा— णिरयगदीए ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठिणो सम्मामिच्छादिट्ठिणो च सव्वे गुणंतरं गदा। दो वि गुणट्ठाणाणि एगसमयमंतरिदाणि। पुणो बिदियसमए केवि उवसमसम्मादिट्ठिणो सासणं गदा, मिच्छादिट्ठिणो असंजदसम्मादिट्ठिणो च सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णा। लद्धमंतरं दोण्हं गुणट्ठाणाणमेगसमओ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ २५ ॥

तं जहा— णिरयगदीए ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठिणो सम्मामिच्छादिट्ठिणो च सव्वे अण्णगुणं गदा। दोण्णि वि गुणट्ठाणाणि अंतरिदाणि। उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तो दोण्हं गुणट्ठाणाणमंतरकालो होदि। पुणो तेत्तियमेत्तकाले वदिक्कंते अप्पप्पणो कारणीभूदगुणट्ठाणेहिंतो दोण्हं गुणट्ठाणाणं संभवे जादे लद्धमुक्कस्संतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर होता है ॥ २४ ॥

जैसे— नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए, और दोनों ही गुणस्थान एक समयके लिए अन्तरको प्राप्त होगये। पुनः द्वितीय समयमें कितने ही उपशमसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए और मिथ्यादृष्टि तथा असंयतसम्यग्दृष्टि नारकी जीव सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार दोनों ही गुणस्थानोंका अन्तर एक समय प्रमाण लब्ध होगया।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ २५ ॥

जैसे— नरकगतिमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, ये सभी जीव अन्य गुणस्थानको प्राप्त हुए और दोनों ही गुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगये। इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तरकाल उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र होता है। पुनः उतना काल व्यतीत होनेपर अपने अपने कारणभूत गुणस्थानोंसे उक्त दोनों गुणस्थानोंके संभव होजानेपर पल्योपमका असंख्यातवां भागप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर लब्ध होगया।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ २६ ॥

तं जहा– 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो सासणस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, सम्मामिच्छाइट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं होदि। दोण्हं णिदरिसणं– एक्को णेरइओ अणादियमिच्छादिट्ठी उवसमसम्मत्तपाओग्गसादियमिच्छादिट्ठी वा तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तेण केत्तियं हि कालमच्छिय आसाणं गंतूण मिच्छत्तं गदो अंतरिदो। पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालेण उव्वेल्लणकंडएहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीओ सागरोवमपुधत्तादो हेट्ठा करिय पुणो तिण्णि करणाणि कादूण उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गदो। लद्धमंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एक्को सम्मामिच्छादिट्ठी मिच्छत्तं सम्मत्तं वा गंतूणंतोमुहुत्तमंतरिय पुणो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतोमुहुत्त-मंतरं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स।

उक्त दोनों गुणस्थानोंका जघन्य अन्तर एक जीवकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ २६ ॥

जैसा– जैसा उद्देश होता है, उसी प्रकारका निर्देश होता है, इस न्यायके अनुसार सासादनसम्यग्दृष्टिका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग, और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

अब क्रमशः सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इन दोनों गुणस्थानोंके अन्तरका उदाहरण कहते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि नारकी जीव अथवा उपशमसम्यक्त्वके प्रायोग्य सादि मिथ्यादृष्टि जीव, तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उपशमसम्यक्त्वके साथ कितने ही काल रहकर पुनः सासादन गुणस्थानको जाकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तरको प्राप्त होकर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालसे उद्वेलना-काण्डकोंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंकी स्थितिओंको सागरोपमपृथक्त्वसे नीचे अर्थात् कम करके पुनः तीनों करण करके और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलीकाल अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पल्योपमके असंख्यातवें भाग प्रमाण अन्तरकाल उपलब्ध होगया। एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वको अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और वहां पर अन्तर्मुहूर्तकाल अन्तर करके पुनः सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यादृष्टिका अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध होगया।

१ [illegible]

अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ सग सगुक्कस्सट्ठिदीओ सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि । सव्व-गदीहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणिस्सरणक्कमो वुच्चदे । तं जहा– जो जीवो सम्मादिट्ठी होदूण आउअं बंधिय सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो सम्मत्तेणेव णिप्फिददि । अह मिच्छादिट्ठी होदूण आउअं बंधिय जो सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जदि, सो मिच्छत्तेणेव णिप्फिददि । कधमेदं णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्खेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६ ॥

कुदो ? तिरिक्खमिच्छादिट्ठिस्स अण्णगुणं गंतूण सव्वजहण्णेण कालेण पुणो तस्सेव गुणस्स तम्मि होदे अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी पृथिवीकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण नारकी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

अब सब गतियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके निकलनेका क्रम कहते हैं । वह इस प्रकार है– जो जीव सम्यग्दृष्टि होकर और आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, वह सम्यक्त्वके साथ ही उस गतिसे निकलता है । अथवा, जो मिथ्यादृष्टि होकर और आयुको बांधकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होता है, वह मिथ्यात्वके साथ ही निकलता है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्यपरम्परागत उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यंच गतिमें, तिर्यंचोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६ ॥

क्योंकि, तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवका अन्य गुणस्थानमें जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः उसी गुणस्थानमें लौटकर आनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर प्राप्त होता है ।

१ [illegible] परिवर्जित [illegible] ।

[illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि[1] ॥ ३७ ॥

णिदरिसण– एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ तिपलिदोवमाउट्ठिदिएसु कुक्कुड-मक्कडादिएसु उववण्णो, बे मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो।

एत्थ बे उवदेसा। तं जहा– तिरिक्खेसु बेमास-मुहुत्तपुधत्तस्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च जीवो पडिवज्जदि। मणुसेसु गब्भादिअट्ठवस्सेसु अंतोमुहुत्तब्भहिएसु सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि त्ति। एसा दक्खिणपडिवत्ती। दक्खिणं उज्जुवं आइरियपरंपरागदमिदि एयट्ठो। तिरिक्खेसु तिण्णिपक्ख-तिण्णिदिवस-अंतोमुहुत्तस्सुवरि सम्मत्तं संजमासंजमं च पडिवज्जदि। मणुसेसु अट्ठवस्साणमुवरि सम्मत्तं संजमं संजमासंजमं च पडिवज्जदि त्ति। एसा उत्तरपडिवत्ती। उत्तरमणुज्जुवं आइरियपरंपराए णागदमिदि एयट्ठो।

पुणो मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। अवसाणे आउअं बंधिय मिच्छत्तं गदो। पुणो सम्मत्तं पडिवज्जिय कालं काऊण सोहम्मीसाणदेवेसु उववण्णो। आदिल्लेहि मुहुत्तपुधत्तब्भहिय बेमासेहि अवसाणे उवलद्ध-बेअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि तिण्णि

तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्योपम है ॥ ३७ ॥

इसका उदाहरण– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक तिर्यंच अथवा मनुष्य तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले कुक्कुट मर्कट आदिमें उत्पन्न हुआ और दो मास गर्भमें रहकर निकला।

इस विषयमें दो उपदेश हैं। वे इस प्रकार हैं– तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव, दो मास और मुहूर्त-पृथक्त्वसे ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त करता है। मनुष्योंमें गर्भकालसे प्रारंभकर, अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षोंके व्यतीत हो जाने पर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमको प्राप्त होता है। यह दक्षिण प्रतिपत्ति है। दक्षिण, ऋजु और आचार्यपरम्परागत, ये तीनों शब्द एकार्थक हैं। तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तके ऊपर सम्यक्त्व और संयमासंयमको प्राप्त होता है। मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ जीव आठ वर्षोंके ऊपर सम्यक्त्व, संयम और संयमासंयमको प्राप्त होता है। यह उत्तर प्रतिपत्ति है। उत्तर, अनृजु और आचार्यपरम्परासे अनागत, ये तीनों एकार्थवाची हैं।

पुनः मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध होकर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पश्चात् अपनी आयुके अन्तमें आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हो, काल करके सौधर्म-ऐशान देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार आदिके मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो मासोंसे और आयुके अवसानमें उपलब्ध दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन

---

[1] उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि देशोनानि । स. सि. १, ८.

सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिदाणि, सो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेणूणसागरोवममेत्ते सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताण ट्ठिदिसंतकम्मे सेसे तसेसुववज्जिय उवसमसम्मत्तं पडिवज्जदि । एदाहि ट्ठिदीहि ऊणसेसकम्मट्ठिदिउव्वेल्लणकालो जेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो तेण सासणेगजीवजहण्णंतरं पि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं होदि।

उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। णवरि विसेसो एत्थ अत्थि तं भणिस्सामा- एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि करिय सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए संसारमणंतं छिंदिय पोग्गलपरियट्टद्धं काऊण उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। आसाणं गदो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय (१) अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय दुचरिमे भवे पंचिदियतिरिक्खेसु उववज्जिय मणुसेसु आउअं बंधिय तिण्णि करणाणि करिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तद्धाए मणुसगदिपाओग्गआवलियाअसंखेज्जदिभागावसेसाए आसाणं गदो । लद्धमंतरं । आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तसासणद्धमच्छिय मदो मणुसो जादो सत्त मासे गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो सत्त वस्साणि अंतोमुहुत्तब्भहियपंचमासे च गमेदूण (२) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (३) अणंताणुबंधी विसंजोइय (४) दंसणमोहणीयं खविय (५) अप्पमत्तो (६) पमत्तो (७) पुणो अप्पमत्तो (८) पुणो अपुव्वादिछहि अंतोमुहुत्तेहि

की है, वह पल्योपमके असंख्यातवें भागसे कम सागरोपमकालमात्र सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थितिसत्त्व अवशेष रहनेपर त्रस जीवोंमें उत्पन्न होकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है। इन स्थितियोंसे कम शेष कर्मस्थिति-उद्वेलनकाल चूंकि पल्योपमके असंख्यातवें भाग है, इसलिए सासादन गुणस्थानका एकजीवसम्बन्धी जघन्य अन्तर भी पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही होता है।

सासादन गुणस्थानका एक जीवसम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तर देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। पर यहां जो विशेष बात है, उसे कहते हैं- अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अनन्त संसारको छेदकर और अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सासादन गुणस्थानको गया। पुनः मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर (१) अर्धपुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और मनुष्योंमें आयुको बांधकर, तीनों करणोंको करके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालमें मनुष्यगतिके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कालके अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हो गया। आवलीके असंख्यातवें भागमात्र काल सासादन गुणस्थानमें रहकर मरा और मनुष्य होगया। वहांपर सात मास गर्भमें रहकर निकला तथा सात वर्ष और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पांच मास बिताकर (२) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (३)। पुनः अनन्तानुबन्धीकषायका विसंयोजन करके (४) दर्शनमोहनीयका क्षपणकर (५) अप्रमत्त (६) प्रमत्त (७) पुनः अप्रमत्त (८) हो, पुनः अपूर्व

(१४) णिव्वाणं गदो। एवं चोद्दसअंतोमुहुत्तेहि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण अब्भहियएहि अट्ठवस्सेहि य ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमंतरं होदि। एत्थुववज्जंतो अत्थो वुच्चदे। तं जधा– सासणं पडिवण्णबिदियसमए जदि मरदि, तो णियमेण देवगदीए उववज्जदि। एवं जाव आवलियाए असंखेज्जदिभागो देवगदिपाओग्गो कालो होदि। तदो उवरि मणुसगदिपाओग्गो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तो कालो होदि। एवं सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-असण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-चउरिंदिय-तेइंदिय-बेइंदिय-एइंदियपाओग्गो होदि। एसो णियमो सव्वत्थ सासणगुणं पडिवज्जमाणाणं।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। एत्थ दव्व-कालंतरअप्पाबहुगस्स सासणभंगो। एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। णवरि एत्थ विसेसो उच्चदे– एक्को तिरिक्खो अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि काऊण सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमए अद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तं संसारं काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो सम्मामिच्छत्तं गदो (१) मिच्छत्तं गंतूण (२) अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण दुचरिमभवे

करणादि छह गुणस्थानोंसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्तोंसे (१४) निर्वाणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे तथा आवलीके असंख्यातवें भागसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल होता है।

अब यहांपर उपयुक्त होनेवाला अर्थ कहते हैं। वह इस प्रकार है– सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें यदि वह जीव मरता है तो नियमसे देवगतिमें उत्पन्न होता है। इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल देवगतिमें उत्पन्न होनेके योग्य होता है। उसके ऊपर मनुष्यगतिके योग्य काल आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकारसे आगे आगे संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, असंज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय और एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेके योग्य होता है। यह नियम सर्वत्र सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेवालोंका जानना चाहिए।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर है। यहां पर द्रव्य, काल और अन्तर सम्बन्धी अल्पबहुत्व सासादनगुणस्थानके समान है। इसी गुणस्थानका अन्तर एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल है। केवल यहां जो विशेषता है उसे कहते हैं– अनादि मिथ्यादृष्टि एक तिर्यंच तीनों करणोंको करके सम्यक्त्वके प्राप्त होनेके प्रथम समयमें अर्धपुद्गलपरिवर्तनमात्र संसारको स्थापित करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और सम्यग्मिथ्यात्वको गया। (१) फिर मिथ्यात्वको जाकर (२) अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें

पंचिंदियतिरिक्खेसु उववज्जिय मणुसाउअं बंधिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सम्मामिच्छत्तं गदो (३)। लद्धमंतरं। तदो मिच्छत्तं गदो (४) मणुसेसुववण्णो। उवरि सासणभंगो। एवं सत्तारसअंतोमुहुत्तब्भहिय-अट्ठवस्सेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। णवरि विसेसो उच्चदे— एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि करणाणि काऊण पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (१) उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गंतूणंतरिदो। अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण दुचरिमभवे पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो। मणुसेसु वासपुधत्ताउअं बंधिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। तदो आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ताए वा एवं गंतूण समऊणछावलियमेत्ताए वा उवसमसम्मत्तद्धाए सेसाए आसाणं गंतूण मणुसगदिपाओग्गम्हि मदो मणुसो जादो (२)। उवरि सासणभंगो। एवं पण्णारसेहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं सम्मत्तुक्कस्संतरं होदि।

उत्पन्न होकर मनुष्य आयुको बांधकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होकर सम्यग्मिथ्यात्वको गया (३)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पुनः मिथ्यात्वको गया (४) और मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। इसके पश्चात्का कथन सासादनसम्यग्दृष्टिके समान ही है। इस प्रकार सत्तरह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टिका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे देशोन अर्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण अन्तरकाल है। केवल जो विशेषता है वह कही जाती है— एक अनादिमिथ्यादृष्टि जीव तीनों ही करणोंको करके प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१) और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल परिवर्तित होकर द्विचरम भवमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः मनुष्योंमें वर्षपृथक्त्वकी आयुको बांधकर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पीछे आवलीके असंख्यातवें भागमात्र कालसे आदि लेकर अधिकसे अधिक एक समय कम छह आवली कालप्रमाण तक, उपशमसम्यक्त्वके कालमें अवशेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मनुष्यगतिके योग्य कालमें मरा और मनुष्य हुआ (२)। इसके ऊपर सासादनके समान कथन जानना चाहिए। इस प्रकार पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

संजदासंजदाणं णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। एत्थ विसेसो उच्चदे– एक्को अणादिय मिच्छादिट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टस्सादिसमए उवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१) छावलियावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए आसाणं गंतूणंतरिदो मिच्छत्तं गदो। अद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय दुचरिमे भवे पंचिंदियतिरिक्खेसु उप्पज्जिय उवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। तदो मिच्छत्तं गदो (३) आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) कालं गदो मणुस्सेसु उववण्णो। उवरि सासणभंगो। एवमट्ठारसअंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टं संजदासंजदुक्कस्संतरं होदि। तिरिक्खेसु संजमासंजमगहणादो पुव्वमेव मिच्छादिट्ठी मणुसाउअं किण्ण बंधाविदो? ण, बद्धमणुसाउअमिच्छादिट्ठिस्स संजमगहणाभावा।

पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २९ ॥

संयतासंयतोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल अन्तर है। यहांपर जो विशेषता है उसे कहते हैं– एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें उपशमसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (१)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जानेपर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त होता हुआ मिथ्यात्वमें गया। पश्चात् अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल परिभ्रमण करके द्विचरम भवमें पंचेन्द्रियतिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर उपशमसम्यक्त्वको और संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ। पश्चात् मिथ्यात्वको गया (३) व आयु बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। इसके ऊपर सासादनका ही क्रम है। इस प्रकार अठारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—तिर्यंचोंमें संयमासंयम ग्रहण करनेसे पूर्व ही उस मिथ्यादृष्टि जीवको मनुष्य आयुका बंध क्यों नहीं कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मनुष्यायुका बंध करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवके संयमका ग्रहण नहीं होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३० ॥

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ४५ ॥

एत्थ ताव पंचिंदियतिरिक्खसासणाणं उच्चदे। तं जहा- एक्को मणुसो णेरइओ देवो वा एगसमयावसेसाए सासणद्धाए पंचिंदियतिरिक्खेसु उववण्णो। तत्थ पंचाणउदिपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि गमिय अवसाणे (उवसमसम्मत्तं घेत्तूण) एगसमयावसेसे आउए आसाणं गदो कालं करिय देवो जादो। एवं दुसमऊणसगट्ठिदी सासणुक्कस्संतरं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठीणमुच्चदे- एक्को मणुसो अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) अंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडीओ परिभमिय तिपलिदोवमिएसु उववज्जिय अवसाणे पढमसम्मत्तं घेत्तूण सम्मामिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (५)। सम्मत्तं वा मिच्छत्तं वा जेण गुणेण आउअं बद्धं तं पडिवज्जिय (६) देवेसु उववण्णो। छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा सगट्ठिदी उक्कस्संतरं होदि। एवं पंचिं-

---

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती तीनों प्रकारके तिर्यंचोंका अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ४५ ॥

इनमेंसे पहले पचेन्द्रिय तिर्यंच सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं। जैसे- कोई एक मनुष्य, नारकी अथवा देव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रह जानपर पचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ। उनमें पचानवे पूर्वकोटिकालसे अधिक तीन पल्योपम बिताकर अन्तमें (उपशमसम्यक्त्व ग्रहण करके) आयुके एक समय अवशेष रह जाने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और मरण करके देव उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दो समय कम अपनी स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब तिर्यंचत्रिक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक मनुष्य, संज्ञी पचेन्द्रिय तिर्यंच सम्मूर्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ और छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) तथा अन्तरको प्राप्त होकर पचानवे पूर्वकोटि कालप्रमाण उन्हीं तिर्यंचोंमें परिभ्रमण करके तीन पल्योपमकी आयुवाले तिर्यंचोंमें उत्पन्न होकर और अन्तमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके सम्यग्मिथ्यात्वको गया। इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५)। पीछे जिस गुणस्थानसे आयु बांधी थी उसी सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होकर (६) देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति ही इस गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर है। इसी प्रकार पचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंका

दियतिरिक्खपज्जत्ताण। णवरि सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ तिण्णि पलिदोवमाणि च पु
दोसमयछअंतोमुहुत्तेहि य ऊणाणि उक्कस्सतरं होदि। एव जोणिणीसु वि। णवरि स
मिच्छादिट्ठिउक्कस्सम्हि णत्थि विसेसो। उच्चदे— एक्को णरइओ देवो वा मणुसे
अट्ठावीससतकम्मिओ पचिंदियतिरिक्खजोणिणिकुक्कुड मक्कडेसु उववण्णो वे मास ग
अच्छिय णिक्खतो मुहुत्तपुधत्तेण विसुद्धो सम्मामिच्छत्त पडिवण्णो। पण्णारस पु
कोडीओ परिभमिय कुरवेसु उववण्णो। सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अच्छिय अवस
सम्मामिच्छत्त गदो। लद्धमतर। जेण गुणेण आउअ बद्ध, तेणेव गुणेण मदो दे
जादो। दोहि अंतोमुहुत्तेहि मुहुत्तपुधत्ताहिय-बेमासेहि य ऊणाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहिय
तिण्णि पलिदोवमाणि उक्कस्सतर होदि। सम्मुच्छिमसुप्पाइय सम्मामिच्छत्त किण्ण
पडिवज्जाविदो ? ण, तत्थ इत्थिवेदाभावा। सम्मुच्छिमेसु इत्थि पुरिसवेदा किमट्ठ ण
होंति ? सहावदो चेय।

असजदसम्मादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि, णाणाजीव
पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर ॥ ४६ ॥

त्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि सैंतालीस पूर्वकोटियां और पूर्वोक्त
र समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पल्योपमकाल इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है।
इसी प्रकार योनिमतियोंका भी अन्तर जानना चाहिए। केवल उनके सम्यग्मिथ्यादृष्टि
सम्बन्धी उत्कृष्ट अन्तरमें विशेषता है, उसे कहते हैं— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी
सत्ता रखनेवाला एक नारकी, देव अथवा मनुष्य, पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमती कुक्कुट,
मर्कट आदिमें उत्पन्न हुआ, दो मास गर्भमें रहकर निकला व मुहूर्तपृथक्त्वसे विशुद्ध
होकर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। (पश्चात् मिथ्यात्वमें आकर) पन्द्रह पूर्वकोटि
काल्प्रमाण परिभ्रमण करके देवकुरु उत्तरकुरु इन दो भोगभूमियोंमें उत्पन्न हुआ। वहां
सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ रहकर आयुके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ।
इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया। पश्चात् जिस गुणस्थानसे आयुको बांधा था उसी
गुणस्थानसे मरकर देव हुआ। इस प्रकार दो अन्तर्मुहूर्त और मुहूर्तपृथक्त्वसे अधिक दो
मासोंसे हीन पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपमकाल उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका— सम्मूर्छिम तिर्यंचोंमें उत्पन्न कराकर पुन सम्यग्मिथ्यात्वको क्यों नहीं
प्राप्त कराया ?

समाधान— नहीं, क्योंकि सम्मूर्छिम जीवोंमें स्त्रीवेदका अभाव है।

शंका— सम्मूर्छिम जीवोंमें स्त्रीवेद और पुरुषवेद क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान— स्वभावसे ही नहीं होते हैं।

असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना
जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ४६ ॥

१ प्रतिषु ... इति पाठ नास्ति।

कुदो ? असंजदसम्मादिट्ठिविरहिदपंचिंदियतिरिक्खतिगस्स सव्वद्धमणुवलंभा ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ४७ ॥

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खतियअसंजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाणं अण्णगुणं पडिवज्जिय अइदहरकालेण पुणरागमणमंतोमुहुत्ततरुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि ॥ ४८ ॥

पंचिंदियतिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे– एक्को मणुसो अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) संकिलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय पंचाणउदिपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो थोवावसेसे जीविए उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो । लद्धमंतरं (५) । तदो उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं गंतूण देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि पंचाणउदिपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि पंचिंदियतिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठीणं

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंसे विरहित पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक किसी भी कालमें नहीं पाये जाते हैं ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ४७ ॥

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अन्य गुणस्थानको प्राप्त होकर अत्यल्प कालसे पुनः उसी गुणस्थानमें आनेपर अन्तर्मुहूर्त कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तीनों असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपमकाल है ॥ ४८ ॥

पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मनुष्य संज्ञी पंचेन्द्रियतिर्यंच सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हो (४) संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वमें जाकर व अन्तरको प्राप्त होकर पंचानवे पूर्वकोटियां बिताकर तीन पल्योपमकी आयुस्थितिवाले उत्तम भोगभूमियां तिर्यंचोंमें उत्पन्न हुआ और जीवनके स्वल्प अवशेष रहने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर प्राप्त हुआ (५) । पश्चात् उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जानेपर सासादन गुणस्थानमें जाकर मरा और देव हुआ । इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पंचानवे पूर्वकोटियोंसे अधिक तीन पल्योपम प्रमाणकाल पंचेन्द्रिय तिर्यंच

कुदो ? पंचिंदियतिरिक्खतिगसंजदासंजदस्स दिट्ठमग्गस्स अण्णगुणं गंतूण अइदहरकालेण पुणरागदस्स अंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ५१ ॥

तत्थ ताव पंचिंदियतिरिक्खसंजदासंजदाणं उच्चदे । तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिपंचिंदियतिरिक्खसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (४) संकिलिट्ठो मिच्छत्तं गंतूणंतरिय छण्णउदिपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए मिच्छत्तेण सम्मत्तेण वा सोहम्मादिसु आउअं बंधिय अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए संजमासंजमं पडिवण्णो (५) कालं करिय देवो जादो । पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ छण्णउदिपुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं जादं ।

पंचिंदियतिरिक्खपज्जत्तएसु एवं चेव । णवरि अट्ठेतालीसपुव्वकोडीओ त्ति भाणिदव्वं । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु वि एवं चेव । णवरि केइ विसेसो अत्थि तं भणिस्सामो । तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु उववण्णो

क्योंकि, देखा है मार्गको जिन्होंने, ऐसे तीनों प्रकारके पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतके अन्य गुणस्थानको जाकर अतिस्वल्पकालसे पुनः उसी गुणस्थानमें आने पर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण काल पाया जाता है।

उन्हीं तीनों प्रकारके तिर्यंच संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व है ॥ ५१ ॥

इनमेंसे पहले पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतोंका अन्तर कहते हैं। जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंच सम्मूर्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ, व छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (४)। तथा संक्लिष्ट हो मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो छ्यानवे पूर्वकोटिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें मिथ्यात्व अथवा सम्यक्त्वके साथ सौधर्मादि कल्पोंकी आयुको बांधकर व जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५) और मरण कर देव हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे हीन छ्यानवे पूर्वकोटियां पंचेन्द्रिय तिर्यंच संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच पर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है। विशेषता यह है कि इनके अड़तालीस पूर्वकोटिप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिए। पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें भी इसी प्रकार अन्तर होता है। किन्तु कुछ विशेषता है उसे कहते हैं। जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें

असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टाणि परियट्टिय पडिणियत्तिय आगंतूण पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्तेसु उप्पण्णस्स सुत्तुत्तंतरुवलंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ५५ ॥

जीवट्ठाणम्हि मग्गणाविसेसिदगुणट्ठाणाणं जहण्णुक्कस्संतरं वत्तव्वं । अदो पुणो मग्गणाए उत्तमंतरं । तदो णेदं घडदि त्ति आसंकिय गंथकत्तारो परिहारं भणदि- एसमेदं गदिं पडुच्च उत्तं सिस्समइवित्थारणट्ठं । तदो ण दोसो त्ति ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५६ ॥

एदस्सत्थो- गुणं पडुच्च अंतरे भण्णमाणे उभयदो जहण्णुक्कस्सेहिंतो णाणाजीवेहि वा अंतरं णत्थि, गुणंतरगहणाभावा पवाहवोच्छेदाभावाच्च ।

मणुसगदीए मणुस-मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ५७ ॥

र्यंच भवस्थानमें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण करके पुनः लौटकर पंचेन्द्रिय तिर्यंच लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुए जीवके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा गया है ॥ ५५ ॥

यहां जीवस्थानखंडमें मार्गणाविशेषित गुणस्थानोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। किन्तु, इस सूत्रमें तो मार्गणाकी अपेक्षा अन्तर कहा है और इसलिए यह यहां घटित नहीं होता है। ऐसी आशंका करके ग्रंथकर्ता उसका परिहार करते हुए कहते हैं कि यहां यह अन्तरकथन गतिकी अपेक्षा शिष्योंकी बुद्धि विस्फुरित करनेके लिए किया है, अतः उसमें कोई दोष नहीं है।

गुणस्थानकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों प्रकारोंसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५६ ॥

इसका अर्थ- गुणस्थानकी अपेक्षा अन्तर कहने पर जघन्य और उत्कृष्ट, इन दोनों ही प्रकारोंसे, अथवा नाना जीव और एक जीव इन दोनों अपेक्षाओंसे, अन्तर नहीं है, क्योंकि, यहां मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके सिवाय अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है, तथा उनके प्रवाहका कभी व्युच्छेद भी नहीं होता है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्तक और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ५७ ॥

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिगुणपरिणदजीवेसु अण्णगुणं गदेसु गुणंतरस्स जहण्णेण एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणेहि विणा तिविहमणुस्साणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालमवट्ठाणदंसणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ६२ ॥

सासणस्स जहण्णंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । कुदो ? एत्तिएण कालेण विणा पढमसम्मत्तग्गहणपाओग्गाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए सागरोवमपुधत्तादो हेट्ठिमाए उप्पत्तीए अभावा । सम्मामिच्छादिट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं, अण्णगुण

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे परिणत सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन गुणस्थानोंका अन्तर जघन्यसे एक समय देखा जाता है ।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके विना तीनों ही प्रकारके मनुष्योंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक अवस्थान देखा जाता है ।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

सासादन गुणस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, इतने कालके विना प्रथमसम्यक्त्वके ग्रहण करने योग्य सागरोपमपृथक्त्वसे नीचे होनेवाली सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिकी उत्पत्तिका अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि, उसका अन्य गुणस्थानको

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८

गदूण अंतोमुहुत्तेण पुणरागमुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[1] ॥ ६३ ॥

मणुससासणसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे– एक्को तिरिक्खो देवो णरइओ वा सासणद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति मणुसो जादो । विदियसमए मिच्छत्तं गदूण अंतरिय सत्तेतालीसपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि भमिय पच्छा उवसमसम्मत्तं गदो । तम्हि एगो समओ अत्थि त्ति सासणं गदूण मदो देवो जादो । दुसमऊणा मणुसुक्कस्स-ट्ठिदी[2] सासणुक्कस्संतरं जादं ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगदो मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु विसुद्धो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (१) । मिच्छत्तं गदो सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमिएसु मणुसेसु उववण्णो आउअं बंधिय अवसाणे सम्मामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (२) । तदो मिच्छत्त-सम्मत्ताणं जेण आउअं बद्धं तं गुणं गदूण मदो देवो जादो (३) । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि

आकर अन्तर्मुहूर्तसे पुनः आगमन पाया जाता है ।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल है ॥ ६३ ॥

पहले मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक तिर्यंच देव अथवा नारकी जीव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मनुष्य हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर सैंतालीस पूर्वकोटियोंसे अधिक तीन पल्योपमकाल परिभ्रमणकर पीछे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उस उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया । इस प्रकार दो समय कम मनुष्यकी उत्कृष्ट स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होगया ।

अब मनुष्यसम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षोंके व्यतीत होने पर विशुद्ध हो सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ सैंतालीस पूर्वकोटियां बिताकर तीन पल्योपमकी स्थितिवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुको बांधकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (२) । तत्पश्चात् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमेंसे जिसके द्वारा आयु बांधी थी उसी गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया (३) । इस प्रकार तीन

[1] उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि । स. सि. १, ८.

[2] प्रतिषु 'दुसमऊणाणमणुस्सट्ठिदी' इति पाठः ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ६० ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदसासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिगुणपरिणदजीवेसु अण्णगुणं गदेसु गुणंतरस्स जहण्णेण एगसमयदंसणादो ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ६१ ॥

कुदो ? सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठिगुणट्ठाणेहि विणा तिविहमणुसाणं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तकालमवट्ठाणदंसणादो ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ६२ ॥

सासणस्स जहण्णंतरं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। कुदो ? एत्तिएण कालेण विणा पढमसम्मत्तग्गहणपाओग्गाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए सागरोवमपुधत्तादो हेट्ठिमाए उप्पत्तीए अभावा। सम्मामिच्छादिट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं जहण्णंतरं, अण्णगुण

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ६० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंमें स्थित सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे परिणत सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जानेपर इन गुणस्थानोंका अन्तर जघन्यसे एक समय देखा जाता है।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ६१ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके विना तीनों ही प्रकारके मनुष्योंके पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र काल तक अवस्थान देखा जाता है।

उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६२ ॥

सासादन गुणस्थानका जघन्य अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि, इतने कालके विना प्रथमसम्यक्त्वके ग्रहण करने योग्य सागरोपमपृथक्त्वसे नीचे होनेवाली सम्यक्त्वप्रकृति तथा सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिकी स्थितिकी उत्पत्तिका अभाव है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त होता है, क्योंकि, उसका अन्य गुणस्थानको

१ [illegible] । स. सि. १, ८

२ [illegible] । स. सि. १, ८

गतूण अंतोमुहुत्तेण पुणरागमुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[1] ॥ ६३ ॥

मणुससासणसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे- एक्को तिरिक्खो देवो णेरइओ वा सासणद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति मणुसो जादो । बिदियसमए मिच्छत्तं गंतूण अंतरिय सत्तेतालीसपुव्वकोडिअब्भहियतिण्णि पलिदोवमाणि भमिय पच्छा उवसमसम्मत्तं गदो । तम्हि एगो समओ अत्थि त्ति सासणं गंतूण मदो देवो जादो । दुसमऊणा मणुसुक्कस्सट्ठिदी[2] सासणुक्कस्संतरं जादं ।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगदो मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु विसुद्धो सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (१) । मिच्छत्तं गदो सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमिएसु मणुसेसु उववण्णो आउअं बंधिय अवसाणे सम्मामिच्छत्तं गदो । लद्धमंतरं (२) । तदो मिच्छत्त-सम्मत्ताणं जेण आउअं बद्धं तं गुणं गंतूण मदो देवो जादो (३) । एवं तीहि अंतोमुहुत्तेहि अट्ठवस्सेहि

आकर अन्तर्मुहूर्तसे पुनः आगमन पाया जाता है ।

उक्त मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिवर्षपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम काल है ॥ ६३ ॥

पहले मनुष्य सासादनसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक तिर्यंच, देव अथवा नारकी जीव सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर मनुष्य हुआ । द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर सैंतालीस पूर्व कोटियोंसे अधिक तीन पल्योपमकाल परिभ्रमणकर पीछे उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । उस उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया । इस प्रकार दो समय कम मनुष्यकी उत्कृष्ट स्थिति सासादन गुणस्थानका उत्कृष्ट अन्तर होगया ।

अब मनुष्य सम्यग्मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षोंके व्यतीत होने पर विशुद्ध हो सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१) । पुनः मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ सैंतालीस पूर्वकोटियां बिताकर तीन पल्योपमकी स्थिति वाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आयुको बांधकर अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (२) । तत्पश्चात् मिथ्यात्व और सम्यक्त्वमेंसे जिसके द्वारा आयु बांधी थी उसी गुणस्थानको जाकर मरा और देव होगया (३) । इस प्रकार तीन

1 उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

2 प्रतिषु 'दुसमऊणाणमणुकस्सट्ठिदी' इति पाठः ।

य ऊणा सगट्ठिदी सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं ।

एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि । णवरि मणुसपज्जत्तेसु तेवीसं पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु सत्त पुव्वकोडीओ तिसु पलिदोवमेसु अहियाओ त्ति वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ६४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ६५ ॥

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदअसंजदसम्मादिट्ठिस्स अण्णगुणं गंतूणंतरिय पडिणियत्तिय अंतोमुहुत्तेण आगमणुवलंभा ।

उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि[3] ॥ ६६ ॥

मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं ताव उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो

अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम अपनी स्थिति सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंका भी अन्तर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्तकोंमें तेवीस पूर्वकोटियां और तीन पल्योपमका अन्तर कहना चाहिए। और मनुष्यनियोंमें सात पूर्वकोटियां तीन पल्योपमोंमें अधिक कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिकका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा मनुष्यत्रिकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त हो और लौटकर अन्तर्मुहूर्तसे आगमन पाया जाता है।

असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्यत्रिकका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक तीन पल्योपम है ॥ ६६ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– अट्ठाईस मोह

---

१ असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रीणि पल्योपमानि पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकानि । स. सि. १, ८.

आगदो मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेसु गदेसु विसुद्धो वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (१)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सत्तेतालीसपुव्वकोडीओ गमेदूण तिपलिदोवमिएसु उववण्णो । तदो बद्धाउओ संतो उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (२)। उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियावसेसाए सासणं गंतूण मदो देवो जादो । अट्ठवस्सेहि बेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणा सगट्ठिदी असंजदसम्मादिट्ठीणं उक्कस्संतरं होदि । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीणं पि । णवरि तेवीस सत्त-पुव्वकोडीओ तिपलिदोवमेसु अहियाओ त्ति वत्तव्वं ।

संजदासंजदप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ६७ ॥[1]

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ६८ ॥[2]

कुदो ? तिविहमणुसेसु ट्ठिदतिगुणट्ठाणजीवस्स अण्णगुणं गंतूणंतरिय पुणो अंतोमुहुत्तेण पोराणगुणस्सागमुवलंभा ।

मनुष्यत्रिककी सत्तावाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आया और मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भसे आदि लेकर आठ वर्षके बीतनेपर विशुद्ध हो वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो सैंतालीस पूर्वकोटियां बिताकर तीन पल्योपमवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। तत्पश्चात् आयुको बांधता हुआ उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहनेपर सासादन गुणस्थानको जाकर मरा और देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि मनुष्यपर्याप्त असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर तेईस पूर्वकोटियां तीन पल्योपमोंसे अधिक तथा मनुष्यनियोंमें सात पूर्वकोटियां तीन पल्योपमसे अधिक होती हैं ऐसा कहना चाहिए।

संयतासंयतोंसे लेकर अप्रमत्तसंयतों तकके मनुष्यत्रिकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ६८ ॥

क्योंकि, तीन प्रकारके मनुष्योंमें स्थित संयतासंयतादि तीन गुणस्थानवर्ती जीवका अन्य गुणस्थानको जाकर अन्तरको प्राप्त होकर और पुनः लौटकर अन्तर्मुहूर्तद्वारा पुराने गुणस्थानका होना पाया जाता है।

१ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि.

उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं ॥ ६९ ॥

मणुससंजदासंजदाणं ताव उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगंतूण मणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्सिओ जादो वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो (१)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय अट्ठदालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए देवाउअं बंधिय संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धमंतरं (२)। मदो देवो जादो। एवं अट्ठवस्सेहि बे-अंतोमुहुत्तेहि य ऊणाओ अट्ठदालीसपुव्वकोडीओ संजदासंजदुक्कस्संतरं होदि।

पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णगदीदो आगंतूण मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेहि वेदगसम्मत्तं संजमं च पडिवण्णो अप्पमत्तो (१) पमत्तो होदूण (२) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय अट्ठतालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय अपच्छिमाए पुव्वकोडीए बद्धाउओ संतो अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (३)। मदो देवो जादो। तिण्णि अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेणूणअट्ठदालीसपुव्वकोडीओ पमत्तुक्कस्संतरं होदि।

उक्त तीनों गुणस्थानवाले मनुष्यत्रिकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्व है ॥ ६९ ॥

इनमेंसे पहले मनुष्य संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षका हुआ। और वेदकसम्यक्त्व तथा संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अड़तालीस पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर आयुके अन्तमें देवायुको बांधकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे उक्त अन्तर लब्ध हुआ (२)। पुनः मरा और देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्यगतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। पुनः गर्भको आदि लेकर आठ वर्षसे वेदकसम्यक्त्व और संयमको प्राप्त हुआ। पश्चात् वह अप्रमत्तसंयत (१) प्रमत्तसंयत होकर (२) मिथ्यात्वमें जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर, अड़तालीस पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें बद्धायुष्क होता हुआ अप्रमत्तसंयत हो पुनः प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकारसे अन्तर लब्ध होगया (३)। पश्चात् मरा और देव होगया। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

१ [illegible]

अप्पमत्तस्स उक्कस्संतरं उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ आगन्तूण मणुस्सेसु उप्पज्जिय गब्भादिअट्ठवस्सिओ जादो। सम्मत्तं अप्पमत्त पडिवण्णो (१)। पमत्तो होदूणंतरिदो अडदालीसपुव्वकोडीओ परिभमिय पुव्वकोडीए बद्धदेवाउओ संतो अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (२)। तदो प (३) मदो देवो जादो। तीहि अंतोमुहुत्तेहि अब्भहियअट्ठवस्सेहि ऊणाओ पुव्वकोडीओ उक्कस्संतरं। पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव। णवरि पज्जत्तेसु पुव्वकोडीओ मणुसिणीसु अट्ठपुव्वकोडीओ त्ति वत्तव्वं।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाण पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७० ॥

कुदो? तिविहमणुस्साणं चउव्विहउवसामगेहि विणा एगसमयावट्ठाणुवलंभा

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ७१ ॥

कुदो? तिविहमणुस्साणं चउव्विहउवसामगेहि विणा उक्कस्सेण वासपुधत्तावट्ठ वलंभादो।

अब अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियों सत्ता रखनेवाला कोई एक जीव अन्य गतिसे आकर मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भ आदि लेकर आठ वर्षका हुआ और सम्यक्त्व तथा अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्तसंयत हो अन्तरको प्राप्त हुआ और अड़तालीस पूर्वकोटियां परिभ्रमण कर अन्तिम पूर्वकोटिमें देवायुका बांधता हुआ अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकारसे अन्तर प्राप्त हुआ (२)। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत होकर (३) मरा और देव होगया। ऐसे तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षोंसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां उत्कृष्ट अन्तर होता है। पर्याप्त मनुष्यनियोंमें इसी प्रकारका अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि इन पर्याप्तमनुष्योंके चौबीस पूर्वकोटि और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटिकालप्रमाण अन्तर कहना चाहिए।

चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ७० ॥

क्योंकि, तीनों ही प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना एक समय अवस्थान पाया जाता है।

चारों उपशामकोंका उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है ॥ ७१ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंका चारों प्रकारके उपशामकोंके विना उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व रहनेवाला पाया जाता है।

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

णवहि अट्ठहि अंतोमुहुत्तेहि एगसमयाहियअट्ठवस्सेहि य ऊणाओ अट्ठेदालीसपुव्व-कोडीओ उक्कस्संतरं होदि त्ति वत्तव्वं । पज्जत्त-मणुसिणीसु एवं चेव । णवरि पज्जत्तेसु चउवीसं पुव्वकोडीओ, मणुसिणीसु अट्ठ पुव्वकोडीओ त्ति वत्तव्वं ।

चदुण्हं खवा अजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ७४ ॥

कुदो ? एदेसु गुणट्ठाणेसु अण्णगुण णिव्वुदिं च गदेसु एदसिमेगसमयमंतर-जहण्णंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण छम्मासं, वासपुधत्तं ॥ ७५ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं छम्मासमंतरं होदि । मणुसिणीसु वासपुधत्तमंतरं होदि । जहासंखाए विणा कधमेदं णव्वदे ? गुरूवदेसादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ७६ ॥

कुदो ? खवगाणं पुणो आगमणाभावा । णिरंतरणिद्देसो किमट्ठं वुच्चदे ? णिग्गयमंतरं जम्हा

होता है । किन्तु उनमें क्रमशः दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्तोंसे और एक समय अधिक आठ वर्षोंसे कम अड़तालीस पूर्वकोटियां उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए । मनुष्यपर्याप्तोंमें या मनुष्यनियोंमें भी ऐसा ही अन्तर होता है । विशेषता यह है कि पर्याप्तोंमें चौवीस पूर्वकोटियों और मनुष्यनियोंमें आठ पूर्वकोटियोंसे कम प्रमाण अन्तर कहना चाहिए ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय है ॥ ७४ ॥

क्योंकि, इन गुणस्थानोंमें जीवोंके चारों क्षपकोंके अन्य गुणस्थानोंमें तथा अयोगिकेवलीके निर्वृतिको चले जानेपर एक समयमात्र जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर, छह मास और वर्षपृथक्त्व होता है ॥ ७५ ॥

मनुष्य और मनुष्यपर्याप्तक क्षपक या अयोगिकेवलियोंका उत्कृष्ट अन्तर छह मास प्रमाण है । मनुष्यनियोंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण अन्तर होता है ।

शंका—सूत्रमें यथासंख्य पदके विना यह बात कैसे जानी जाती है ?

समाधान—गुरुके उपदेशसे ।

चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ७६ ॥

क्योंकि चारों क्षपक और अयोगिकेवलीके पुनः आगमनका अभाव है ।

शंका—सूत्रमें निरन्तर पदका निर्देश किस लिए है ?

समाधान—निकल गया है अन्तर जिस गुणस्थानसे उस गुणस्थानको निरन्तर

१ यथासंख्यं [illegible] । स. सि. १, ८

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ८१ ॥

कुदो ? मणुसअपज्जत्तस्स एइंदिएसु गदस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्त-पोग्गलपरियट्टे परियट्टिदूण पडिणियत्तिय आगदस्स सुत्तुत्तंतरुवलंभा ।

एदं गदिं पडुच्च अंतरं ॥ ८२ ॥

मिस्साणमंतरसंभवपदुप्पायणट्ठमेदं सुत्तं ।

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ८३ ॥

उभयदो जहण्णुक्कस्सेण णाणेगजीवेहि वा णत्थि अंतरमिदि वुत्तं होदि । कुदो ? मग्गणमछंडिय गुणंतरग्गहणाभावा ।

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ८४ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ ८५ ॥

उक्त लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ ८१ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियोंमें गये हुए लब्ध्यपर्याप्त मनुष्यका आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन परिभ्रमण कर पुनः लौटकर आये हुए जीवके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

यह अन्तर गतिकी अपेक्षा कहा है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र मिश्रोंके अन्तरकी संभावना बतलानेके लिए कहा गया है ।

गुणस्थानकी अपेक्षा तो दोनों प्रकारसे भी अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८३ ॥

उभयतः अर्थात् जघन्य और उत्कर्षसे, अथवा नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, यह अर्थ कहा गया समझना चाहिए । क्योंकि मार्गणाको छोड़े विना लब्ध्यपर्याप्तकोंके अन्य गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता ।

देवगतिमें, देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८५ ॥

---

1. देवगतौ देवानां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.
2. एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

कुदो ? मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाणं देवाणं गुणंतरं गंतूण अइदहरकालेण पडिणियत्तिय आगदाणं अंतोमुहुत्तअंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ८६ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स ताव उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिमगेवज्जेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो। एक्कत्तीसं सागरोवमाणि सम्मत्तेणंतरिय अवसाणे मिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (४)। चुदो मणुसो जादो। चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी अट्ठावीससंतकम्मिओ उवरिमगेवज्जेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिय एक्कत्तीसं सागरोवमाणि अच्छिदूण आउअं बंधिय सम्मत्तं पडिवण्णो। लद्धमंतरं (५)। पचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि।

क्योंकि, जिन्होंने पहले अन्य गुणस्थानोंमें जाने आनेसे अन्य गुणस्थानोंका मार्ग देखा है ऐसे मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर अति स्वल्पकालसे प्रतिनिवृत्त होकर आये हुए जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपमकालप्रमाण है ॥ ८६ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाइस प्रकृतियोंके सत्त्ववाला एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इकतीस सागरोपमकाल सम्यक्त्वके साथ बिताकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकारसे अन्तर लब्ध हुआ (४)। पश्चात् वहांसे च्युत हो मनुष्य हुआ। इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाइस प्रकृतियोंके सत्त्ववाला कोई एक द्रव्यलिंगी साधु उपरिम ग्रैवेयकोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो इकतीस सागरोपम रहकर और आयुको बांधकर, पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५)। इस पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम इकतीस सागरोपमकाल असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

---

१ उत्कर्षेण एकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ८७ ॥

कुदो ? दोण्हं पि सांतररासीणं णिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं एगसमयंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ८८ ॥

कुदो ? एदासिं दोण्हं रासीणं सांतराणं णिरवसेसेण अण्णगुणं गदाणं उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तं अंतरं पडि विरोहाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ८९ ॥

सासणसम्मादिट्ठिस्स पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतरं, सम्मामिच्छादिट्ठिस्स अंतोमुहुत्तं । सेसं सुगमं, बहुसो परूविदत्तादो ।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ८७ ॥

क्योंकि, इन दोनों ही सान्तर राशियोंका निरवशेषरूपसे अन्य गुणस्थानको गये हुए जीवोंके एक समयप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ८८ ॥

क्योंकि इन दोनों सान्तर राशियोंके सामस्त्यरूपसे अन्य गुणस्थानको चले जानेपर उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र कालमें अन्तरके प्रति कोई विरोध नहीं है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ८९ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टि देवका जघन्य अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है और सम्यग्मिथ्यादृष्टिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । शेष सूत्रार्थ सुगम है, क्योंकि, पहले बहुतवार प्ररूपण किया जा चुका है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

कुदो ? तेरमभुवणट्ठिदमिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठीण दिट्ठमग्गाणमण्णगुण
मागदाणमतामुहुत्ततरुवलभा।

उक्कस्सेण वीस वावीस तेवीस चउवीस पणवीस छव्वी
वीस अट्ठावीस ऊणत्तीस तीस एक्कत्तीस सागरोवमाणि दे
॥ ९७ ॥

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी मणुसो अप्पिददेवसु उववण्णो
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्त पडिवज्जिय अत
अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदीओ अणुपालिय अवसाणे मिच्छत्त गदो (४)। चदुहि
मुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्साट्ठिदीओ मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्सतर होदि।

असजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी चदुक्कस्साउओ अप्पिदद
उववण्णा। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्सतो (२) विसुद्धो (३) वद
सम्मत्त पडिवण्णो (४) मिच्छत्त गतूणतरिदो। अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदियम
पालिय सम्मत्त गतूण (५) मदो मणुसो जादो। पचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणउक्कस्स
ट्ठिदिमत्त लद्धमतर।

क्योंकि, आनत प्राणत आदि तेरह भुवनोंमें रहनेवाले दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि
और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर पुन लौटकर आनेवाले उन
जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त तेरह भुवनोंमें रहनेवाले देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमश देशोन बीस, बाईस
तेईस, चौबीस, पचीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस
सागरोपम कालप्रमाण होता है ॥ ९७ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक द्रव्यलिंगी मनुष्य
विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध
हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अपनी अपनी उत्कृष्ट
आयुस्थितिका अनुपालन कर जीवनके अन्तमें मिथ्यात्वको गया (४)। इन चार
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उक्त मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट
अन्तर होता है।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– बाँधी है देवोंमें उत्कृष्ट
आयुका जिसने ऐसा एक द्रव्यलिंगी साधु विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्ति
से पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)।
पुन मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ। अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिका
अनुपालन कर सम्यक्त्वको जाकर ( ) मरा और मनुष्य हुआ। इस प्रकार इन पांच
अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ।

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेहि समएहि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ उक्कस्सट्ठिदीओ अंतरमिच्चेएहि भेदाभावा। णवरि सग-सगुक्कस्सट्ठिदीओ देसूणाओ उक्कस्संतरमिदि एत्थ वत्तव्वं, सत्थाणोघप्पणहाणुववत्तीदो।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ९५ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ९६ ॥

इसी प्रकारसे असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भी अन्तर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि उनके पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर होता है।

उक्त स्वर्गोंके सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त अन्तर है, उत्कर्षसे दो समय और छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर है; इत्यादि रूपसे ओघके अन्तरसे इनके अन्तरमें भेदका अभाव है। विशेष बात यह है कि अपनी अपनी कुछ कम उत्कृष्ट स्थितियां ही यहां पर उत्कृष्ट अन्तर है ऐसा कहना चाहिए; क्योंकि, अन्यथा सूत्रमें कहा गया स्वस्थान ओघ अन्तर बन नहीं सकता।

आनतकल्पसे लेकर नवग्रैवेयकविमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ९६ ॥

कुदो ? तेरसभुवणट्ठिदमिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठीणं दिट्ठमग्गाणमण्णगुणं गंतूण
मागदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

**उक्कस्सेण वीस बावीस तेवीस चउवीस पणवीस छब्वीस सत्त
वीस अट्ठावीस ऊणत्तीस तीस एक्कत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि
॥ १७ ॥**

मिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी मणुसो अप्पिददेवेसु उववण्णो । छहि
पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो।
अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदीओ अणुपालिय अवसाणे मिच्छत्तं गदो (४) । चदुहि अंतो-
मुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ मिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं होदि ।

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को दव्वलिंगी बद्धुक्कस्साउओ अप्पिददेवेसु
उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदग
सम्मत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो । अप्पप्पणो उक्कस्साउट्ठिदियमणु
पालिय सम्मत्तं गंतूण (५) मदो मणुसो जादो । पचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणउक्कस्स
ट्ठिदिमेत्तं लद्धमंतरं ।

क्योंकि, आनत प्राणत आदि तेरह भुवनोंमें रहनेवाले दृष्टमार्गी मिथ्यादृष्टि
और असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः शीघ्रतासे आनेवाले उन
जीवोंके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त तेरह भुवनोंमें रहनेवाले देवोंका उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः देशोन बीस, बाईस
ईस, चौबीस, पच्चीस, छब्बीस, सत्ताईस, अट्ठाईस, उनतीस, तीस और इकतीस
गरोपम कालप्रमाण होता है ॥ १७ ॥

इनमेंसे पहले मिथ्यादृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक द्रव्यलिंगी मनुष्य
वक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध
(३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अपनी अपनी उत्कृष्ट
युस्थितिका अनुपालन कर जीवनके अन्तमें मिथ्यात्वको गया (४) । इन चार
र्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण उक्त मिथ्यादृष्टि देवोंका उत्कृष्ट
र होता है ।

अब असंयतसम्यग्दृष्टि देवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– बांधी है देवोंमें उत्कृष्ट
का जिसने ऐसा एक द्रव्यलिंगी साधु विवक्षित देवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्ति
पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)।
मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ । अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुस्थितिका
लन कर सम्यक्त्वको जाकर ( ) मरा और मनुष्य हुआ । इस प्रकार इन पांच
हूर्तोंसे कम अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणं सत्थाणमोघं ॥ ९८ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण (पलिदोवमस्स) असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बेहि समएहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाओ अप्पप्पणो उक्कस्सट्ठिदीओ अंतरं होदि, एदेहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च (णत्थि) अंतरं, णिरंतरं ॥ ९९ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०० ॥

एगगुणत्तादो अण्णगुणगमणाभावा ।

एवं गदिमग्गणा समत्ता ।

उक्त आनतादि तरह सुरवासी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि देवोंका अन्तर स्वस्थान ओघके समान है ॥ ९८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण अन्तर है; एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है, उत्कर्षसे दो समय और अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण अन्तर होता है; इस प्रकार ओघके साथ इनका कोई भेद नहीं है।

अनुदिशसे आदि लेकर सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ९९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त देवोंमें एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०० ॥

इन अनुदिश आदि देवोंमें एक ही असंयतगुणस्थान होनेसे अन्य गुणस्थानमें जानेका अभाव है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

इंदियाणुवादेण एइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणा-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १०१ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं[2] ॥ १०२ ॥

कुदो ? एइंदियस्स तसकाइयापज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वलहुएण कालेण पुणो एइंदियमागदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहि-याणि[3] ॥ १०३ ॥

तं जहा– एइंदिओ तसकाइएसु उववज्जिय अंतरिदो पुव्वकोडीपुधत्तेणब्भहियबेसागरोवमसहस्समेत्तं तसट्ठिदिं परिभमिय एइंदियं गदो । लद्धमेइंदियाणमुक्कस्संतरं तसट्ठिदिमेत्तं । देवमिच्छादिट्ठिमेइंदिएसु पवेसिय असंखेज्जपोग्गलपरियट्टे तत्थ भमाडिय पच्छा देवेसुप्पाइय देवाणमंतरं किण्ण परूविदं ? ण, णिरुद्धदेवगदिमग्गणाए अभावप्पसंगा ।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

एक जीवकी अपेक्षा एकेन्द्रियोंका जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०२ ॥

क्योंकि, एकेन्द्रियके त्रसकायिक अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वलघु कालसे पुनः एकेन्द्रियपर्यायको प्राप्त हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

एकेन्द्रियोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपम है ॥ १०३ ॥

जैसे– कोई एक एकेन्द्रिय जीव त्रसकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो हजार सागरोपमप्रमित त्रसकायकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार एकेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर त्रसस्थितिप्रमाण लब्ध हुआ ।

शंका – देव मिथ्यादृष्टियोंको एकेन्द्रियोंमें प्रवेश कराकर असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन उनमें परिभ्रमण कराके पीछे देवोंमें उत्पन्न कराकर देवोंका अन्तर क्यों नहीं कहा ?

समाधान – नहीं, क्योंकि, ऐसा करनेपर प्ररूपणा की जानेवाली देवगति

१ इंद्रियानुवादेन एकेन्द्रियाणां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवापेक्षया जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके । स. सि. १, ८.

मग्गणमछड्डतेण अंतरपरूवणा कादव्वा, अण्णहा अव्ववत्थावत्तीदो। एइंदिय तसकाइएसु उप्पादिय अंतरे भण्णमाणे मग्गणाए विणासो किण्ण होदीदि चे होदि, किंतु जीए मग्गणाए बहुगुणट्ठाणाणि अत्थि तीए तं मग्गणमछड्डिय अण्णगुणेहि अंतराविय अंतरपरूवणा कादव्वा। जीए पुण मग्गणाए एक्कं चेव गुणट्ठाणं तत्थ अण्णमग्गणाए अंतराविय अंतरपरूवणा कादव्वा इदि एसो सुत्ताभिप्पाओ। ण च एइंदिएसु गुणट्ठाणबहुत्तमत्थि, तेण तसकाइएसु उप्पादिय अंतरपरूवणा कदा।

बादरेइंदियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १०४ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १०५ ॥

कुदो ? बादरेइंदियस्स अण्णअपज्जत्तेसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण पुणो बादरेइंदियं गदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्ततरुवलंभा।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १०६ ॥

मार्गणाके अभावका प्रसंग प्राप्त होगा। विवक्षित मार्गणाको नहीं छोड़ते हुए अन्तर प्ररूपणा करना चाहिए, अन्यथा अव्यवस्थापत्ती प्राप्ति होगी।

शंका—एकेन्द्रिय जीवको त्रसकायिक जीवोंमें उत्पन्न कराकर अन्तर कहने पर फिर वहां मार्गणाका विनाश क्यों नहीं होता है ?

समाधान—मार्गणाका विनाश होता है, किन्तु जिस मार्गणामें बहुत गुणस्थान होते हैं उसमें उस मार्गणाको नहीं छोड़कर अन्य गुणस्थानोंसे अन्तर कराकर अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए। परन्तु जिस मार्गणामें एक ही गुणस्थान होता है, वहांपर अन्य मार्गणामें अन्तर करा करके अन्तरप्ररूपणा करना चाहिए। इस प्रकारका यहांपर सूत्रका अभिप्राय है। और एकेन्द्रियोंमें अनेक गुणस्थान होते नहीं हैं, इसलिए त्रसकायिकोंमें उत्पन्न कराकर अन्तरप्ररूपणा की गई है।

बादर एकेन्द्रियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १०५ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रिय जीवका अन्य अपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर सर्वस्तोककालसे पुनः बादर एकेन्द्रियपर्यायको गए हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है ॥ १०६ ॥

त जधा- एक्को बादरेइंदिओ सुहुमेइंदियादिसु उप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्त-कालमतरिय पुणो बादरेइदिएसु उववण्णो। लद्धमसंखेज्जलोगमेत्त बादरेइंदियाणमतर।

एव बादरेइदियपज्जत्त अपज्जत्ताण ॥ १०७ ॥

कुदो? बादरेइदिएहिंतो सव्वपयारेण एदेसिमतरस्स भेदाभावा।

सुहुमेइदिय-सुहुमेइदियपज्जत्त अपज्जत्ताणमतर केवचिर कालादो होदि, णाणाजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर ॥ १०८ ॥

सुगममेद सुत्त।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहण ॥ १०९ ॥

कुदो? सुहुमेइदियस्स अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वत्थोवेण कालेण तीसु वि सुहुमेइदिएसु आगतूणुप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्ततरुवलभा।

उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि उस्सप्पिणीओ ॥ ११० ॥

जैसे- एक बादर एकेन्द्रिय जीव, सूक्ष्म एकेन्द्रियादिकोंमें उत्पन्न हो वहां पर असख्यात लोकप्रमाण काल तक अन्तरको प्राप्त होकर पुन बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार असख्यात लोकप्रमाण बादरएकेन्द्रियोंका अन्तर लब्ध हुआ।

इसी प्रकारसे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तक और बादर एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर जानना चाहिए ॥ १०७ ॥

क्योंकि, बादर एकेन्द्रियोंकी अपेक्षा सब प्रकारसे इन पर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्तक बादर एकेन्द्रियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

सूक्ष्म एकेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्त और सूक्ष्म एकेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥१०९॥

क्योंकि किसी सूक्ष्म एकेन्द्रियका अविवक्षित लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न होकर सब स्तोककालसे तीनों ही प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त सूक्ष्मजीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण है ॥ ११० ॥

तं जहा– एक्को सुहुमेइंदिओ पज्जत्तो अपज्जत्तो च बादरेइंदिएसु उववण्णो। तसकाइएसु बादरेइंदिएसु च असंखेज्जासंखेज्जा ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीपमाणमंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय पुणो तिसु सुहुमेइंदिएसु आगंतूण उववण्णो। लद्धमंतरं बादरेइंदियतसकाइयाणमुक्कस्सट्ठिदी।

बीइंदिय-तीइंदिय-चदुरिंदिय तस्सेव पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १११ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ ११२ ॥

कुदो? अणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वलहुएण कालेण पुणो तासु विगलिंदिएसु आगंतूण उप्पण्णस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ ११३ ॥

जैसे– एक सूक्ष्म एकेन्द्रियपर्याप्तक, अथवा लब्ध्यपर्याप्तक जीव बादर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। पुनः त्रसकायिकोंमें, और बादर एकेन्द्रियोंमें अंगुलके असंख्यातवें भाग असंख्यातासंख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालप्रमाण परिभ्रमण कर पुनः उक्त तीनों प्रकारके सूक्ष्म एकेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुआ। इस प्रकार बादर एकेन्द्रियों और त्रसकायिकोंकी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण सूक्ष्मजीवोंका उत्कृष्ट अन्तर उपलब्ध हुआ।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और उन्हींके पर्याप्तक तथा लब्ध्यपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १११ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त द्वीन्द्रियादि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ ११२ ॥

क्योंकि, अविवक्षित लब्ध्यपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सर्वलघु कालसे पुनः उसी प्रकारके विकलेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न होनेवाले जीवके क्षुद्रभवग्रहणमात्र अन्तरकाल पाया जाता है।

उन्हीं विकलेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ ११३ ॥

---

१ [illegible]

२ [illegible]

तं जहा- णव हि विगलिंदिया एइंदियाणइंदिएसु उप्पज्जिय आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तपोग्गलपरियट्टे परियट्टिय पुणो णवसु विगलिंदिएसु उप्पण्णा। लद्धमंतरमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तं।

पंचिंदिय-पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं[1] ॥ ११४ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि अंतोमुहुत्तेण ऊणाणि इच्चेएण भेदाभावा।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ ११५ ॥

दोगुणट्ठाणजीवेसु सव्वेसु अण्णगुणं गदेसु दोण्हं गुणट्ठाणाणं एगसमयविरहुवलंभा।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ११६ ॥

कुदो? सांतररासित्तादो। बहुगमंतरं किण्ण होदि? सभावादो।

जैसे- नवों प्रकारके विकलेन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिय या अनेकेन्द्रियोंमें उत्पन्न होकर आवलीके असंख्यातवें भागमात्र पुद्गलपरिवर्तन कालतक परिभ्रमण कर पुनः नवों प्रकारके विकलेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुए। इस प्रकारसे असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हुआ।

पंचेन्द्रिय और पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ११४ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त और उत्कर्षसे अन्तर्मुहूर्त कम दो छयासठ सागरोपमकाल अन्तर है; इस प्रकार ओघकी अपेक्षा इनमें कोई भेद नहीं है।

उक्त दोनों प्रकारके पंचेन्द्रिय सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ११५ ॥

उक्त दोनों गुणस्थानोंके सभी जीवोंके अन्य गुणस्थानको चले जाने पर दोनों गुणस्थानोंका एक समय विरह पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण है ॥ ११६ ॥

क्योंकि, ये दोनों सान्तर राशियां हैं।

शंका—इनका पल्योपमके असंख्यातवें भागसे अधिक अंतर क्यों नहीं होता?

समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है।

१ पंचेन्द्रियेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ११७ ॥

सुगममेदं सुत्तं, बहुसो उत्तत्तादो ।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि सागरोवमसदपुधत्तं ॥ ११८ ॥

सासणस्स ताव उच्चदे– एक्को अणंतकालमसंखेज्जलोगमेत्तं वा एइंदिएसु ट्ठिदो असण्णिपंचिंदिएसु आगंतूण उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरेसु आउअं बंधिय (४) विस्समिदो (५) कमेण कालं करिय भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसुप्पण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सासणं गदो । आदी दिट्ठा । मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगट्ठिदिं परियट्टियावसाणे सासणं गदो । लद्धमंतरं । तदो थावरपाओग्गमावलियाए असंखेज्जदिभागमच्छिय कालं करिय थावरकाएसु उववण्णो आवलियाए असंखेज्जदिभागेण णवहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी अंतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ११७ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, बहुत बार कहा गया है ।

उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती पंचेन्द्रियोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपम काल है, तथा पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ ११८ ॥

इनमेंसे पहले सासादनसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं– अनन्तकाल या असंख्यात लोकमात्र काल तक एकेन्द्रियोंमें रहा हुआ कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें आकर उत्पन्न हुआ । पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) क्रमसे मरण कर भवनवासी, या वानव्यन्तरदेवोंमें उत्पन्न हुआ । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९) । पुनः सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार इस गुणस्थानका प्रारम्भ दृष्ट हुआ । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिवर्तन होकर आयुके अन्तमें सासादन गुणस्थानको गया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पश्चात् स्थावरकायके योग्य आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक उनमें रह कर, मरण करके स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ । इस प्रकार आवलीके असंख्यातवें भाग और नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति ही इसका उत्कृष्ट अन्तर है ।

---

१ [illegible] । स सि १, ८

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को जीवो एइंदियट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदिएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरेसु आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९) सम्मामिच्छत्तं गदो (१०)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगट्ठिदिं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तं गदो (११)। लद्धमंतरं। मिच्छत्तं गंतूण (१२) एइंदिएसु उववण्णो। बारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणसगट्ठिदी सम्मामिच्छत्तुक्कस्संतरं।

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो पंचिंदियट्ठिदी पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियसागरोवमसहस्समेत्ता, पज्जत्ताणं सागरोवमसदपुधत्तमेत्ता त्ति वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ११९ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

अब सम्यग्मिथ्यादृष्टि पंचेन्द्रिय जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। मनके विना शेष पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हो (९) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुनः मिथ्यात्वको जाकर और अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर आयुके अन्तर्मुहूर्तकाल अवशेष रह जाने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (११)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर (१२) एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। ऐसे इन बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम स्वस्थिति सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट अन्तर है।

'जैसा उद्देश होता है, उसीके अनुसार निर्देश होता है,' इस न्यायसे पंचेन्द्रिय सामान्यकी स्थिति पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक एक हजार सागरोपमप्रमाण होती है, और पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंकी स्थिति शतपृथक्त्वसागरोपमप्रमाण होती है, ऐसा कहना चाहिए।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२० ॥

कुदो ? एदेसिमण्णगुणं गंतूण सव्वलहुएण कालेण पडिणियत्तिय अप्पप्पणो गुणमागदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १२१ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे— एक्को एइंदियट्ठिदिसंतकम्मिओ असण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्समिय (५) मदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो अंतरिय मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। पुणो सासणं गंतूण आवलियाए असंखेज्जदिभागं कालमच्छिदूण थावरकाएसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२० ॥

क्योंकि, इन असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वलघु कालसे लौटकर अपने अपने गुणस्थानको आये हुओंके अन्तर्मुहूर्तमात्र अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटीपृथक्त्वसे अधिक सहस्र सागरोपम तथा शतपृथक्त्व सागरोपम है ॥ १२१ ॥

इनमेंसे पहले असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं— एकेन्द्रिय भवस्थितिको प्राप्त कोई एक जीव, असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हुआ। पीछे मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०)। पुनः सासादन गुणस्थानको गया और वहांपर आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक रहकर स्थावरकायिकोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इन दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाणकाल उक्त असंयतसम्यग्दृष्टिका

---

१ पर्याप्तेषु सप्त अन्तर्मुहूर्ताः । स. सि. १, ८.

लद्धमुक्कस्संतरं । सागरोवमसदपुधत्तं देसूणमिदि वत्तव्वं ? ण, पंचिं
दयाणं पि सागरोवमसदपुधत्तत्तादो । तं पि कधं णव्वदे ? सुत्ते
दा । सण्णिसम्मुच्छिमपंचिंदिएसुप्पाइय सम्मत्तं गेण्हाविय मिच्छत्तेण
ण, तत्थ पढमसम्मत्तग्गहणाभावा । वेदगसम्मत्तं किण्ण पडिवज्जाविदो ?
हदमरट्ठिदिस्स उव्वेल्लिदसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तस्स तदुप्पायणे संभवाभावा ।

मनदस्स वुच्चदे- एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु
ण्णिपस्स तिण्णिदिवसे अंतोमुहुत्तेहि (१) पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च
ज्जो (२) छावलियाओ पढमसम्मत्तद्धाए अत्थि त्ति आसाणं गतूणंतरिदो ।
तूण सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे पंचिंदियभवे सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीय

तर होता है ।
शंका—पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंका जो सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर
ह, उसमें 'देशोन' ऐसा पद और कहना चाहिए ?
समाधान—नहीं, क्योंकि, पंचेन्द्रिय पर्याप्तककी देशोन स्थिति भी सागरोपम
क्त्वप्रमाण ही होती है ।
शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?
समाधान—क्योंकि, सूत्रमें 'देशोन' इस वचनका अभाव है ।
शंका—संज्ञी सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियोंमें उत्पन्न कराकर और सम्यक्त्वको ग्रहण
कर मिथ्यात्वके द्वारा अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?
समाधान—नहीं, क्योंकि संज्ञी सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रियोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वके
हण करनेका अभाव है ।
शंका—वेदकसम्यक्त्वको क्यों नहीं प्राप्त कराया ?
समाधान—नहीं, क्योंकि एकेन्द्रियोंमें दीर्घ काल तक रहनेवाले और उद्वेलना
की है सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतियोंकी जिसने, ऐसे जीवके वेदकसम्यक्त्वका
उत्पन्न कराना संभव नहीं है ।
संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियकी स्थितिको प्राप्त एक
जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ । तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्त
मुहूर्तसे (१) प्रथमोपशमसम्यक्त्वको तथा संयमासंयमको युगपत् प्राप्त हुआ ( )। प्रथ
मोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त
कर अन्तरको प्राप्त हुआ । मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके
अन्तिम पंचेन्द्रिय भवमें सम्यक्त्वको ग्रहण कर दर्शनमोहनीयका क्षय कर और संसारके

खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं च पडिवण्णो (३) अप्पमत्तो (४)। पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६)। उवरि छ मुहुत्ता। तिण्णिपक्खेहि तिण्णिदिवसेहि बारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगट्ठिदी लद्ध संजदासंजदाणमुक्कस्संतरं। एइंदिएसु किण्ण उप्पाइदो? लद्धंतरं करिय उवरि सिज्झणकालादो मिच्छत्तं गंतूण एइंदिएसु आउअं बंधिय तत्थुप्पज्जणकालो संखेज्जगुणो त्ति एइंदिएसु ण उप्पादिदो। उवरिमाणं पि एदमेव कारणं वत्तव्वं।

पमत्तस्स वुच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेहि उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) पमत्तो जादो (२)। हेट्ठा पडिदूणंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे मणुसो जादो। दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३)। लद्धमंतरं। भूओ अप्पमत्तो (४) उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अट्ठहि वस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगट्ठिदी पमत्तस्सुक्कस्संतरं लद्धं।

अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशेष रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३)। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) हुआ। इनमें अपूर्वकरणादिसम्बन्धी ऊपरके छह मुहूर्तोंको मिलाकर तीन पक्ष, तीन दिवस और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाण संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

शंका—उक्त जीवको एकेन्द्रियोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया?

समाधान—संयतासंयतका अन्तर लब्ध होनेके पश्चात् ऊपर सिद्ध होने तकके कालसे मिथ्यात्वको जाकर एकेन्द्रियोंमें आयुको बांधकर उनमें उत्पन्न होनेका काल संख्यातगुणा है, इसलिए एकेन्द्रियोंमें नहीं उत्पन्न कराया। इसी प्रकार प्रमत्तादि उपरितन गुणस्थानवर्ती जीवोंके भी यही कारण कहना चाहिए।

प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं–एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्षोंसे उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तगुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत हुआ (२)। पीछे नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ। दर्शनमोहनीयको क्षयकर अन्तर्मुहूर्तकाल संसारके अवशिष्ट रहने पर अप्रमत्तसंयत होकर पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः अप्रमत्तसंयत (४) हुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाकर आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होता है।

अप्पमत्तस्स उच्चदे— एक्को पंचिंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुस्सेसु उववण्णो गब्भादिअट्ठ-वस्साणमुवरि उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो। आदी दिट्ठा (१)। अंतरिदो अपच्छिमे पंचिंदियभवे मणुस्सेसु उववण्णो। दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (२)। तदो पमत्तो (३) अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पंचिंदियट्ठिदी उक्कस्संतरं।

चदुण्हमुवसामगाणं णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १२२ ॥

कुदो? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तमिच्चेदेहि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १२३ ॥

तिण्हमुवसामगाणमुवरि चडिय हेट्ठा ओदिण्णे जहण्णंतरं होदि। उवसंतकसायस्स हेट्ठा ओदरिय पुणो सव्वजहण्णेण कालेण उवसंतकसायत्तं पडिवण्णे जहण्णमंतरं होदि।

उक्कस्सेण सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १२४ ॥

अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— पंचेन्द्रियकी स्थितिमें स्थित एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भादि आठ वर्षोंसे ऊपर उपशमसम्यक्त्व तथा अप्रमत्तगुणस्थानको युगपत् प्राप्त हुआ। इस प्रकार इस गुणस्थानका आरम्भ दिखाई दिया। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अन्तिम पंचेन्द्रिय भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। दर्शनमोहनीयका क्षय कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। पश्चात् प्रमत्तसंयत (३) अप्रमत्तसंयत (४) हुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त मिलाने पर आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पंचेन्द्रियकी स्थिति अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

चारों उपशामकोंका अन्तर नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान है ॥ १२२ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व, इस प्रकार ओघसे इनमें कोई भेद नहीं है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १२३ ॥

अपूर्वकरणसंयत आदि तीनों उपशामकोंका ऊपर चढ़कर नीचे उतरनेपर जघन्य अन्तर होता है। किन्तु उपशान्तकषायका नीचे उतरकर पुनः सर्वजघन्य कालसे उपशान्तकषायको प्राप्त होनेपर जघन्य अन्तर होता है।

चारों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक सागरोपमसहस्र और सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ १२४ ॥

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.
२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.
३ उत्कर्षेण सागरोपमसहस्रं पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिकम्। स. सि. १, ८.

चदुण्ह खवा अजोगिकेवली ओघं ॥ १२५ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा, एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतर, णिरंतरमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा ।

सजोगिकेवली ओघं ॥ १२६ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरमिच्चेदेण ओघादो भेदाभावा ।

पंचिंदियअपज्जत्ताणं बेइंदियअपज्जत्ताणं भंगो ॥ १२७ ॥

णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं, उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टमिच्चेएहि बेइंदियअपज्जत्तेहिंतो पंचिंदियअपज्जत्ताणं भेदाभावा ।

एदमिंदियं पडुच्च अंतरं ॥ १२८ ॥

गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १२९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता ।

चारों क्षपक और अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२५ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे छह मास अन्तर है, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है। इस प्रकार ओघप्ररूपणासे कोई भेद नहीं है।

सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ १२६ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है। इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है।

पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंका अन्तर द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके समान है ॥१२७॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और उत्कर्षसे अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण अन्तर होता है। इस प्रकार द्वीन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तकोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

यह गतिकी अपेक्षा अन्तर कहा है ॥ १२८ ॥

गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १२९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ क्षपकाणां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८ २ एवमिन्द्रियं प्रत्यन्तरमुक्तम् । स. सि. १, ८

३ गुणं प्रत्युभयतोऽपि नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३१ ॥

कुदो ? एदेसिमणप्पिदअपज्जत्तएसु उप्पज्जिय सव्वलहुएण कालेण पुणो अप्पिदकायमागदाणं खुद्दाभवग्गहणमेत्तजहण्णंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं[3] ॥ १३२ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो वणप्फदिकाइएसुप्पज्जिय अंतरिदजीवो वणप्फदिकायट्ठिदिं आवलियाए असंखेज्जदिभागपोग्गलपरियट्टमेत्तं परिभमिय अणप्पिदसेसकायट्ठिदिं च, तदो अप्पिदकायमागदो जो होदि, तस्स सुत्तुत्तुक्कस्संतरुवलंभा ।

कायमार्गणाके अनुवादसे पृथिवीकायिक, जलकायिक, तेजस्कायिक, वायुकायिक, इनके बादर और सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३१ ॥

क्योंकि, इन पृथिवीकायिकादि जीवोंका अविवक्षित अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होकर सबसे लघु कालसे पुनः विवक्षित कायमें आये हुए जीवोंके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण जघन्य अन्तर पाया जाता है ।

उक्त पृथिवीकायिक आदि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकालात्मक असंख्यात पुद्गलपरिवर्तन है ॥ १३२ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे वनस्पतिकायिकोंमें उत्पन्न होकर अन्तरको प्राप्त हुआ जीव आवलीके असंख्यातवें भाग पुद्गलपरिवर्तन वनस्पतिकायकी स्थिति तक परिभ्रमण कर और अविवक्षित शेष कायिक जीवोंकी भी स्थिति तक परिभ्रमण करके तत्पश्चात् विवक्षित कायमें जो जीव आता है उसके सूत्रोक्त उत्कृष्ट अन्तर पाया जाता है ।

१ कायानुवादेन पृथिव्यप्तेजोवायुकायिकानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येन क्षुद्रभवग्रहणम् । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणानन्तः कालोऽसंख्येयाः पुद्गलपरिवर्ताः । स. सि. १, ८.

वणप्फदिकाइय णिगोदजीव बादर-सुहुम-पज्जत्त-अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३३ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३४ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो अणप्पिदकायं गंतूण अइलहुएण कालेण पुणो अप्पिदकायमागदस्स खुद्दाभवग्गहणमेत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण असंखेज्जा लोगा ॥ १३५ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो पुढवि-आउ-तेउ-वाउकाइएसु उप्पज्जिय असंखेज्जलोगमेत्तकालं तत्थेव परिभमिय पुणो अप्पिदकायमागदस्स असंखेज्जलोगमेत्तंतरुवलंभा ।

बादरवणप्फदिकाइयपत्तेयसरीरपज्जत्त अपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १३६ ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

वनस्पतिकायिक, निगोद जीव, उनके बादर व सूक्ष्म तथा उन सबके पर्याप्तक और अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३४ ॥

क्योंकि विवक्षित कायसे अविवक्षित कायको जाकर अतिलघु कालसे पुनः विवक्षित कायमें आये हुए जीवके क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोक है ॥ १३५ ॥

क्योंकि विवक्षित वनस्पतिकायसे पृथिवी, जल, अग्नि और वायुकायिक जीवोंमें उत्पन्न होकर असंख्यात लोकप्रमाण काल तक उन्हींमें परिभ्रमण कर पुनः विवक्षित वनस्पतिकायको आये हुए जीवके असंख्यात लोकप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

बादर वनस्पतिकायिक प्रत्येकशरीर और उनके पर्याप्तक व अपर्याप्तक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १३६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

[illegible]

[illegible]

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ॥ १३७ ॥

एदं पि सुत्तं सुगमं चेय ।

उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ॥ १३८ ॥

कुदो ? अप्पिदकायादो णिगोदजीवेसुप्पण्णस्स अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टाणि तत्थ कायपरिब्भमणेण सादिरेयाणि परिभमिय अप्पिदकायमागदस्स अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टमेत्तन्तरुवलंभा ।

तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १३९ ॥

कुदो ? णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण णत्थि अंतरं, णिरंतरं, एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण बे छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि, इच्चेदेहि मिच्छादिट्ठि ओघादो भेदाभावा ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १४० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है ॥ १३७ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अढाई पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ॥ १३८ ॥

क्योंकि, विवक्षित कायसे निगोद जीवोंमें उत्पन्न हुए, तथा उसमें अढाई पुद्गलपरिवर्तन और अन्य कायिक जीवोंमें परिभ्रमण करनेसे उनकी स्थितिप्रमाण साधिक काल परिभ्रमण कर विवक्षित कायमें आये हुए जीवके अढाई पुद्गलपरिवर्तन कालप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १३९ ॥

क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा कोई अन्तर नहीं है, निरन्तर है। एक जीवकी अपेक्षा जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त अन्तर है और उत्कर्षसे कुछ कम दो छयासठ सागरोपम अन्तर है। इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवोंके ओघ अन्तरसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १४० ॥

१ [illegible]

२ [illegible]

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ १४५ ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं करिय भवणवासिएसु वाणवेंतरेसु वा देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए आसाणं गदो। अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। लद्धमंतरं। पुणो सासणं गदो आवलियाए असंखेज्जदिभागं कालमच्छिदूण एइंदिएसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्कस्संतरं।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त असंयतादि चारों गुणस्थानवर्ती त्रस और त्रसपर्याप्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वसे अधिक दो सहस्र सागरोपम और कुछ कम दो सहस्र सागरोपम है ॥ १४५ ॥

इनमेंसे पहले त्रस और त्रसपर्याप्तक असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एकेन्द्रियस्थितिको प्राप्त कोई एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें आयुको बांधकर (४) विश्राम ले (५) काल कर भवनवासी या वानव्यन्तर देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१०)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः सासादनगुणस्थानको जाकर वहां आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक रहकर एकेन्द्रियोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार इन दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति उन्हींके असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

---

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे पूर्वकोटीपृथक्त्वैरभ्यधिके। स. सि. १, ८.

संजदासंजदस्स उक्कस्सं उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो। असण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पादिदो? ण, तत्थ संजमासंजमग्गहणाभावा। तिण्णिपक्ख-तिण्णिदिवसेहि अंतोमुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। पढमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय पच्छिमे तसभवे सम्मत्तं घेत्तूण दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं पडिवण्णो (३)। लद्धमंतरं। अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६)। उवरि खवगसेढिम्हि छ मुहुत्ता। एवं बारसअंतोमुहुत्ताहिय-अट्ठतालीसदिवसेहि ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी संजदासंजदुक्कस्संतरं।

पमत्तस्स उच्चदे– एक्को एइंदियट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो। गब्भादिअट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) पमत्तो (२) हेट्ठा पडिदूण अंतरिदो। सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे सम्मादिट्ठी मणुसो जादो। दंसणमोहणीय

त्रस और त्रसपर्याप्तक संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रिय जीवोंकी स्थितिमें स्थित कोई एक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ।

शंका—उक्त जीवको असंज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें संयमासंयमके ग्रहण करनेका अभाव है।

पुनः उत्पन्न होनेके पश्चात् तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां शेष रहने पर सासादनगुणस्थानको गया और अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वमें जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम त्रसभवमें सम्यक्त्वको ग्रहणकर और दर्शनमोहनीयका क्षय कर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण संसारके अवशिष्ट रहने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) और अप्रमत्तसंयत (६) हुआ। इनमें क्षपकश्रेणीसम्बन्धी ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक अड़तालीस दिनोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन संयतासंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एकेन्द्रिय स्थितिको प्राप्त कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि ले आठ वर्षके पश्चात् उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत हो (२) नीचे गिर कर अन्तरको प्राप्त हुआ। अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तिम भवमें सम्यग्दृष्टि मनुष्य हुआ। पुनः दर्शनमोहनीयको

खविय अप्पमत्तो होदूण पमत्तो जादो (३) लद्धमंतरं। भूओ अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं अट्ठहि वस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणा तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्कस्संतरं।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को थावरट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो गब्भादिअट्ठ-वस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अंतरिय णिग्गट्ठिदिं परिभमिय पच्छिमे भवे मणुसो जादो। सम्मत्तं पडिवण्णो दंसणमोहणीयं खविय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (२)। लद्धमंतरं। तदो पमत्तो (३) अप्पमत्तो (४)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठहि वस्सेहि दसहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया तस-तसपज्जत्तट्ठिदी उक्कस्संतरं।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १४६ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १४७ ॥

क्षय करके अप्रमत्तसंयत हो प्रमत्तसंयत हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। पुनः अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्षोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन प्रमत्तसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्त अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– स्थावरकायकी स्थितिमें विद्यमान कोई एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और गर्भको आदि ले आठ वर्षसे उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्य हुआ। सम्यक्त्वको प्राप्त कर पुनः दर्शनमोहनीयका क्षय कर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। तत्पश्चात् प्रमत्तसंयत (३) और अप्रमत्तसंयत हुआ (४)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम त्रस और त्रसपर्याप्तकोंकी उत्कृष्ट स्थिति ही उन अप्रमत्तसंयत जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर है।

त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १४६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४७ ॥

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

एदं कायं पडुच्च अंतरं। गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५२ ॥

सुगममेदं सुत्तं।

एवं कायमग्गणा समत्ता।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगीसु कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १५३ ॥

कुदो ? अप्पिदजोगसहिदअप्पिदगुणट्ठाणाणं सव्वकालं संभवादो। कधमेगजीवमासेज्ज अंतराभावो ? ण ताव जोगंतरगमणेणंतरं संभवदि, मग्गणाए विणासापत्तीदो। ण च अण्णगुणगमणेण अंतरं संभवदि, गुणंतरं गदस्स जीवस्स जोगंतरगमणेण विणा पुणो आगमणाभावादो। तम्हा एगजीवस्स वि णत्थि चेव अंतरं।

यह अन्तर कायकी अपेक्षा कहा है। गुणस्थानकी अपेक्षा दोनों ही प्रकारसे अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें, मिथ्यादृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और सयोगिकेवलियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५३ ॥

क्योंकि, सूत्रोक्त विवक्षित योगोंसे सहित विवक्षित गुणस्थान सर्वकाल सम्भव हैं।

शंका—एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव कैसे कहा ?

समाधान—सूत्रोक्त गुणस्थानोंमें न तो अन्य योगमें गमनद्वारा अन्तर सम्भव है, क्योंकि, ऐसा मानने पर विवक्षित मार्गणाके विनाशकी आपत्ति आती है। और न अन्य गुणस्थानमें जानेसे भी अन्तर सम्भव है, क्योंकि दूसरे गुणस्थानको गये हुए जीवके अन्य योगको प्राप्त हुए विना पुनः आगमनका अभाव है। इसलिए सूत्रमें बताये गये जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं होता है।

---

[1] योगानुवादेन काययोगिवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्टिसंयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८. [2] प्रतिषु 'अतरं' इति पाठः।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १५४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १५५ ॥

कुदो ? दोण्हं रासीणं सांतरत्तादो । सांतरत्ते वि अहियमंतरं किण्ण होदि ? सहावदो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५६ ॥

कुदो ? गुण-जोगंतरगमणेहि तदभावा ।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १५७ ॥

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण वासपुधत्तमिच्चेएहि ओघादो भेदाभावा ।

उक्त [illegible] सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १५४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भाग है ॥ १५५ ॥

क्योंकि, ये दोनों ही राशियां सान्तर हैं ।

शंका—राशियोंके सान्तर रहने पर भी अधिक अन्तर क्यों नहीं होता है ?

समाधान—स्वभावसे ही अधिक अन्तर नहीं होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५६ ॥

क्योंकि, अन्य गुणस्थानों और अन्य योगोंमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है ।

उक्त [illegible] चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १५७ ॥

क्योंकि, जघन्यसे एक समय और उत्कर्षसे वर्षपृथक्त्व अन्तर है, इस प्रकार ओघसे [illegible] कोई भेद नहीं है ।

[illegible]

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १५८॥

जोग-गुणंतरगमणेण तदसंभवा। एगजोगपरिणमणकालादो गुणकालो संखेज्जगुणो त्ति कधं णव्वदे ? एगजीवस्स अंतराभावपदुप्पायणसुत्तादो।

चदुण्हं खवाणमोघं ॥ १५९ ॥

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमय, उक्कस्सेण छम्मासं, एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरमिच्चेदेहि भेदाभावा।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६० ॥

तम्हि जोग-गुणंतरसंकंतीए अभावादो।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १६१ ॥

एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १५८ ॥

क्योंकि, अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनद्वारा उनका अन्तर असंभव है।

शंका—एक योगके परिणमन कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—एक जीवके अन्तरका अभाव बतानेवाले सूत्रसे जाना जाता है कि एक योगके परिवर्तन-कालसे गुणस्थानका काल संख्यातगुणा है।

उक्त योगवाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १५९ ॥

नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय, उत्कर्षसे छह मास अन्तर है तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, इस प्रकार ओघसे अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६० ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें योग और गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ १६१ ॥

---

१ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तमन्तरम्। स. सि. १, ८.

कुदो ? जहण्णेण एगसमओ, उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, इच्चेदि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६२ ॥

कुदो ? तत्थ जोगंतरगमणाभावा। गुणंतरं गदस्स वि पडिणियत्तिय सासणगुणेण तम्हि चेव जोगे परिणमणाभावा।

असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६३ ॥

कुदो ? देव-णेरइय-मणुसअसंजदसम्मादिट्ठीणं मणुसेसु उप्पत्तीए विणा मणुस-असंजदसम्मादिट्ठीणं तिरिक्खेसु उप्पत्तीए विणा एगसमयं असंजदसम्मादिट्ठिविरहिद ओरालियमिस्सकायजोगस्स संभवादो।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६४ ॥

तिरिक्ख मणुस्सेसु वासपुधत्तमेत्तकालमसंजदसम्मादिट्ठीणमुववादाभावा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६५ ॥

क्योंकि, जघन्यसे एक समय, और उत्कर्षसे पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तर है, इस प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६२ ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगकी अवस्थामें अन्य योगमें गमनका अभाव है। तथा अन्य गुणस्थानको गये हुए भी जीवके लौटकर सासादनगुणस्थानके साथ उसी ही योगमें परिणमनका अभाव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १६३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका मनुष्योंमें उत्पत्तिके विना, तथा मनुष्य असंयतसम्यग्दृष्टियोंका तिर्यंचोंमें उत्पत्तिके विना असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे रहित औदारिकमिश्रकाययोगका एक समयप्रमाण काल सम्भव है।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है ॥ १६४ ॥

क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्योंमें वर्षपृथक्त्वप्रमाण कालतक असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उत्पाद नहीं होता है।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६५ ॥

तम्हि तस्स गुण-जोगंतरसंकंतीए अभावा ।

सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १६६ ॥

कुदो ? कवाडपज्जायविरहिदकेवलीणमेगसमओवलंभा ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १६७ ॥

कवाडपज्जाएण विणा केवलीणं वासपुधत्तच्छणसंभवादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १६८ ॥

कुदो ? जोगंतरमगंतूण ओरालियमिस्सकायजोगे चेव ट्ठिदस्स अंतरासंभवा ।

वेउव्वियकायजोगीसु चदुट्ठाणीणं मणजोगिभंगो ॥ १६९ ॥

कुदो ? णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण साधम्मादो ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७० ॥

क्योंकि, औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवमें उक्त गुणस्थान और औदारिकमिश्रकाययोगके परिवर्तनका अभाव है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली जिनोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १६६ ॥

क्योंकि, कपाटपर्यायसे रहित केवली जिनोंका एक समय अन्तर पाया जाता है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १६७ ॥

क्योंकि, कपाटपर्यायके विना केवली जिनोंका वर्षपृथक्त्व तक रहना सम्भव है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी केवली जिनोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १६८ ॥

क्योंकि, अन्य योगको नहीं प्राप्त होकर औदारिकमिश्रकाययोगमें ही स्थित केवलीके अन्तरका होना असंभव है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें आदिके चार गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर मनोयोगियोंके समान है ॥ १६९ ॥

क्योंकि, नाना जीव और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है, ॥ १७० ॥

त जहा– वेउव्वियमिस्सकायजोगिमिच्छाइट्ठिणो सव्वे वेउव्वियकायजोगं गदा। एगसमय वेउव्वियमिस्सकायजोगो मिच्छाइट्ठीहि विरहिदो दिट्ठो। बिदियसमए सत्तट्ठ जणा वेउव्वियमिस्सकायजोगं दिट्ठा। लद्धमेगसमयमतरं।

उक्कस्सेण बारस मुहुत्त ॥ १७१ ॥

त जधा– वेउव्वियमिस्समिच्छादिट्ठीसु सव्वेसु वेउव्वियकायजोगं गदेसु बारस मुहुत्तमेत्तमंतरिय पुणो सत्तट्ठजणेसु वेउव्वियमिस्सकायजोगं पडिवण्णेसु बारसमुहुत्तंतरं होदि।

एगजीव पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतर ॥ १७२ ॥

तत्थ जोग गुणंतरगमणाभावा।

सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीण ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७३ ॥

कुदो? सासणसम्मादिट्ठीण णाणाजीवे पडुच्च जहण्णुक्कस्सेण एगसमय, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो तेहि, एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतर तेण, असंजदसम्मादिट्ठीण

जैसे– सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीव वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हुए। इस प्रकार एक समय वैक्रियिकमिश्रकाययोग, मिथ्यादृष्टि जीवोंसे रहित दिखाई दिया। द्वितीय समयमें सात आठ जीव वैक्रियिकमिश्रकाययोगमें दृष्टिगोचर हुए। इस प्रकार एक समय अन्तर उपलब्ध हुआ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर बारह मुहूर्त है॥ १७१ ॥

जैसे– सभी वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टि जीवोंके वैक्रियिककाययोगको प्राप्त हो जाने पर बारह मुहूर्तप्रमाण अन्तर होकर पुन सात आठ जीवोंके वैक्रियिकमिश्रकाययोगको प्राप्त होने पर बारह मुहूर्तप्रमाण अन्तर होता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है॥ १७२ ॥

क्योंकि, उन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके अन्य योग और अन्य गुणस्थानमें गमनका अभाव है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है॥ १७३ ॥

क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर क्रमश एक समय और पल्योपमका असंख्यातवां भाग है इनसे, एक

१ अप्रतौ 'सागदि'; आप्रतौ 'सागचदि', कप्रतौ 'सागदि' इति पाठः।

णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्सेगसमय-मासपुधत्तंतरेण[1], एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण च तदो भेदाभावा ।

आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १७४ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १७५ ॥

एदं पि सुगममेव ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १७६ ॥

तम्हि जोग-गुणंतरग्गहणाभावा ।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि-सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ॥ १७७ ॥

जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है इसमें, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मासपृथक्त्व अन्तर होनेसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे इन वैक्रियिकमिश्रकाययोगी सासादन और असंयतसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

आहारकाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १७४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १७५ ॥

यह सूत्र भी सुगम ही है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १७६ ॥

क्योंकि, आहारककाययोग या आहारकमिश्रकाययोगमें अन्य योग या अन्य गुणस्थानके ग्रहण करनेका अभाव है ।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवलियोंका अन्तर औदारिकमिश्रकाययोगियोंके समान है ॥ १७७ ॥

---

१ प्रतिषु 'पुधत्तेण' इति पाठः ।

तं जहा- एक्को पुरिसवेदो णउंसयवेदो वा अट्ठावीससंतकम्मिओ पणवण्ण-पलिदोवमाउट्ठिदिदेवीसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो अंतरिदो अवसाणे आउअं बंधिय मिच्छत्तं गदो। लद्धमंतरं (४)। सम्मत्तेण बद्धाउअत्तादो सम्मत्तेणेव णिग्गदो (५) मणुसो जादो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि पणवण्ण पलिदोवमाणि उक्कस्संतरं होदि। छप्पुढवीणेरइएसु सोहम्मादिदेवेसु च सम्माइट्ठी बद्धाउआ पुव्वं मिच्छत्तेण णिस्सारिदो। एत्थ पुण पणवण्णपलिदोवमाउट्ठिदिदेवीसु तहा ण णिस्सारिदो। एत्थ कारणं जाणिय वत्तव्वं।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ १८१ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ १८२ ॥

जैसे- मोहनीयकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक पुरुषवेदी अथवा नपुंसकवेदी जीव, पचपन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ और आयुके अन्तमें आगामी भवकी आयुको बांधकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया (४)। सम्यक्त्वके साथ आयुको बांधनेसे सम्यक्त्वके साथ ही निकला (५) और मनुष्य हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पचपन पल्योपम स्त्रीवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पहले ओघप्ररूपणामें छह पृथिवियोंके नारकियोंमें तथा सौधर्मादि देवोंमें बद्धायुष्क सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वके द्वारा निकाला था। किन्तु यहां पचपन पल्योपमकी आयुस्थितिवाली देवियोंमें उस प्रकारसे नहीं निकाला। यहांपर इसका कारण जानकर कहना चाहिए।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा ओघके समान अन्तर है ॥ १८१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

स्त्रीवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८२ ॥

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णुक्कस्समोघं ॥ १८७ ॥

कुदो? एगसमय-वासपुधत्तेहि ओघादो भेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १८८ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमसदपुधत्तं ॥ १८९ ॥

तं जहा– एक्को अण्णवेदो अट्ठावीससंतकम्मिओ इत्थिवेदमणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्सिओ सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अणंताणुबंधी विसंजोइय (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अपुव्वो (७) अणियट्टी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) भूओ पडिणियत्तो सुहुमो (११) अणियट्टी (१२) अपुव्वो (१३) हेट्ठा पडिदूणंतरिदो इत्थिवेदट्ठिदिं भमिय अवसाणे संजमं पडिवज्जिय कदकरणिज्जो होदूण अपुव्वुवसामगो जादो। लद्धमंतरं। तदो णिद्दा

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ १८७ ॥

क्योंकि, जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है, इनकी अपेक्षा ओघसे इनमें कोई भेद नहीं है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १८८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमशतपृथक्त्व है ॥ १८९ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव स्त्रीवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पश्चात् अनन्तानुबन्धी कषायका विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका उपशम कर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) और उपशान्तकषाय (१०) होकर पुनः प्रतिनिवृत्त हो सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत हो (१३)

पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे मदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि तेरसंतोमुहुत्तेहि य अपुव्वकरणद्धा-सत्तमभागेण च ऊणिया सगट्ठिदी अंतरं। अणियट्टिस्स वि एवं चेव। णवरि बारस अंतोमुहुत्ता एगसमओ च वत्तव्वो।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९० ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १९१ ॥

अप्पमत्तत्थीवेदाणं वासपुधत्तेण विणा अण्णस्स अंतरस्स अणुवलंभादो।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९२ ॥

सुगममेदं।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १९३ ॥

अन्तर लब्ध हुआ। पीछे निद्रा और प्रचलाके बंध विच्छेद हो जाने पर मरा और देव होगया। इस प्रकार आठ वर्ष और तेरह अन्तर्मुहूर्तोंसे, तथा अपूर्वकरण कालके सातवें भागसे हीन अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है। अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी इसी प्रकारसे अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि उनके तेरह अन्तर्मुहूर्तोंके स्थानपर बारह अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम कहना चाहिए।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १९१ ॥

क्योंकि, अप्रमत्तसंयत स्त्रीवेदियोंका वर्षपृथक्त्वके अतिरिक्त अन्य अन्तर नहीं पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १९३ ॥

---

१ [illegible] । म प्रति १, ६

२ [illegible] । म प्रति १, ६   ३ [illegible] । म प्रति १, ६

४ [illegible] । म प्रति १, ६

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवविसयअंतोमुहुत्त-देसूणबेछावट्ठि
रोवमंतरेहि य वदो भेदाभावा।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो
दि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९४ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो,
तोमुहुत्तं ॥ १९६ ॥

एदं पि सुबोहं।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १९७ ॥

त जहा- एक्को अण्णवेदो उवसमसम्मादिट्ठी सासणं गतूण सासणद्धाए एगा
समओ अत्थि त्ति पुरिसवेदो जादो। सासणगुणेण एगसमयं दिट्ठो, बिदियसमए मिच्छत्त

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा
जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागरोपम अन्तरकी अपेक्षा
ओघमिथ्यादृष्टिके अन्तरसे पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल
होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ १९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा
जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुबोध है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ १९७ ॥

जैसे- अन्य वेदवाला एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको जाकर,
सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशिष्ट रहने पर पुरुषवेदी होगया और
सासादन गुणस्थानके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको

१ सासादनसम्यग्दृष्टि-सम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.
२ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च। स. सि. १, ८.
३ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८.

पयलाण बंधे वोच्छिण्णे मदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि तेरसतोमुहुत्तेहि य अपुव्वकरणद्धाए सत्तमभागेण च ऊणिया सगट्ठिदी अंतरं। अणियट्टिस्स वि एवं चेव। णवरि बारस अंतोमुहुत्ता एगसमओ च वत्तव्वो।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९० ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ १९१ ॥

अप्पमत्तत्थीवेदाणं वासपुधत्तेण विणा अण्णस्स अंतरस्स अणुवलंभादो।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९२ ॥

सुगममेदं।

पुरिसवेदएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ १९३ ॥

अन्तर लब्ध हुआ। पीछे निद्रा और प्रचलाके बंध विच्छेद हो जाने पर मरा और देव होगया। इस प्रकार आठ वर्ष और तेरह अन्तर्मुहूर्तोंसे, तथा अपूर्वकरण-कालके सातवें भागसे हीन अपनी स्थितिप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर है। अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी इसी प्रकारसे अन्तर होता है। विशेष बात यह है कि उनके तेरह अन्तर्मुहूर्तोंके स्थानपर बारह अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम कहना चाहिए।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १९० ॥

यह सूत्र सुगम है।

स्त्रीवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ १९१ ॥

क्योंकि, अप्रमत्तसंयत स्त्रीवेदियोंका वर्षपृथक्त्वके अतिरिक्त अन्य अन्तर नहीं पाया जाता है।

एक जीवकी अपेक्षा उक्त दोनों गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १९२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पुरुषवेदियोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ १९३ ॥

---

१ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८

४ पुंवेदेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। स. सि. १, ८

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवविसयअंतोमुहुत्त-दसूणसत्तावीस-सागरोवमवेरहि य वदो भेदाभावा।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ १९४ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ १९५ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ १९६ ॥

एदं पि सुबोहं।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ १९७ ॥

तं जहा- एक्को अण्णवेदो उवसमसम्मादिट्ठी सासणं गंतूण सासणद्धाए एगो समओ अत्थि त्ति पुरिसवेदो जादो। सासणगुणेण एगसमयं दिट्ठो, विदियसमए मिच्छत्तं

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम सत्ताईस सागरोपम अन्तरकी अपेक्षा ओघमिथ्यादृष्टिके अन्तरसे पुरुषवेदी मिथ्यादृष्टियोंके अन्तरमें कोई भेद नहीं है।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ १९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ १९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

पुरुषवेदी सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुबोध है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ १९७ ॥

जैसे- अन्य वेदवाला एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको जाकर, सासादन गुणस्थानके कालमें एक समय अवशेष रहने पर पुरुषवेदी होगया और सासादन गुणस्थानके साथ एक समय दृष्टिगोचर हुआ। द्वितीय समयमें मिथ्यात्वको

१ [illegible]

गंतूणंतरिदो पुरिसवेदट्ठिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण सासणं पडिवण्णो। विदियसमए मदो देवेसु उववण्णो। एवं वि-समऊणसागरोवमसदपुधत्तमुक्कस्संतरं होदि।

सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उच्चदे— एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४) मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो सगट्ठिदिं परिभमिय अंते सम्मामिच्छत्तं गदो (५)। लद्धमंतरं। अण्णगुणं गंतूण (६) अण्णवेदे उववण्णो। छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊण सागरोवमसदपुधत्तमुक्कस्संतरं होदि।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ १९८ ॥[1]

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ १९९ ॥[2]

एदं पि सुगमं।

जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके आयुके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण कर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ। पश्चात् द्वितीय समयमें मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार उक्त जीवोंका दो समय कम सागरोपमशतपृथक्त्व अन्तर होता है।

पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं— मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव, देवोंमें उत्पन्न हुआ, छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण करके अन्तमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। तत्पश्चात् अन्य गुणस्थानको जाकर (६) अन्य वेदमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक पुरुषवेदी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १९८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त गुणस्थानवर्ती जीवोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १९९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

[1] असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८

[2] एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं ॥ २०० ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो देवेसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिय सगट्ठिदिं भमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५)। छावलियावसेसे उवसमसम्मत्तकाले आसाणं गंतूण मदो देवेसु उववण्णो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमंतरं होदि।

संजदासंजदस्स उच्चदे- एक्को अण्णवेदो पुरिसवेदेसु उववण्णो। बे मास गब्भे अच्छिदूण णिक्खंतो दिवसपुधत्तेण उवसमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो (१)। मिच्छत्तं गंतूण पुरिसवेदट्ठिदिं परिभमिय अंते मणुसेसु उववण्णो। कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। तदो अप्पमत्तो (३) पमत्तो (४) अप्पमत्तो (५)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं बेहि मासेहि तीहि दिवसेहि एक्कारसेहि अंतोमुहुत्तेहि य ऊणा पुरिसवेदट्ठिदी उक्कस्संतरं होदि। किं कारणं अंतरे लद्धे मिच्छत्तं णेदूण अण्णवेदेसु ण

असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती पुरुषवेदियोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २०० ॥

असंयतसम्यग्दृष्टि पुरुषवेदी जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्य वेदी जीव देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हो अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहनेपर सासादनको जाकर मरा और देवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व पुरुषवेदी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर होता है।

संयतासंयत पुरुषवेदी जीवका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- कोई एक अन्य वेदी जीव पुरुषवेदियोंमें उत्पन्न हुआ। दो मास गर्भमें रहकर निकलता हुआ दिवसपृथक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ। जब उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां रहीं तब सासादनगुणस्थानको प्राप्त हो (१) मिथ्यात्वको जाकर पुरुषवेदकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। पश्चात् अप्रमत्तसंयत (३) प्रमत्तसंयत (४) और अप्रमत्तसंयत हुआ (५)। इनमें ऊपरके गुणस्थानोंसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार दो मास तीन दिन और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पुरुषवेदकी स्थिति ही पुरुषवेदी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

शंका—अन्तर प्राप्त हो जानेपर पुनः मिथ्यात्वको ले जाकर अन्य ...

उप्पादिदो ? ण एस दोसो, जेण कालेण मिच्छत्तं गंतूण आउअं बंधिय अण्णवेदेसु उववज्जदि, सो कालो णिज्झणकालादो संखेज्जगुणो त्ति कट्टु अणुप्पाइदत्तादो। उवरिल्लाण पि एदं चेय कारणं वत्तव्वं। पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणं पंचिंदियपज्जत्तभंगो। णवरि विसेसं जाणिय वत्तव्वं।

दोण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[1] ॥ २०१ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ २०२ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण सागरोवमसदपुधत्तं[3] ॥ २०३ ॥

उत्पन्न नहीं कराया, इसका क्या कारण है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि, जिस कालसे मिथ्यात्वको जाकर और आयुको बांधकर अन्य वेदियोंमें उत्पन्न होता है, वह काल सिद्ध होनेवाले कालसे संख्यातगुणा है, इस अपेक्षासे उसे मिथ्यात्वमें ले जाकर पुनः अन्य वेदियोंमें नहीं उत्पन्न कराया।

ऊपरके गुणस्थानोंमें भी यही कारण कहना चाहिए। पुरुषवेदी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका भी अन्तर पंचेन्द्रिय-पर्याप्तकोंके समान है। केवल इनमें जो विशेषता है उसे जानकर कहना चाहिए।

पुरुषवेदी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा इन दोनों गुणस्थानोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २०१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर सागरोपमशतपृथक्त्व है ॥ २०३ ॥

---

१ द्वयोरुपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८

३ उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम्। स. सि. १, ८

तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ अण्णवेदो पुरिसवेदमणुसेसु उववण्णो अट्ठवस्सिओ जादो। सम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अणंताणुबंधिं विसंजोइय (२) दंसणमोहणीयमुवसामिय (३) अप्पमत्तो (४) पमत्तो (५) अप्पमत्तो (६) अपुव्वो (७) अणियट्टी (८) सुहुमो (९) उवसंतकसाओ (१०) पडिणियत्तो सुहुमो (११) अणियट्टी (१२) अपुव्वो (१३) हेट्ठा परियट्टिय अंतरिदो। सागरोवमसदपुधत्तं परिभमिय कदकरणिज्जो होदूण संजमं पडिवज्जिय अपुव्वो जादो। लद्धमंतरं। उवरि पंचिंदियभंगो। एवमट्ठवस्सेहि एगूणतीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणा सगट्ठिदी अंतरं होदि। अणियट्टिस्स वि एवं चेव वत्तव्वं। णवरि अट्ठवस्सेहि सत्तावीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणं सागरोवमसदपुधत्तमंतरं होदि।

दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २०४ ॥

सुगममेदं।

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक अन्यवेदी जीव पुरुषवेदी मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर सम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। अनन्तानुबंधीका विसंयोजन कर (२) दर्शनमोहनीयका उपशमन कर (३) अप्रमत्तसंयत (४) प्रमत्तसंयत (५) अप्रमत्तसंयत (६) अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८) सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तकषाय (१०) पुनः लौटकर सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) अपूर्वकरण (१३) होता हुआ नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। सागरोपमशतपृथक्त्वप्रमाण परिभ्रमण कर कृतकृत्यवेदकसम्यक्त्वी होकर संयमको प्राप्त कर अपूर्वकरणसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। इसके ऊपर का कथन पंचेन्द्रियोंके समान है। इस प्रकार आठ वर्ष और उनतीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थितिप्रमाण पुरुषवेदी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर होता है। अनिवृत्तिकरण उपशामकका भी इसी प्रकारसे अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि आठ वर्ष और सत्ताईस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सागरोपमशतपृथक्त्व इनका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

पुरुषवेदी अपूर्वकरणसंयत और अनिवृत्तिकरणसंयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २०४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ द्वयोः क्षपकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येन एकः समयः । स. सि. १, ८.

उक्कस्सेण वासं सादिरेयं ॥ २०५ ॥

तं जहा– पुरिसवेदेण अपुव्वगुणं पडिवण्णा सव्वे जीवा उवरिमगुणं गदा। अंतरिदमपुव्वगुणट्ठाणं। पुणो छम्मासेसु अदिक्कंतेसु सव्वे इत्थिवेदेण चेव खवगसेडिमारूढा। पुणो चत्तारि वा पंच वा मासे अंतरिदूण खवगसेडिं चडमाणा णवुंसयवेदोदएण चडिदा। पुणो वि एक्क-दो मासे अंतरिदूण इत्थिवेदेण चडिदा। एवं संखेज्जवारमित्थि-णवुंसयवेदोदएण चेव खवगसेडिं चडाविय पच्छा पुरिसवेदोदएण खवगसेडिं चडिदे वासं सादिरेयमंतरं होदि। कुदो ? णिरंतरं छम्मासमंतरस्स असंभवादो। एवमणियट्टिस्स वि वत्तव्वं। केसु वि सुत्तपोत्थएसु पुरिसवेदस्संतरं छम्मासा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २०६ ॥

कुदो ? खवगाणं पडिणियत्तीए अभावा।

णवुंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २०७ ॥

उक्त दोनों क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है ॥ २०५ ॥

जैसे– पुरुषवेदके द्वारा अपूर्वकरणक्षपक गुणस्थानको प्राप्त हुए सभी जीव ऊपरके गुणस्थानोंको चले गए और अपूर्वकरणगुणस्थान अन्तरको प्राप्त होगया। पुनः छह मास व्यतीत हो जाने पर सभी जीव स्त्रीवेदके द्वारा ही क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए। पुनः चार या पांच मासका अन्तर करके नपुंसकवेदके उदयसे कुछ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़े। पुनः एक दो मास अन्तरकर कुछ जीव स्त्रीवेदके द्वारा क्षपकश्रेणीपर चढ़े। इस प्रकार संख्यात वार स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके उदयसे ही क्षपकश्रेणीपर चढ़ा करके पीछे पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणी चढ़नेपर साधिक वर्षप्रमाण अन्तर हो जाता है, क्योंकि, निरन्तर छह मासके अन्तरसे अधिक अन्तरका होना असम्भव है। इसी प्रकार पुरुषवेदी अनिवृत्तिकरणक्षपकका भी अन्तर कहना चाहिए। कितनी ही सूत्रपोथियोंमें पुरुषवेदका उत्कृष्ट अन्तर छह मास पाया जाता है।

दोनों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०६ ॥

क्योंकि, क्षपकोंका पुनः लौटना असम्भव है।

नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २०७ ॥

---

१ [illegible]

२ [illegible]

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ २०८ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि[2] ॥ २०९ ॥

तं जधा- एक्को मिच्छादिट्ठी अट्ठावीससंतकम्मिओ सत्तमपुढवीए उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतरिदो । अवसाणे मिच्छत्तं गदूण (४) आउअं बंधिय (५) विस्समिय (६) मदो तिरिक्खो जादो। एवं छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि उक्कस्संतरं होदि।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामिदो त्ति मूलोघं[3] ॥ २१० ॥

यह सूत्र सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २०८ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

एक जीवकी अपेक्षा नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टियोंका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम है ॥ २०९ ॥

जैसे- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव सातवीं पृथिवीमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर (४) आयुको बांध ( ) विश्राम ले (६) मरा और तिर्यंच हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तेतीस सागरोपमकाल नपुंसकवेदी मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण उपशामक गुणस्थान तक नपुंसकवेदी जीवोंका अन्तर मूलोघके समान है ॥ २१० ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तम् । स. सि. १, ८.
२ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८.
३ सासादनसम्यग्दृष्ट्याद्यनिवृत्त्युपशमकान्तानां सामान्योक्तम् । स. सि. १, ८.

दोण्ह खवाणमतर केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय[1] ॥ २११ ॥

सुगममेद सुत्त ।

उक्कस्सेण वासपुधत्त ॥ २१२ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदत्तादो ।

एगजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर ॥ २१३ ॥

सुगममेद ।

अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमतर केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय[2] ॥ २१४ ॥

सुगममेद ।

उक्कस्सेण वासपुधत्त ॥ २१५ ॥

कुदो ? उवसामगत्तादो ।

नपुसकवेदी अपूर्वकरणसयत और अनिवृत्तिकरणसयत, इन दोनों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥२११॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों नपुसकवेदी क्षपकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१२ ॥

क्योंकि, यह अप्रशस्त वेद है (और अप्रशस्त वेदसे क्षपकश्रेणी चढ़नेवाले जीव बहुत नहीं होते)।

उक्त दोनों नपुसकवेदी क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २१३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरण उपशामक और सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त दोनों अपगतवेदी उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २१५ ॥

क्योंकि, ये दोनों उपशामक गुणस्थान हैं (और ओघमें उपशामकोंका इतना ही उत्कृष्ट अन्तर बतलाया गया है)।

१ द्वयो क्षपकयो नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकसमय । स सि १, ८

२ अपगतवेदेषु अनिवृत्तिबादरोपशमकसूक्ष्मसाम्परायोपशमकयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकसमय । स सि १, ८

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि सुदअण्णाणि विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ २२९ ॥

अच्छिण्णपवाहत्तादो गुणसंकंतीए अभावादो ।

सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ २३० ॥

कुदो ? जहण्णुक्कस्सेण एगसमय पलिदोवमासंखेज्जदिभागेहि साधम्मादो ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ २३१ ॥

कुदो ? णाणंतरगमणे मग्गणविणासादो ।

आभिणिबोहिय-सुद-ओहिणाणीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३२ ॥

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २२९ ॥

क्योंकि, इन तीनों अज्ञानवाले मिथ्यादृष्टियोंका अविच्छिन्न प्रवाह होनेसे गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

तीनों अज्ञानवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २३० ॥

क्योंकि, जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमके असंख्यातवें भागकी अपेक्षा समानता है ।

तीनों अज्ञानवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३१ ॥

क्योंकि, अज्ञानी जीवके ज्ञानवाले ज्ञानोंसे भिन्न ज्ञानोंको प्राप्त होने पर विवक्षित मार्गणाका विनाश हो जाता है ।

आभिनिबोधिकज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानवालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३२ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

कुदो? सव्वकालमविच्छिण्णपवाहत्तादो।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३३ ॥

तं जहा- एक्को असंजदसम्मादिट्ठी संजमासंजमं पडिवण्णो। तत्थ सव्वलहुमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो वि असंजदसम्मादिट्ठी जादो। लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २३४ ॥

तं जहा- जो कोई जीवो अट्ठावीससंतकम्मिओ पुव्वकोडाउट्ठिदिसण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४) अंतोमुहुत्तेण विसुद्धो संजमासंजमं गंतूणंतरिदो। पुव्वकोडिकालं संजमासंजममणुपालिदूण मदो देवो जादो। लद्धं चदुहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं।

ओधिणाणिअसंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे- एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४)। तदो अंतोमुहुत्तेण ओधिणाणी जादो।

क्योंकि, तीनों ज्ञानवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका सर्वकाल अविच्छिन्न प्रवाह रहता है।

तीनों ज्ञानवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३३ ॥

जैसे- एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संयमासंयमको प्राप्त हुआ। वहां पर सर्वलघु अन्तर्मुहूर्त काल रह करके फिर भी असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥२३४॥

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई जीव पूर्वकोटीकी आयुस्थितिवाले संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४) और अन्तर्मुहूर्तसे विशुद्ध हो संयमासंयमको प्राप्त होकर अन्तरको प्राप्त हुआ। पूर्वकोटीकालप्रमाण संयमासंयमका परिपालन कर मरा और देव हुआ। इस प्रकार चार अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीप्रमाण मति-श्रुतज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर लब्ध हुआ।

अवधिज्ञानी असंयतसम्यग्दृष्टिका अन्तर कहते हैं- मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे अवधिज्ञानी होगया। अन्तर्मुहूर्त अवधिज्ञानके साथ रह

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना। स. सि. १, ८.

अंतोमुहुत्तमच्छिय (५) संजमासंजमं पडिवण्णो। पुव्वकोडिं संजमासंजममणुपालिय मदो देवो जादो। पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया पुव्वकोडी लद्धमंतरं।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३५ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २३६ ॥

एदं पि सुगमं, ओघादो एदस्स भेदाभावा।

उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ २३७ ॥

तं जहा– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ मणुसेसु उववण्णो। अट्ठवस्सिओ संजमासंजमं वेदगसम्मत्तं च जुगवं पडिवण्णो (१)। अंतोमुहुत्तेण संजमं गंतूणंतरिय संजमेण पुव्वकोडिं गमिय अणुत्तरदेवेसु तेत्तीसाउट्ठिदिएसु उववण्णो (३३)। तदो चुदो पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो। खइयं पट्ठविय संजममणुपालिय पुणो समऊणतेत्तीस

कर (५) संयमासंयमको प्राप्त हुआ। पूर्वकोटीप्रमाण संयमासंयमको परिपालनकर मरा और देव होगया। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटीकालप्रमाण अन्तर लब्ध हुआ।

मतिज्ञानादि तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है, क्योंकि, ओघप्ररूपणासे इसका कोई भेद नहीं है।

तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक छ्यासठ सागरोपम है ॥ २३७ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर संयमासंयम और वेदकसम्यक्त्वको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुनः अन्तर्मुहूर्तसे संयमको प्राप्त करके अन्तरको प्राप्त हो, संयमके साथ पूर्वकोटीप्रमाण काल बिता कर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले अनुत्तरविमानवासी देवोंमें उत्पन्न हुआ (३३)। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। तब क्षायिक सम्यक्त्वको धारणकर और संयमको परिपालनकर पुनः एक समय कम तेतीस

१ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि सातिरेकाणि। स. सि. १, ८.

सागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो। दीहकालमच्छिदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (२)। लद्धमंतरं। तदो संजमं पडिवण्णो (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (४) खवगसेढीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (५)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवमट्ठवस्सेहि एक्कारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणियाहि तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं। एवमाहिणिबोहियणाणिभंगो संजदासंजदस्स वि। णवरि आभिणिबोहियणाणस्स आदीदो अंतोमुहुत्तेण आदिं कादूण अंतराविय बारसअंतोमुहुत्तेहि समहियअट्ठवस्सूणतीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि त्ति वत्तव्वं।

एदं वक्खाणं ण भद्दयं, अप्पतरपरूवणादो। तदो दीहतरट्ठमण्णा परूवणा कीरदे। एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं संजमासंजमं च समगं पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तमच्छिय (४) असंजदसम्मादिट्ठी जादो। पुव्वकोडिं गमिय

सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां दीर्घकाल तक रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (२)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पश्चात् संयमको प्राप्त हुआ (३) और प्रमत्त अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (४) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (५)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और ग्यारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे अधिक छयासठ सागरोपम तीनों ज्ञानवाले संयतासंयतोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इसी प्रकारसे अवधिज्ञानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर जानना चाहिए। विशेष बात यह है कि आभिनिबोधिकज्ञानीके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे प्रारम्भ करके अन्तरको प्राप्त कराकर बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे अधिक आठ वर्षसे कम तीन पूर्वकोटि योंसे साधिक छयासठ सागरोपमकाल अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए।

शंका—उपर्युक्त व्याख्यान ठीक नहीं है क्योंकि, इस प्रकार अल्प अन्तरकी प्ररूपणा होती है। अतः दीर्घ अन्तरके लिए अन्य प्ररूपणा की जाती है– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदक सम्यक्त्वको और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ। संयमासंयमके साथ अन्तर्मुहूर्त रहकर (४) असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। पुनः पूर्वकोटीकाल विताकर तेरह सागरो

लतय-काविट्ठदेवेसु तेरससागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो (१३)। तदो चुदो पुव्व-कोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ संजममणुपालिय बावीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। (२२)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ संजममणु-पालिय सइय पट्ठविय एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो (३१)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं गदो। लद्धमंतरं (५)। विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (६)। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेडीपाओग्ग-अप्पमत्तो जादो (८)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं चोद्दसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणचदुपुव्व-कोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं। एवमोधिणाणिसंजदासंजदस्स वि अंतरं वत्तव्वं। णवरि आभिणिबोहियणाणस्स आदिदो अंतोमुहुत्तेण आदिं कादूण अंतरं वेदव्वो। पुणो पण्णारसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठि-सागरोवमाणि उप्पादेदव्वाणि ? ण, एदं घडदे, सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु संजमासंजमस्स ओहिणाणुवसमसम्मत्ताणं संभवाभावादो। तं कधं णव्वदे ? 'पंचिंदिएसु उवसामेंतो

पमकी आयुवाले लातव कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् वहांसे च्युत हो पूर्व-कोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर संयमका परिपालन कर बाईस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (२२)। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर संयमको परिपालन कर और क्षायिक सम्यक्त्वको धारणकर इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (३१)। तत्पश्चात् वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५)। पश्चात् विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (८)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार चौदह अन्त-र्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छ्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे अवधिज्ञानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि आभिनिबोधिकज्ञानके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे आदि करके अन्तरको प्राप्त कराना चाहिए। पुनः पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छ्यासठ सागरोपम उत्पन्न करना चाहिए ?

समाधान—उपर्युक्त शंकामें बतलाया गया यह अन्तरकाल घटित नहीं होता है, क्योंकि, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें संयमासंयमके समान अवधिज्ञान और उपशम सम्यक्त्वका संभवताका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें अवधि-ज्ञान और उपशमसम्यक्त्वका अभाव है ?

गब्भोवक्कंतिएसु उवसामेदि, णो सम्मुच्छिमेसु' त्ति चूलियासुत्तादो। ओहिणाणाभावो कुदो णव्वदे? सम्मुच्छिमेसु ओहिणाणमुप्पाइय अंतरपरूवयआइरियाणमणुवलंभा। णवदु णाम सण्णिसम्मुच्छिमेसु ओहिणाणाभावो, ण्हमोघम्मि उत्ताणमाभिणिबोहिय-सुदणाणाणं तेसु संभवंताणमेदमंतरं ण उच्चदि? ण, तत्थुप्पण्णाणमेवंविहंतरासंभवादो। तं कुदो णव्वदे? तहा अवक्खाणादो। अहवा जाणिय वत्तव्वं। गब्भोवक्कंतिएसु गमिद अट्ठेतालीस (पुव्वकोडि) वस्सेसु ओहिणाणमुप्पादिय किण्ण अंतराविदो? ण, तत्थ वि ओहिणाणसंभवपरूवयवक्खाणाइरियाणमभावादो।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २३८ ॥

समाधान—'पर्याप्त जीवोंमें दर्शनमोहका उपशमन करता हुआ गर्भोत्पन्न जीवोंमें ही उपशमन करता है, सम्मूर्च्छिमोंमें नहीं,' इस प्रकारके चूलिकासूत्रसे जाना जाता है।

शंका—संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवोंमें अवधिज्ञानका अभाव कैसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, अवधिज्ञानको उत्पन्न कराके अन्तरके प्ररूपण करनेवाले आचार्योंका अभाव है। अर्थात् किसी भी आचार्यने इस प्रकार अन्तरकी प्ररूपणा नहीं की।

शंका—संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवोंमें अवधिज्ञानका अभाव भले ही रहा आवे, किन्तु ओघप्ररूपणामें कहे गये, और संज्ञी सम्मूर्च्छिम जीवोंमें सम्भव आभिनिबोधिकज्ञान और श्रुतज्ञानका ही यह अन्तर है, ऐसा क्यों नहीं कहते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उनमें उत्पन्न होनेवाले जीवोंके इस प्रकार अन्तर सम्भव नहीं है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, इस प्रकारका व्याख्यान नहीं पाया जाता है। अथवा, जानकरके इसका व्याख्यान करना चाहिए।

शंका—गर्भोत्पन्न जीवोंमें व्यतीत की गई अड़तालीस पूर्वकोटी वर्षोंमें अवधिज्ञान उत्पन्न करके अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि उनमें भी अवधिज्ञानकी सम्भवताका प्ररूपण करनेवाले व्याख्यानाचार्योंका अभाव है।

तीनों ज्ञानवाले प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २३८ ॥

१ प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

लांतव-काविट्ठदेवेसु तेरससागरोवमाउट्ठिदिएसु उववण्णो (१३)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ संजममणुपालिय बावीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। (२२)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। तत्थ संजममणुपालिय खइयं पट्ठविय एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो (३१)। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे संजमासंजमं गदो। लद्धमंतरं (५)। विसुद्धो अप्पमत्तो जादो (६)। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (७) खवगसेडीपाओग्ग-अप्पमत्तो जादो (८)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं चोद्दसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणचदुपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्संतरं। एवमोहिणाणिसंजदासंजदस्स वि अंतरं वत्तव्वं। णवरि आभिणिबोहियणाणस्स आदिदो अंतोमुहुत्तेण आदिं कादूण अंतरं णेदव्वो। पुणो पण्णारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणाणि चदुहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उप्पादेदव्वाणि? ण घडदे, सण्णिसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु संजमासंजमस्सेव ओहिणाणुवसमसम्मत्ताणं संभवाभावादो। तं कधं णव्वदे? 'पंचिंदिएसु उवसामेंता

पमकी आयुवाले लान्तव कापिष्ठ देवोंमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर संयमका परिपालन कर बाईस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (२२)। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां पर संयमको परिपालन कर और क्षायिक सम्यक्त्वको धारणकर इकतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ (३१)। तत्पश्चात् वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जानेपर संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (५)। पश्चात् विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ (६)। पुनः प्रमत्त अप्रमत्तगुणस्थान सम्बन्धी सहस्रों परावर्तनोंको करके (७) क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (८)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छ्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकारसे अवधिज्ञानी संयतासंयतका भी उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि आभिनिबोधिकज्ञानके आदिके अन्तर्मुहूर्तसे आदि करके अन्तरको प्राप्त कराना चाहिए। पुनः पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चार पूर्वकोटियोंसे साधिक छ्यासठ सागरोपम उत्पन्न करना चाहिए?

समाधान—उपर्युक्त प्रकारसे बतलाया गया यह अन्तरकाल घटित नहीं होता है, क्योंकि, संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें संयमासंयमके समान अवधिज्ञान और उपशमसम्यक्त्वकी संभवताका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है कि संज्ञी सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें अवधिज्ञान और उपशमसम्यक्त्वका अभाव है?

त जहा– एक्को अट्ठावीससतकम्मिओ पुव्वकोडाउअमणुसेसु उववण्णो। अट्ठ-वस्सिओ वेदगसम्मत्तमप्पमत्तगुण च जुगव पडिवण्णो (१)। तदो पमत्तापमत्तपरावत्त सहस्स कादूण (२) उवसमसेढीपाओग्गविसोहीए विसुद्धो (३) अपुव्वो (४) अणि-यट्टी (५) सुहुमो (६) उवसता (७) पुणो वि सुहुमो (८) अणियट्टी (९) अपुव्वो (१०) होदूण हेट्ठा पडिय अतरिदो। देसूणपुव्वकोडि सजममणुपालेदूण मदो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उव-वण्णो। खइय पट्ठविय सजम कादूण काल गदो तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसु उव-वण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउओ मणुसो जादो सजम पडिवण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे ससारे अपुव्वो जादो। लद्धमतर (११)। अणियट्टी (१२) सुहुमो (१३) उवसतो (१४) भूओ सुहुमो (१५) अणियट्टी (१६) अपुव्वो (१७) अप्पमत्तो (१८) पमत्तो (१९) अप्पमत्तो (२०)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अट्ठहि वस्सेहि छव्वीसअतो-मुहुत्तेहि य ऊणा तीहि पुव्वकोडीहि सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि उक्कस्सतर होदि। अथवा चत्तारि पुव्वकोडीओ तेरस-बावीस-एक्कत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसु उप्पाइय

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर वेदकसम्यक्त्व और अप्रमत्त गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। तत्पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्तगुणस्थान-सम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (२) उपशमश्रेणीके प्रायोग्य विशुद्धिसे विशुद्ध होता हुआ (३) अपूर्वकरण (४) अनिवृत्तिकरण (५) सूक्ष्मसाम्पराय (६) उपशान्त-कषाय (७) होकर फिर भी सूक्ष्मसाम्पराय (८) अनिवृत्तिकरण (९) अपूर्वकरण (१०) होकर तथा नीचे गिरकर अन्तरको प्राप्त हुआ। कुछ कम पूर्वकोटीकालप्रमाण सयमको परिपालन कर मरा और तेतीस सागरोपम आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। पश्चात् च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और क्षायिकसम्यक्त्वको धारण कर और सयम धारण करके मरणको प्राप्त हो तेतीस सागरोपमकी आयुस्थिति-वाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटी आयुवाला मनुष्य हुआ और यथासमय सयमको प्राप्त हुआ। पुन ससारके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रह जाने पर अपूर्व-करणगुणस्थानवर्ती हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ (११)। पश्चात् अनिवृत्ति-करण (१२) सूक्ष्मसाम्पराय (१३) उपशान्तकषाय (१४) होकर पुन सूक्ष्मसाम्पराय (१५) अनिवृत्तिकरण (१६) अपूर्वकरण (१७) अप्रमत्तसयत (१८) प्रमत्तसयत हुआ (१९)। पुन अप्रमत्तसयत हुआ (२०)। इनमें ऊपरके क्षपकश्रेणीसम्बन्धी और भी छह अन्त-र्मुहूर्त मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और छब्बीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम तीन पूर्वकोटियोंसे साधिक छ्यासठ सागरोपम उत्कृष्ट अन्तर होता है। अथवा, तेरह, बाईस और इकतीस

वत्तव्वाओ। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं। णवरि चदुवीस बावीस वीस अन्तोमु-
हुत्ता ऊणा कादव्वा। एवमोहिणाणीणं पि वत्तव्वं, विसेसाभावा।

चदुण्हं खवगाणमोघं। णवरि विसेसो ओधिणाणीसु खवाणं वासपुधत्तं ॥ २४५ ॥

कुदो? ओधिणाणीणं पाएण संभवाभावा।

मणपज्जवणाणीसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालदो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २४६ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४७ ॥

एदं पि सुगमं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २४८ ॥

सागरोपम आयुकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न कराकर मनुष्यभवसम्बन्धी चार पूर्वकोटियाँ कहना चाहिए। इसी प्रकारसे शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेष बात यह है कि अनिवृत्तिकरणके चौबीस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्परायके बाईस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकषायके बीस अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिए। इसी प्रकारसे उपशामक अवधिज्ञानियोंका भी अन्तर कहना चाहिए, क्योंकि, उनमें भी कोई विशेषता नहीं है।

तीनों ज्ञानवाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है। विशेष बात यह है कि अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंका अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २४५ ॥

क्योंकि, अवधिज्ञानियोंके प्रायः होनेका अभाव है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २४६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २४८ ॥

---

१ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्योक्तम्। किन्तु अवधिज्ञानिषु नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः, उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८ २ प्रतिषु '[illegible]' [illegible]।

३ मनःपर्ययज्ञानिषु प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८

४ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८

तं जहा- एक्को पमत्तो मणपज्जवणाणी अप्पमत्तो होदूण उवरि चडिय हेट्ठा ओयरिदूण पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो मणपज्जवणाणी पमत्तो होदूणवरिय सव्वचिरेण कालेण अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। उवसमसेढिं चडाविय किण्णंतराविदो ? ण, उवसमसेढिसव्वद्धाहिंतो पमत्तद्धा एक्का चेव संखेज्जगुणा त्ति गुरूवदेसादो।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ २४९ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २५० ॥

एदं पि सुगमं।

जैसे- एक मनःपर्ययज्ञानी प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत हो ऊपर चढ़कर और नीचे उतर कर प्रमत्तसंयत हो गया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत होकर अन्तरको प्राप्त हो अति दीर्घकालसे अप्रमत्तसंयत होगया। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ।

शंका—मनःपर्ययज्ञानी अप्रमत्तसंयतको उपशमश्रेणी पर चढ़ाकर पुनः अन्तरको प्राप्त क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसम्बन्धी सभी अर्थात् चार चढ़नेके और तीन उतरनेके, इन सब गुणस्थानोंसम्बन्धी कालोंसे अकेले प्रमत्तसंयतका काल ही संख्यातगुणा होता है, ऐसा गुरुका उपदेश है।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २४९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २५१ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ २५२ ॥

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो अंतोमुहुत्तब्भहियअट्ठवस्सेहि संजमं पडिवण्णो (१)। पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे सादासादबंधपरावत्तसहस्सं कादूण (२) विसुद्धो मणपज्जवणाणी जादो (३)। उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण सेडीमुवगदो (४)। अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) उवसंतो (८) पुणो वि सुहुमो (९) अणियट्टी (१०) अपुव्वो (११) पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे (१२) पुव्वकोडिं मच्छिदूण अणुदिसादिसु आउअं बंधिदूण अंतोमुहुत्तावसेसे जीविए विसुद्धो अपुव्वुवसामगो जादो। णिद्दा-पयलाणं बंधवोच्छिण्णे कालं गदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि बारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी उक्कस्संतरं। एवं तिण्हमुवसामगाणं। णवरि जहाकमेण दस णव अट्ठ अंतोमुहुत्ता समओ य पुव्वकोडीदो ऊणा त्ति वत्तव्वं।

मनःपर्ययज्ञानी चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर जघन्यसे अन्तर्मुहूर्त है ॥ २५१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी है ॥२५२॥

जैसे– कोई एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ और अन्तर्मुहूर्तसे अधिक आठ वर्षके द्वारा संयमको प्राप्त हुआ (१)। पुनः प्रमत्त अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें साता और असाताप्रकृतियोंके सहस्रों बंध परिवर्तनोंको करके (२) विशुद्ध हो मनःपर्ययज्ञानी हुआ (३)। पश्चात् उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर श्रेणीको प्राप्त हुआ (४)। तब अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) उपशान्तकषाय (८) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) अपूर्वकरण (११) होकर प्रमत्त और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें (१२) पूर्वकोटीकाल तक रहकर अनुदिश आदि विमानवासी देवोंमें आयुको बांधकर जीवनके अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहने पर विशुद्ध हो अपूर्वकरण उपशामक हुआ। पुनः निद्रा तथा प्रचला, इन दो प्रकृतियोंके बंध विच्छेद हो जाने पर मरणको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी कालप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर होता है। इसी प्रकार शेष तीन मनःपर्ययज्ञानी उपशामकोंका भी अन्तर होता है। विशेषता यह है कि उनके यथाक्रमसे दश, नौ और आठ अन्तर्मुहूर्त तथा एक समय पूर्वकोटीसे कम कहना चाहिए।

---

१ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

चदुण्ह खवगाणमतर केवचिर कालादो होदि, णाणाजीव पडुच्च जहण्णेण एगसमय ॥ २५३ ॥

सुगममेद ।

उक्कस्सेण वासपुधत्त ॥ २५४ ॥

कुदो ? मणपज्जवणाणेण खवगसेढि चढमाणाण पउर सभवाभावा ।

एगजीव पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर ॥ २५५ ॥

एद पि सुगम ।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघ ॥ २५६ ॥

णाणेगजीवअतराभावेण साधम्मादो ।

अजोगिकेवली ओघ ॥ २५७ ॥

सुगममेद सुत्त ।

एव णाणमग्गणा समत्ता ।

मन पर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २५४ ॥

क्योंकि, मन पर्ययज्ञानके साथ क्षपकश्रेणीपर चढनेवाले जीवोंका प्रचुरतासे होना सभव नहीं है ।

मन पर्ययज्ञानी चारों क्षपकोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २५५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

केवलज्ञानी जीवोंमें सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५६ ॥

क्योंकि, नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे समानता है ।

अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ २५७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ चतुर्णा क्षपकाणामवधिज्ञानिवत् । स सि १, ८

२ द्वयो केवलज्ञानिनो सामान्यवत् । स सि १, ८

णवरि समयाहियणवअंतोमुहुत्ता ऊणा कादव्वा।

दोण्हं खवाणमोघं ॥ २६८ ॥

सुगममेदं।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्तापमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २६९ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७० ॥

तं जहा- एक्को पमत्तो परिहारसुद्धिसंजदो अप्पमत्तो होदूण सव्वलहु पमत्तो जादो। लद्धमंतरं। एवमप्पमत्तस्स वि पमत्तगुणेण अंतराविय वत्तव्वं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ २७१ ॥

एदस्सत्थो जधा जहण्णस्स उत्तो, तधा वत्तव्वो। णवरि सव्वचिरेण कालेण पलट्टावेदव्वो।

इनका अन्तर एक समय अधिक नौ अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए।

सामायिक और छेदोपस्थापनासंयमी अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों क्षपकोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर ओघके समान है ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्त और अप्रमत्त संयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २६९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७० ॥

जैसे- परिहारशुद्धिसंयमवाला कोई एक प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत होकर सर्वलघु कालसे प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। इसी प्रकार परिहारशुद्धिसंयमी अप्रमत्तसंयतका भी प्रमत्तगुणस्थानके द्वारा अन्तरको प्राप्त कराकर अन्तर कहना चाहिए।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २७१ ॥

इस सूत्रका अर्थ जैसा जघन्य अन्तर बतलाते हुए कहा है उसी प्रकारसे कहना चाहिए। विशेषता यह है कि इसे यहां पर सर्व दीर्घकालसे पलटाना चाहिए।

---

१ द्वयोः क्षपकयोः सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ परिहारशुद्धिसंयतेषु प्रमत्ताप्रमत्तयोर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कर्षं चान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥२७२॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ २७३ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २७४ ॥

कुदो ? अधिगदसंजमाविणासेण अंतराणेउवायाभावा ।

खवाणमोघं ॥ २७५ ॥

कुदो ? णाणाजीवगदजहण्णुक्कस्सेगसमय छम्मासेहि एगजीवस्संतराभावेण य साधम्मादो ।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७६ ॥

सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ २७२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ २७३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७४ ॥

क्योंकि, प्राप्त किये गये संयमके विनाश हुए विना अन्तरको प्राप्त होनेके उपायका अभाव है ।

सूक्ष्मसाम्परायसंयमी क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह मासके साथ, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे ओघके साथ समानता पाई जाती है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें चारों गुणस्थानोंके संयमी जीवोंका अन्तर अकषायी जीवोंके समान है ॥ २७६ ॥

---

१ सूक्ष्मसाम्परायशुद्धिसंयतेषूपशमकस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

३ अ प्रतौ 'अंतरावण्णा उवाया' आ प्रतौ 'अंतरावणो उवाया' इति पाठः ।

४ तस्यैव क्षपकस्य सामान्यवत् । स. सि. १, ८. ५ यथाख्याते अकषायवत् । स. सि. १, ८.

कुदो ? अकसायाणं जहाक्खादसजमेण विणा अण्णसजमाभावा ।

सजदासजदाणमतर केवचिर कालादो होदि, णाणेगजीव पडुच्च
अतर, णिरतर ॥ २७७ ॥

कुदो ? गुणतरगहणे मग्गणाविणासा, गुणतरग्गहणेण विणा अतरकरण उवायाभावा।

असजदेसु मिच्छादिट्ठीणमतर केवचिर कालादो होदि, णाणा-
पडुच्च णत्थि अतर, णिरतर ॥ २७८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठिपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ॥ २७९ ॥

कुदो ? गुणतर गतूणतरिय अविणट्ठअसजमेण जहण्णकालेण पलट्टिय मिच्छत्त
ट्ठियस्स अंतोमुहुत्ततरुवलभा ।

क्योंकि, अकषायी जीवोंके यथाख्यातसयमके विना अन्य सयमका अभाव है ।

संयतासयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा
अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७७ ॥

क्योंकि, अपने गुणस्थानको छोड़कर अन्य गुणस्थानके ग्रहण करने पर मार्ग
णाका विनाश होता है और अन्य गुणस्थानका ग्रहण किये विना अन्तर करनेका कोई
उपाय नहीं है ।

असयतोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी
अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २७८ ॥

क्योंकि मिथ्यादृष्टि जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता ।

असयमी मिथ्यादृष्टि जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त
है ॥ २७९ ॥

क्योंकि अन्य गुणस्थानको जाकर और अन्तरको प्राप्त होकर असयमभावके
नहीं नष्ट होनेके साथ ही जघन्य कालसे पलटकर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके अन्त
मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है ।

नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स सि १ ८

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं णादमवि' मंदमेहाविजणाणुग्गहट्ठं परूवेमो— एक्को अणादियमिच्छादिट्ठी तिण्णि वि करणाणि काढूण अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तं पडिवण्णो (१)। उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो अद्धपोग्गलपरियट्टं परियट्टिदूण अपच्छिमे भवग्गहणे असंजदसम्मादिट्ठी जादो। लद्धमंतरं (२)। तदो अणंताणुबंधी विसंजोइय (३) विस्संतो (४) दंसणमोहं खविय (५) विस्संतो (६) अप्पमत्तो' जादो (७)। पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं काढूण (८) खवगसेढीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (९)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। एवं पण्णारसेहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणमद्धपोग्गलपरियट्टमसंजदसम्मादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं॥ २८२॥

कुदो? णाणाजीवे' पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवगयअंतोमुहुत्तमेत्तजहण्णंतरेण

असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर यद्यपि ज्ञात है, तथापि मंदबुद्धि जनोंके अनुग्रहार्थ प्ररूपण करते हैं— एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव तीनों करणोंको करके अर्धपुद्गलपरिवर्तनके आदि समयमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (१)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रहने पर सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुआ। पश्चात् अन्तरको प्राप्त हो अर्धपुद्गलपरिवर्तन तक परिवर्तन करके अन्तिम भवमें असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया (२)। तत्पश्चात् अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके (३) विश्राम ले (४) दर्शनमोहनीयका क्षय करके (५) विश्राम ले (६) अप्रमत्तसंयत हुआ (७)। पुनः प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (८) क्षपकश्रेणीके प्रायोग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (९)। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार पन्द्रह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है॥ २८२॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे तथा एक जीवगत

---

१ प्रतिषु णादमदि इति पाठः। २ प्रतिषु पमत्तो इति पाठः।

३ दर्शनानुवादेन चक्षुर्दर्शनिषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

४ अ प्रतौ जीवेसु इति पाठः।

चक्खुदंसणिट्ठिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। लद्धमंतरं। पुणो सासणं गंतूण अचक्खुदंसणीसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी असंजद-सम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं।

संजदासंजदस्स उच्चदे। तं जहा– एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो गब्भो-वक्कंतियपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो। सण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पा-दिदो ? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए असंभवादो। ण च असंखेज्जलोगमेत्तं वा कालमचक्खुदंसणीसु परिभमियाणं वेदगसम्मत्तग्गहणं संभवदि, विरोहा। ण च एत्तिय-कालमच्छिदो चक्खुदंसणिट्ठिदीए समाणणक्खमो। तिण्णि पक्ख तिण्णि दिवस अंतो-मुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२)। पढमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (३)। लद्धमंतरं। अप्पमत्तो

हुआ। पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चक्षुदर्शनी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं। जैसे– अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपक्रान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ।

शंका—उक्त जीवको संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्च्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असम्भव है। तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिभ्रमण किये हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २८६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २८७ ॥

कुदो ? एदेसिं सव्वेसिं पि अण्णगुणं गंतूण जहण्णकालेण अप्पिदगुणं गदाणमंतोमुहुत्तंतरुवलंभा ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २८८ ॥

तं जधा– एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो असण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु उववण्णो । पंचहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) भवणवासिय-वाणवेंतरदेवेसु आउअं बंधिय (४) विस्संतो (५) कालं गदो देवेसु उववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (६) विस्संतो (७) विसुद्धो (८) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (९)। उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गंतूणंतरिदो। मिच्छत्तं गदो ...

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक चक्षुदर्शनियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २८६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २८७ ॥

क्योंकि, इन सभी गुणस्थानवर्ती जीवोंके अन्य गुणस्थानको जाकर पुनः जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेपर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अन्तर पाया जाता है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २८८ ॥

जैसे– अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव असंज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्च्छिम पर्याप्तक जीवोंमें उत्पन्न हुआ। पांचों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) भवनवासी या वानव्यन्तरोंमें आयुको बांध कर (४) विश्राम ले (५) मरणको प्राप्त हुआ और देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहां छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (६) विश्राम ले (७) विशुद्ध हो (८) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (९)। उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रहने पर सासादनको जाकर अन्तरको प्राप्त ...

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने । स. सि. १, ८

चक्खुदंसणिट्ठिदिं भमिय अवसाणे उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (१०)। लद्धमंतरं। पुणो सासणं गदो अचक्खुदंसणीसु उववण्णो। दसहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणिया सगट्ठिदी असंजद-सम्मादिट्ठीणमुक्कस्संतरं।

संजदासंजदस्स उच्चदे। तं जहा– एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो गब्भो-वक्कंतियपंचिंदियपज्जत्तएसु उववण्णो। सण्णिपंचिंदियसम्मुच्छिमपज्जत्तएसु किण्ण उप्पा-दिदो? ण, सम्मुच्छिमेसु पढमसम्मत्तुप्पत्तीए असंभवादो। ण च असंखेज्जलोगमेत्तं वा कालमचक्खुदंसणीसु परिभमियाणं वेदगसम्मत्तग्गहणं संभवदि, विरोहा। ण च थोवं कालमच्छिदो चक्खुदंसणिट्ठिदीए समाणणक्खमो। तिण्णि पक्ख तिण्णि दिवस अंतो-मुहुत्तेण य पढमसम्मत्तं संजमासंजमं च जुगवं पडिवण्णो (२)। पढमसम्मत्तद्धाए छावलियाओ अत्थि त्ति सासणं गदो। अंतरिदो मिच्छत्तं गंतूण सगट्ठिदिं परिभमिय अपच्छिमे भवे कदकरणिज्जो होदूण संजमासंजमं पडिवण्णो (३)। लद्धमंतरं। अप्पमत्तो

हुआ। पुनः मिथ्यात्वको जाकर चक्षुदर्शनकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमण कर अन्तमें उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः सासादनको गया और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें उत्पन्न हुआ। इस प्रकार दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

चक्षुदर्शनी संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं। जैसे– अचक्षुदर्शनकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव गर्भोपक्रान्तिक पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें उत्पन्न हुआ।

शंका—उक्त जीवको संज्ञी पंचेन्द्रिय सम्मूर्छिम पर्याप्तकोंमें क्यों नहीं उत्पन्न कराया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्मूर्छिम जीवोंमें प्रथमोपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति असम्भव है। तथा असंख्यात लोकप्रमाण या अनन्तकाल तक अचक्षुदर्शनियोंमें परिभ्रमण किए हुए जीवोंके वेदकसम्यक्त्वका ग्रहण करना सम्भव नहीं है, क्योंकि, ऐसे जीवोंके सम्यक्त्वोत्पत्तिका विरोध है। और न अल्पकाल तक रहा हुआ जीव चक्षुदर्शनकी स्थितिके समाप्त करनेमें समर्थ है।

पुनः वह जीव तीन पक्ष, तीन दिवस और अन्तर्मुहूर्तसे प्रथमोपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एक साथ प्राप्त हुआ (२)। प्रथमोपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशिष्ट रह जाने पर सासादनको प्राप्त हुआ। पुनः अन्तरको प्राप्त हो मिथ्यात्वको जाकर अपनी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें कृतकृत्यवेदक होकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (३)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। पुनः अप्रमत्तसंयत (४)

---

१ प्रतिषु 'असंखेज्जलोगमेत्तं' इति पाठः।

(३) अप्पमत्तो (४) । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमट्ठवस्सेहि दसअंतोमुहुत्तेहि ऊणिया चक्खुदंसणिट्ठिदी अप्पमत्तुक्कस्संतरं होदि ।

चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २८९ ॥

सुगममिदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ॥ २९१ ॥

तं जहा- एक्को अचक्खुदंसणिट्ठिदिमच्छिदो मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्सेण उवसमसम्मत्तमप्पमत्तगुणं च जुगवं पडिवण्णो (१) । अंतोमुहुत्तेण वेदगसम्मत्तं गदो (२) । तदो अंतोमुहुत्तेण अणंताणुबंधिं विसंजोइदो (३) । दंसणमोहणीयमुवसामिय (४) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्सं कादूण (५) उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो जादो (६) । अपुव्वो (७) अणियट्टी (८) सुहुमो (९) उवसंतो (१०) सुहुमो

हुआ । पुनः प्रमत्तसंयत हुआ (३) अप्रमत्तसंयत हुआ (४) । इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये । इस प्रकार आठ वर्ष और दश अन्तर्मुहूर्तोंसे कम चक्षुदर्शनीकी स्थिति ही चक्षुदर्शनी अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है ।

चक्षुदर्शनी चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो हजार सागरोपम है ॥ २९१ ॥

जैसे- अचक्षुदर्शनी जीवोंकी स्थितिमें विद्यमान एक जीव मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । गर्भको आदि लेकर आठ वर्षके द्वारा उपशमसम्यक्त्व और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानको एक साथ प्राप्त हुआ (१) । अन्तर्मुहूर्तके पश्चात् वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (२) । पुनः अन्तर्मुहूर्तसे अनन्तानुबन्धीका विसंयोजन किया (३) । पुनः दर्शनमोहनीयको उपशमा कर (४) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (५) उपशमश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हुआ (६) । पुनः अपूर्वकरण (७) अनिवृत्तिकरण (८)

१ चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमसहस्रे देशोने । स. सि. १, ८.

(११) अणियट्टी (१२) अपुव्वो (१३) हेट्ठा ओदरिय अंतरिदो चक्खुदंसणिट्ठिदिं परिभमिय अंतिमे भवे मणुसेसु उववण्णो । कदकरणिज्जो होदूण अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे विसुद्धो अप्पमत्तो जादो । सादासादबंधपरावत्तसहस्सं कादूण उवसमसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण अपुव्वुवसामगो जादो (१४) । लद्धमंतरं । तदो अणियट्टी (१५) सुहुमो (१६) उवसंतो (१७) पुणो वि सुहुमो (१८) अणियट्टी (१९) अपुव्वो (२०) अप्पमत्तो (२१) पमत्तो (२२) अप्पमत्तो (२३) होदूण खवगसेढीमारूढो । उवरि छ अंतोमुहुत्ता । एवमट्ठवस्सेहि एगूणत्तीसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया सगट्ठिदी अपुव्वकरणुक्कस्संतरं । एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं । णवरि सत्तावीस पंचवीस तेवीसं अंतोमुहुत्ता ऊणा कायव्वा ।

चदुण्हं खवाणमोघं[1] ॥ २९२ ॥

सुगममेदं ।

सूक्ष्मसाम्पराय (९) उपशान्तमोह (१०) सूक्ष्मसाम्पराय (११) अनिवृत्तिकरण (१२) और अपूर्वकरणसंयत होकर (१३) तथा नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो चक्षुदर्शनीकी स्थितिप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तिम भवमें मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहांपर कृतकृत्यवेदक सम्यक्त्वी होकर संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर विशुद्ध हो अप्रमत्तसंयत हुआ। वहांपर साता और असाता वेदनीयके बंध परावर्तन सहस्रोंको करके उपशम श्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत होकर अपूर्वकरण उपशामक हुआ (१४)। इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया। तत्पश्चात् अनिवृत्तिकरण (१५) सूक्ष्मसाम्पराय (१६) उपशान्तकषाय (१७) पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (१८) अनिवृत्तिकरण (१९) अपूर्वकरण (२०) अप्रमत्तसंयत (२१) प्रमत्तसंयत (२२) और अप्रमत्तसंयत होकर (२३) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। इस प्रकार आठ वर्ष और उनतीस अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी स्थिति चक्षुदर्शनी अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है।

इसी प्रकार चक्षुदर्शनी शेष तीन उपशामकोंका भी अन्तर जानना चाहिए। विशेषता यह है कि अनिवृत्तिकरण उपशामकके सत्ताइस अन्तर्मुहूर्त, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके पच्चीस अन्तर्मुहूर्त और उपशान्तकषायके तेवीस अन्तर्मुहूर्त कम करना चाहिए।

चक्षुदर्शनी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २९२ ॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ चतुर्णा क्षपकाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ २९३ ॥

कुदो ? ओघादो भेदाभावा ।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २९४ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २९५ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता ।

लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ २९६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ २९७ ॥

अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ २९३ ॥

क्योंकि, ओघसे इनके अन्तरमें कोई भेद नहीं है ।

अवधिदर्शनी जीवोंका अन्तर अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २९४ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अन्तर केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई ।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ २९६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ २९७ ॥

१ अचक्खुदंसणीसु [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

४ लेस्साणुवादेण [illegible]

-सागरोवमाणि उक्कस्संतरं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ २९९ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३०० ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीस सत्तारस सत्त सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३०१ ॥

तं जहा- तिण्णि मिच्छादिट्ठी जीवा सत्तम पंचम तदियपुढवीसु किण्ह-णील-काउलेस्सिया उववण्णा । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा (४) सासणं गदा । मिच्छत्तं गंतूणंतरिदा । अंतोमुहुत्तावसेसे

सागरोपम और कापोतलेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम सात सागरोपम होता है ।

उक्त तीनों अशुभलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ २९९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरोपम, सत्तरह सागरोपम और सात सागरोपम है ॥ ३०१ ॥

जैसे- कृष्ण, नील और कापोत लेश्यावाले तीन मिथ्यादृष्टि जीव क्रमशः सातवीं, पांचवीं और तीसरी पृथिवीमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए (४) । पुनः सासादनगुणस्थानको गये । पश्चात् मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः जीवनके अन्तर्मुहूर्त

गंतूण सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय तं चेव गुणमागदा । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ ३०४ ॥

तं जहा– बे मिच्छादिट्ठिणो तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-बे-अट्ठारससागरोवमाउ-ट्ठिदिएसु देवेसु उववण्णा । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) सम्मत्तं घेत्तूणंतरिदा । सगट्ठिदिं जीविय अवसाणे मिच्छत्तं गदा (४) । लद्धं सादिरेय-बे-अट्ठारससागरोवममेत्तंतरं । एवं सम्मादिट्ठिस्स वि । णवरि पंचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणियाओ सगट्ठिदीओ अंतरं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं[2] ॥ ३०५ ॥

सुगममेदं ।

अन्य गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे लौटकर उसी ही गुणस्थानको आगये । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपम है ॥ ३०४ ॥

जैसे– तेज और पद्म लेश्यावाले दो मिथ्यादृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) और सम्यक्त्वको ग्रहण कर अन्तरको प्राप्त हुए । पुनः अपनी स्थितिप्रमाण जीवित रहकर आयुके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुए (४) । इस प्रकार साधिक दो सागरोपमकाल तेजोलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका और साधिक अट्ठारह सागरोपमकाल पद्मलेश्यावाले मिथ्यादृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त होगया । इसी प्रकार तेज और पद्म लेश्यावाले असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका भी अन्तर कहना चाहिए । विशेषता यह है कि पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी अपनी स्थितिप्रमाण अन्तर होता है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३०५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

१ उत्कर्षेण द्वे सागरोपमे अष्टादश च सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो अंतोमुहुत्तं ॥ ३०६ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ॥ ३०७ ॥

तं जहा– बे सासणा तेउ-पम्मलेस्सिया सादिरेय-बे-अट्ठारससागरोवमाउट्ठिदिए देवेसु उववण्णा । एगसमयमच्छिय बिदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदा । अवसाणे दो वि उवसमसम्मत्तं पडिवण्णा । पुणो सासणं गंतूण बिदियसमए मदा । एवं सादिरेय-बे-अट्ठारससागरोवमाणि दुसमऊणाणि सासणुक्कस्संतरं होदि । एवं सम्मामिच्छादिट्ठिस्स वि । णवरि छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणियाओ उत्तट्ठिदीओ अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०८ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमके असंख्यातवें भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३०६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर क्रमशः साधिक दो सागरोपम और अट्ठारह सागरोपम है ॥ ३०७ ॥

जैसे– तेज और पद्म लेश्यावाले दो सासादनसम्यग्दृष्टि जीव साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए । वहां एक समय रहकर दूसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुए । आयुके अन्तमें दोनों ही उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुए । पश्चात् सासादनगुणस्थानको जाकर दूसरे समयमें मरे । इस प्रकार दो समय कम साधिक दो सागरोपम और साधिक अट्ठारह सागरोपम उक्त दोनों लेश्यावाले सासादनसम्यग्दृष्टि जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर होता है । इसी प्रकार उक्त दोनों लेश्यावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका भी अन्तर जानना चाहिए । विशेषता यह है कि इनके छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम अपनी उक्त स्थितियोंप्रमाण अन्तर होता है ।

तेज और पद्म लेश्यावाले संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०८ ॥

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

कुदो ? णाणाजीवपवाहवोच्छेदाभावा। एगजीवस्स वि, लेस्सद्धादो गुणद्धाए बहुत्तुवदेसा।

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३०९ ॥

सुगममेदं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३१० ॥

तं जहा- बे देवा मिच्छादिट्ठि-सम्मादिट्ठिणो सुक्कलेस्सिया गुणंतरं गंतूण जहण्णेण कालेण अप्पिदगुणं पडिवण्णा। लद्धमंतोमुहुत्तमंतरं।

उक्कस्सेण एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३११ ॥

तं जहा- बे जीवा सुक्कलेस्सिया मिच्छादिट्ठी दव्वलिंगिणो एक्कत्तीससागरोवमिएसु देवेसु उववण्णा। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदा (१) विस्संता (२) विसुद्धा (३) सम्मत्तं पडिवण्णा। तत्थेगो मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो (४) अवरो सम्मत्तेण। अवसाणे

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवाले नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है। तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३०९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१० ॥

जैसे- शुक्ललेश्यावाले मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दो देव अन्य गुणस्थानको जाकर जघन्य कालसे विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त हुए। इस प्रकार अन्तर्मुहूर्त काल प्रमाण अन्तर लब्ध होगया।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागरोपम है ॥ ३११ ॥

जैसे- शुक्ललेश्यावाले दो मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी जीव इकतीस सागरोपमकी स्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुए। वहां पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यक्त्वको प्राप्त हुए। उनमेंसे एक मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको

---

१ शुक्ललेश्येषु मिथ्यादृष्ट्यसंयतसम्यग्दृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणैकत्रिंशत्सागरोपमाणि देशोनानि। स. सि. १, ८.

सजदासजद-पमत्तसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेग-जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ ३१५ ॥

कुदो ? णाणाजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, एगजीवस्स लेस्सद्धादो गुणद्धाए बहुत्तुवदेसादो ।

अप्पमत्तसजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३१६ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३१७ ॥

तं जहा– एक्को अप्पमत्तो सुक्कलेस्साए अच्छिदो उवसमसेढिं पडिदूणंतरिय सव्वजहण्णकालेण पडिणियत्तिय अप्पमत्तो जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्समंतोमुहुत्तं ॥ ३१८ ॥

शुक्ललेश्यावाले संयतासंयत और प्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१५ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानवर्ती नाना जीवोंके प्रवाहका कभी व्युच्छेद नहीं होता है। तथा एक जीवकी अपेक्षा भी अन्तर नहीं है, क्योंकि, लेश्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत होता है, ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शुक्ललेश्यावाले अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३१६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१७ ॥

जैसे– शुक्ललेश्यामें विद्यमान कोई एक अप्रमत्तसंयत उपशमश्रेणीपर चढ़कर अन्तरको प्राप्त हो सर्वजघन्य कालसे लौटकर अप्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर प्राप्त होगया।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३१८ ॥

१ संयतासंयतप्रमत्तसंयतयोरन्तराभावात् । स. सि. १, ८

२ अप्रमत्तसंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

३ एकजीवं प्रति जघन्यमुत्कृष्टं चान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८

एदस्स जहण्णभंगो। णवरि सव्वचिरेण कालेण उवसमसेढीदो ओदिण्णस्स वत्तव्वं।

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३१९ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२० ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२१ ॥

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३२२ ॥

एदेसिं दोण्हं सुत्ताणमत्थे भण्णमाणे खिप्प-चिरकालेहि उवसमसेढिं चडिय ओदिण्णाणं जहण्णुक्कस्सकाला वत्तव्वा।

इसका अन्तर भी जघन्य अन्तरप्ररूपणाके समान है। विशेषता यह है कि सर्वदीर्घकालात्मक अन्तर्मुहूर्त द्वारा उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए।

शुक्ललेश्यावाले अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानवर्ती तीनों उपशामक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय अन्तर है ॥ ३१९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

शुक्ललेश्यावाले तीनों उपशामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२१ ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३२२ ॥

इन दोनों सूत्रोंका अर्थ कहने पर क्षिप्र (लघु) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके जघन्य अन्तर कहना चाहिए और चिर (दीर्घ) कालसे उपशमश्रेणी पर चढ़कर उतरे हुए जीवोंके उत्कृष्ट अन्तर कहना चाहिए।

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३२३ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३२४ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३२५ ॥

उवसंतादो उवरि उवसंतकमाएण पडिवज्जमाणगुणट्ठाणाभावा, हेट्ठा आदिण्णस्स वि लेस्संतरमसंकमिदूण पुणो उवसंतगुणग्गहणाभावा ।

चदुण्हं खवगा ओघं ॥ ३२६ ॥

शुक्ललेश्यावाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३२३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२५ ॥

क्योंकि, उपशान्तकषाय गुणस्थानसे ऊपर उपशान्तकषायी जीवके द्वारा प्राप्तव्य गुणस्थानका अभाव है, तथा नीचे उतरे हुए जीवके भी अन्य लेश्याके संक्रमणके विना पुनः उपशान्तकषाय गुणस्थानका ग्रहण हो नहीं सकता है ।

विशेषार्थ—उपशान्तकषायगुणस्थानके अन्तरका अभाव बतानेका कारण यह है कि ग्यारहवें गुणस्थानसे ऊपर तो यह चढ़ नहीं सकता है, क्योंकि, वहांपर क्षपकोंका ही गमन होता है । और यदि नीचे उतरकर पुनः उपशमश्रेणीपर चढ़े तो नीचेके गुणस्थानोंमें शुक्ललेश्याके पीत पद्मादि लेश्याका परिवर्तन हो जायगा । क्योंकि वहांपर एक लेश्याके कालसे गुणस्थानका काल बहुत बताया गया है ।

शुक्ललेश्यावाले चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३२६ ॥

१ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.   ३ [illegible]

४ चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनामयोगानां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली ओघ ॥ ३२७ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं लेस्सामग्गणा[1] समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[2] ॥ ३२८ ॥

कुदो ? भव्यपयारेण ओघपरूवणादो भेदाभावा ।

अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ ३२९ ॥

कुदो ? अभव्वपवाहवोच्छेदाभावा ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३० ॥

कुदो ? गुणंतरसंकंतीए तत्थाभावा ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

शुक्ललेश्यावाले सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३२७ ॥

ये दोनों सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली तक प्रत्येक गुणस्थानवर्ती भव्य जीवोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

क्योंकि, सब प्रकार ओघप्ररूपणासे भव्यमार्गणाकी अन्तरप्ररूपणामें कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, अभव्य जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है ।

अभव्य जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३० ॥

क्योंकि, अभव्योंमें अन्य गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ प्रतिषु 'लस्समग्गणा' इति पाठः ।

२ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ अभव्यानां नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

जधा ओधिणाणमग्गणाए संजदासंजदादीणमंतरपरूवणा कदा, तधा कादव्वा, णत्थि एत्थ कोइ विसेसो ।

चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं ॥ ३३५ ॥

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३३६ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३३७ ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३३८ ॥

तं जहा– एक्को असंजदसम्मादिट्ठी अण्णगुणं गंतूण सव्वजहण्णकालेण असंजदसम्मादिट्ठी जादो । लद्धमंतरं ।

उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं ॥ ३३९ ॥

जिस प्रकारसे अवधिज्ञानमार्गणामें संयतासंयत आदिकोंके अन्तरकी प्ररूपणा की है, उसी प्रकार यहां पर भी करना चाहिए, क्योंकि, उससे यहां पर कोई विशेषता नहीं है ।

सम्यग्दृष्टि चारों क्षपक और अयोगिकेवलियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३५ ॥

सम्यग्दृष्टि सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३३६ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३३७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३३८ ॥

जैसे– एक असंयतसम्यग्दृष्टि जीव अन्य (संयतासंयतादि) गुणस्थानको जाकर सर्वजघन्य कालसे पुनः असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटी वर्ष है ॥ ३३९ ॥

---

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८. ३ उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८.

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववज्जिय गब्भादिअट्ठवस्सिओ जादो । दंसणमोहणीयं खविय खइयसम्मादिट्ठी जादो (१)। अंतोमुहुत्तमच्छिदूण (२) संजमासंजमं संजमं वा पडिवज्जिय पुव्वकोडिं गमिय कालं गदो देवो जादो। अट्ठवस्सेहि बि-अंतोमुहुत्तेहि य ऊणिया पुव्वकोडी अंतरं ।

संजदासंजद-पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[1] ॥ १४० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[2] ॥ १४१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[3] ॥ १४२ ॥

तं जहा– एक्को पुव्वकोडाउगेसु मणुसेसु उववण्णो । गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि अंतोमुहुत्तेण (१) खइयं पट्ठविय (२) विस्समिय (३) संजमासंजमं पडिवज्जिय (४)

जैसे– एक जीव पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न होकर गर्भसे लेकर आठ वर्षका हुआ और दर्शनमोहनीयका क्षय करके क्षायिकसम्यग्दृष्टि होगया (१)। वहां अन्तर्मुहूर्त रह करके (२) संयमासंयम या संयमको प्राप्त होकर और पूर्वकोटी वर्ष बिताकर मरणको प्राप्त हो देव हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और दो अन्तर्मुहूर्तोंसे कम पूर्वकोटी वर्ष असंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टिका उत्कृष्ट अन्तर है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और प्रमत्तसंयत जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ १४० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ १४१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ १४२ ॥

जैसे– एक जीव पूर्वकोटि वर्षकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। गर्भको आदि लेकर आठ वर्षोंके पश्चात् अन्तर्मुहूर्तसे (१) क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापन कर (२) विश्राम ले (३) संयमासंयमको प्राप्त कर (४) संयमको प्राप्त हुआ। संयमसहित

१ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

२ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेण त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाणि सातिरेकाणि । स. सि. १, ८. [illegible]

संजम पडिवण्णो। पुव्वकोडिं गमिय मदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु उव
वण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो। थोवावसेसे जीविए संजमासंज
गदो (५)। तदो अप्पमत्तादिणवहि अंतोमुहुत्तेहि सिद्धो जादो। अट्ठवस्सेहि चाद्द
अंतोमुहुत्तेहि य ऊणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि तेत्तीस सागरोवमाणि उक्कस्सत
संजदासंजदस्स।

पमत्तस्स उच्चदे- एक्को पमत्तो अप्पमत्तो (१) अपुव्वो (२) अणियट्टी
(३) सुहुमो (४) उवसंतो (५) पुणो वि सुहुमो (६) अणियट्टी (७) अपुव्वो
(८) अप्पमत्तो (९) अद्धाखएण कालं गदो। समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिए
देवेसु उववण्णो। तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो। अंतोमुहुत्तावसेसे जीवि
पमत्तो जादो। लद्धमंतरं (१)। तदो अप्पमत्तो (२)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अंतरस्स
बाहिरा[1] अट्ठ अंतोमुहुत्ता, अंतरस्स अब्भंतरिमा वि णव, तेणेगंतोमुहुत्तब्भहियपुव्वकोडी
सादिरेयाणि तेत्तीस सागरोवमाणि उक्कस्संतरं।

पूर्वकोटीकाल बिताकर मरा और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले
देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। जीवि
नके अल्प अवशेष रह जाने पर संयमासंयमको प्राप्त हुआ (५)। इसके पश्चा
अप्रमत्तादि गुणस्थानसम्बन्धी नौ अन्तर्मुहूर्तोंसे (श्रेण्यारोहण करता हुआ) सि
होगया। इस प्रकार आठ वर्ष और चौदह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम दो पूर्वकोटियोंसे साधि
तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं- एक क्षायिकसम्यग्दृ
प्रमत्तसंयत जीव अप्रमत्तसंयत (१) अपूर्वकरण (२) अनिवृत्तिकरण (३) सूक्ष्मसाम्प
राय (४) उपशान्तकषाय (५) पुनः सूक्ष्मसाम्पराय (६) अनिवृत्तिकरण (७) अपू
करण (८) अप्रमत्तसंयत (९) होकर (गुणस्थान और आयुके) कालक्षयसे मरणको
प्राप्त हो एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। पुन
वहांसे च्युत होकर पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। वहां जीवनके अन्तर्मुहू
अवशेष रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया (१)। पश्चा
अप्रमत्तसंयत हुआ (२)। इसमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। अन्तरके बाहरी
आठ अन्तर्मुहूर्त हैं और अन्तरके भीतरी नौ अन्तर्मुहूर्त हैं, इसलिए नौमेंसे आठके घटा
देने पर शेष बचे हुए एक अन्तर्मुहूर्तसे अधिक पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपम
क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

---

१ [illegible]

अधवा अंतरस्सब्भंतराओ दो अप्पमत्तद्धाओ, तासिं बाहिरिया एक्का पमत्तद्धा
द्धा। अंतरब्भंतराओ छ उवसामगद्धाओ, तासिं बाहिरियाओ तिण्णि खवगद्धाओ
द्धाओ। अंतरब्भंतरिमाए उवसंतद्धाए एक्किस्से खवगद्धाए अद्धं सुद्धं। अवसेसा
द्धा अंतोमुहुत्ता। तेहि ऊणियाए पुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि
मत्तस्सुक्कस्संतरं।

अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को अप्पमत्तो खइयसम्मादिट्ठी अपुव्वो (१) अणियट्टी
२) सुहुमो (३) उवसंतो (४) पुणो वि सुहुमो (५) अणियट्टी (६) अपुव्वो
दूण (७) काल गदो समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववण्णो। तदो चुदो
व्वकोडाउएसु मणुसेसु उववण्णो, अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे अप्पमत्तो जादो। लद्धमंतर
१)। तदो पमत्तो (२) पुणो अप्पमत्तो (३)। उवरि छ अंतोमुहुत्ता। अंतरस्स
ब्भंतरिमाओ छ उवसामगद्धाओ बाहिरिल्लियासु तिसु खवगद्धासु सुद्धाओ। अब्भ

अथवा, अन्तरके आभ्यन्तरी दो अप्रमत्तकाल हैं और उनके बाहरी एक प्रमत्त
ाल शुद्ध है। (अतएव घटाने पर शून्य शेष रहा, क्योंकि, अप्रमत्तसंयतके कालसे
मत्तसंयतका काल दूना होता है।) तथा अन्तरके भीतरी छह उपशामककाल हैं, और
नके बाहरी तीन क्षपककाल शुद्ध हैं। (अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा, क्योंकि
पशामकश्रेणीके कालसे क्षपकश्रेणीका काल दुगुना होता है।) अन्तरके भीतरी उपशामक
ालमेंसे एक क्षपककालके आधा घटाने पर क्षपककालका आधा शेष रहता है। इस
कार सब मिलाकर साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्त अवशेष रहे। उन साढ़े तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम
पूर्वकोटिसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट
न्तर होता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक अप्रमत्तसंयत
ायिकसम्यग्दृष्टि जीव अपूर्वकरण (१) अनिवृत्तिकरण (२) सूक्ष्मसाम्पराय (३)
पशान्तकषाय (४) होकर पुनरपि सूक्ष्मसाम्पराय (५) अनिवृत्तिकरण (६) अपूर्व
रण (७) होकर मरणको प्राप्त हुआ और एक समय कम तेतीस सागरोपमकी
ायुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। वहांसे च्युत हो पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें
त्पन्न हुआ और संसारके अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर अप्रमत्तसंयत हुआ। इस
कार अन्तर लब्ध हो गया (१)। पश्चात् प्रमत्तसंयत (२) पुनः अप्रमत्तसंयत (३)
ुआ। इनमें ऊपरके छह अन्तर्मुहूर्त और मिलाये। अन्तरके आभ्यन्तरी छह उपशामक
ाल हैं और बाहरी तीन क्षपककाल हैं अतएव घटा देने पर शेष कुछ नहीं रहा।

१ प्रतिषु 'छद्द' इति पाठ।

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं सम्मादिट्ठिभंगो ॥ ३४९ ॥

सम्मत्तमग्गणाए ओघम्हि जधा असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं परूविदं तधा एत्थ वि परूविदव्वं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३५० ॥

सुगममेदं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५१ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण छावट्ठि सागरोवमाणि देसूणाणि ॥ ३५२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर सम्यग्दृष्टिसामान्यके समान है ॥ ३४९ ॥

जिस प्रकारसे सम्यक्त्वमार्गणाके ओघमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंका अन्तर कहा है, उसी प्रकारसे यहां पर भी कहना चाहिए ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३५० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम छ्यासठ सागरोपम है ॥ ३५२ ॥

---

१ क्षायोपशमिकसम्यग्दृष्टिष्वसंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण पूर्वकोटी देशोना । स. सि. १, ८

२ संयतासंयतस्य नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८

४ उत्कर्षेण षट्षष्टिसागरोपमाणि देशोनानि । स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५४ ॥

एदं पि सुगमं ।

उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1] ॥ ३५५ ॥

तं जहा- एक्को पमत्तो अप्पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय तेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिएसु देवेसुववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसुववण्णो । अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । तदो पट्ठविय खवगसेडीपाओग्गअप्पमत्तो होदूण (२) खवगसेडिमारूढो अपुव्वादि छहि अंतोमुहुत्तेहि णिव्वुदो । अंतरस्स आदिल्लमक्कमंतोमुहुत्तं अंतरबाहिरेसु अट्ठअंतोमुहुत्तेसु सोहिदे अवसेसा सत्त अंतोमुहुत्ता । एदेहि ऊणपुव्वकोडीए सादिरेयाणि तेत्तीसं सागरोवमाणि पमत्तसंजदुक्कस्संतरं ।

अप्पमत्तस्स उच्चदे- एक्को अप्पमत्तो पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय (१) समऊणतेत्तीससागरोवमाउट्ठिदिदेवेसु उववण्णो । तदो चुदो पुव्वकोडाउएसु मणुसेसु उव-

---

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागरोपम है ॥ ३५५ ॥

जैसे- एक प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ । संसारके अन्तर्मुहूर्तप्रमाण अवशिष्ट रह जाने पर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । पुनः क्षायिकसम्यक्त्वको प्रस्थापितकर क्षपकश्रेणीके योग्य अप्रमत्तसंयत हो (२) क्षपकश्रेणीपर चढ़ा और अपूर्वकरणादि छह अन्तर्मुहूर्तोंसे निर्वाणको प्राप्त हुआ । अन्तरके आदिका एक अन्तर्मुहूर्तको अन्तरसे बाहिरी आठ अन्तर्मुहूर्तोंमेंसे कम कर देने पर अवशिष्ट सात अन्तर्मुहूर्त रहते हैं, इनसे कम पूर्वकोटीसे साधिक तेतीस सागरोपमकाल प्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर है ।

अप्रमत्तसंयतका अन्तर कहते हैं- एक अप्रमत्तसंयत जीव प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर (१) एक समय कम तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ । वहांसे च्युत हो पूर्वकोटीकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ ।

---

१ [illegible]

२ [illegible]

संजमासंजमं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्तेण पुणो असंजदो जादो । लद्धं जहण्णंतरं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३५९ ॥

तं जहा– एक्को सेडीदो ओदरिय असंजदो जादो । तत्थ अंतोमुहुत्तमच्छिय संजमासंजमं पडिवण्णो । तदो अप्पमत्तो पमत्तो होदूण असंजदो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३६० ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण चोद्दस रादिंदियाणि[2] ॥ ३६१ ॥

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३६२ ॥

तं जहा– एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय संजमासंजमं पडिवण्णो । अंतोमुहुत्त

रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । अन्तर्मुहूर्तसे पुनः असंयत होगया । इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३५९ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर असंयतसम्यग्दृष्टि हुआ । वहां अन्तर्मुहूर्त रहकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ । पश्चात् अप्रमत्त और प्रमत्तसंयत होकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६० ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर चौदह रात दिन है ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६२ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयमासंयमको प्राप्त हुआ और अन्त-

---

१ देशविरतस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण चतुर्दश रात्रिंदिनानि । स. सि. १, ८

३ एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

मच्छिय असंजदो जादो। पुणो वि अंतोमुहुत्तेण संजमासंजमं पडिवण्णो। लद्धं जहण्णंतरं।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६३ ॥

तं जहा– एक्को सेडीदो ओदरिय संजदासंजदो जादो। अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्पमत्तो पमत्तो असंजदो च होदूण संजदासंजदो जादो। लद्धमुक्कस्संतरं।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[1] ॥ ३६४ ॥

सुगममेदं।

उक्कस्सेण पण्णारस रादिंदियाणि[2] ॥ ३६५ ॥

एदं पि सुगमं।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[3] ॥ ३६६ ॥

तं जहा– एक्को उवसमसेडीदो ओदरिय पमत्तो होदूण अंतोमुहुत्तमच्छिय अप्प-

---

मुहूर्त रहकर असंयतसम्यग्दृष्टि होगया। फिर भी अन्तर्मुहूर्तसे संयमासंयमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार जघन्य अन्तर लब्ध हुआ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६३ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर संयतासंयत हुआ। अन्तर्मुहूर्त रहकर अप्रमत्तसंयत, प्रमत्तसंयत और असंयतसम्यग्दृष्टि होकर संयतासंयत होगया। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३६४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पन्द्रह रात दिन है ॥ ३६५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६६ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत हो अन्तर्मुहूर्त रहकर

---

१ प्रमत्ताप्रमत्तसंयतयोर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण पञ्चदश रात्रिंदिनानि। स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्यमन्तर्मुहूर्तः। स. सि. १, ८.

मत्तो जादो । पुणो वि पमत्तत्तं गदो । लद्धमंतरं । एवं चेव अप्पमत्तस्स वि जहण्णंतरं वत्तव्वं ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३६७ ॥

तं जहा– एक्को उवसमसेढीदो ओदरिय पमत्तो होदूण पुणो संजदासंजदो असंजदो अप्पमत्तो च होदूण पमत्तो जादो । लद्धमंतरं । अप्पमत्तस्स उच्चदे– एक्को सेडीदो ओदरिय अप्पमत्तो जादो । पुणो पमत्तो असंजदो संजदासंजदो च होदूण भूओ अप्पमत्तो जादो । लद्धमुक्कस्संतरं ।

तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ॥ ३६८ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं[१] ॥ ३६९ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयत हुआ । फिर भी प्रमत्त गुणस्थानको प्राप्त हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । इसी प्रकारसे उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका भी जघन्य अन्तर कहना चाहिए ।

उपशमसम्यग्दृष्टि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३६७ ॥

जैसे– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर प्रमत्तसंयत होकर पुनः संयतासंयत, असंयत और अप्रमत्तसंयत होकर प्रमत्तसंयत हुआ । इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ । उपशमसम्यग्दृष्टि अप्रमत्तसंयतका उत्कृष्ट अन्तर कहते हैं– एक संयत उपशमश्रेणीसे उतरकर अप्रमत्तसंयत हुआ । पुनः प्रमत्तसंयत, असंयत और संयतासंयत होकर फिर भी अप्रमत्तसंयत होगया । इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तर लब्ध हुआ ।

उपशमसम्यग्दृष्टि अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण और सूक्ष्मसाम्पराय, इन तीनों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय अन्तर है ॥ ३६८ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३६९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

---

१ त्रयाणामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

२ उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३७० ॥

तं जहा— उवसमसेढिं चढिय अदिं करिय पुणो उवरिं गन्तूण आदरिय अप्पिद-गुणं पडिवण्णस्स अंतोमुहुत्तमंतरं होदि ।

उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं[1] ॥ ३७१ ॥

एदस्स जहण्णभंगो । णवरि विसमा बिदियवारं चडमाणस्स जहण्णंतरं, पढमवारं चडिय ओदिण्णस्स उक्कस्संतरं वत्तव्वं ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं[2] ॥ ३७२ ॥

उक्कस्सेण वासपुधत्तं ॥ ३७३ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[3] ॥ ३७४ ॥

उक्त तीनों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७० ॥

जैसे— उपशमश्रेणीपर चढ़कर आदि करके फिर भी ऊपर जाकर और उतरकर विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जघन्य अन्तर होता है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३७१ ॥

इस उत्कृष्ट अन्तरकी प्ररूपणा भी जघन्य अन्तरकी प्ररूपणाके समान जानना चाहिए । किन्तु विशेषता यह है कि उपशमश्रेणीपर द्वितीय वार चढ़नेवाले जीवके जघन्य अन्तर होता है और प्रथम वार चढ़कर उतरे हुए जीवके उत्कृष्ट अन्तर होता है, ऐसा कहना चाहिए ।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य अन्तर एक समय है ॥ ३७२ ॥

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है ॥ ३७३ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७४ ॥

१ एकजीवं प्रति जघन्यमन्तर्मुहूर्तः । स. सि. १, ८.

२ उपशान्तकषायस्य नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८.

हेट्ठिमगुणट्ठाणेसु अंतराविय सव्वजहण्णेण कालेण पुणो उवसंतकसायभावं गदस्स जहण्णंतरं किण्ण उच्चदे ? ण, हेट्ठा ओदिण्णस्स वेदगसम्मत्तमपडिवज्जिय पुव्वुवसम्मत्तेणुवसमसेढीसमारुहणे संभवाभावादो । तं पि कुदो ? उवसमसेढीसमारुहणजोग्गकालादो सेसुवसमसम्मत्तद्धाए थोवत्तुवलंभादो । तं पि कुदो णव्वदे ? उवसंतकसायएगजीवस्संतराभावण्णहाणुववत्तीदो ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एयसमयं ॥ ३७५ ॥

सुगममेदं ।

उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ॥ ३७६ ॥

एदं पि सुगमं ।

शंका—नीचेके गुणस्थानमें अन्तरको प्राप्त कराकर सर्वजघन्य कालसे पुनः उपशान्तकषायताको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर क्यों नहीं कहते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमश्रेणीसे नीचे उतरे हुए जीवके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुए विना पहलेवाले उपशमसम्यक्त्वके द्वारा पुनः उपशमश्रेणीपर समारोहणकी सम्भावनाका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—क्योंकि, उपशमश्रेणीके समारोहणयोग्य कालसे शेष उपशमसम्यक्त्वका काल अल्प पाया जाता है।

शंका—यह भी कैसे जाना ?

समाधान—उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थके एक जीवके अन्तरका अभाव अन्यथा बन नहीं सकता, इससे जाना जाता है कि उपशान्तकषाय गुणस्थान एक जीवकी अपेक्षा अन्तर रहित है।

सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्यसे एक समय अन्तर है ॥ ३७५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर पल्योपमका असंख्यातवां भाग है ॥ ३७६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

---

१ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः । स. सि. १, ८

२ उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः । स. सि. १, ८

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७७ ॥

गुणंतरसंकंतीए अभावादो।

मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३७८ ॥

कुदो? णाणाजीवपवाहस्स वोच्छेदाभावा, गुणंतरसंकंतीए अभावादो।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ ३७९ ॥

कुदो? णाणाजीवं पडुच्च अंतराभावेण, एगजीवं पडुच्च अंतोमुहुत्त-देसूणबेछावट्ठिसागरोवममेत्तजहण्णुक्कस्संतरेहि य साधम्मुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था त्ति पुरिसवेदभंगो ॥ ३८० ॥

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७७ ॥

क्योंकि, इन जीवोंके गुणस्थानका परिवर्तन असम्भव है।

मिथ्यादृष्टि जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३७८ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है। तथा एक जीवका अन्य गुणस्थानोंमें संक्रमण भी नहीं होता है।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई।

संज्ञीमार्गणाके अनुवादसे संज्ञी जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३७९ ॥

क्योंकि, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम दो छयासठ सागरोपमप्रमाण अन्तरोंकी अपेक्षा ओघसे समानता पाई जाती है।

सासादनसम्यग्दृष्टिसे लेकर उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ तक संज्ञी जीवोंका अन्तर पुरुषवेदियोंके अन्तरके समान है ॥ ३८० ॥

१ एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

२ [illegible] नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

३ [illegible] स. सि. १, ८.

४ सासादनसम्यग्दृष्ट्यादीनां [illegible]

कुदो ? सागरोवमसदपुधत्तट्ठिदिं पडि दोण्हं साधम्मुवलंभा। णवरि असण्णिट्ठिदिमच्छिय सण्णीसुप्पण्णस्स उक्कस्सट्ठिदी वत्तव्वा।

चदुण्हं खवाणमोघं[1] ॥ ३८१ ॥

सुगममेदं।

असण्णीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं[2] ॥ ३८२ ॥

कुदो ? असण्णिपवाहस्स वोच्छेदाभावा।

एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८३ ॥

कुदो ? गुणसंकंतीए अभावादो।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता।

क्योंकि, सागरोपमशतपृथक्त्वस्थितिकी अपेक्षा दोनोंके अन्तरोंमें समानता पाई जाती है। विशेषता यह है कि असंज्ञी जीवोंकी स्थितिमें रहकर संज्ञी जीवोंमें उत्पन्न हुए जीवके उत्कृष्ट स्थिति कहना चाहिए।

संज्ञी चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

असंज्ञी जीवोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८२ ॥

क्योंकि, असंज्ञी जीवोंके प्रवाहका कभी विच्छेद नहीं होता है।

असंज्ञी जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८३ ॥

क्योंकि, असंज्ञियोंमें गुणस्थानके परिवर्तनका अभाव है।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई।

सख्येयभागान्तर्मुहूर्तश्च । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । चतुर्णामुपशमकानां नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । एकजीवं प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्तः । उत्कर्षेण सागरोपमशतपृथक्त्वम् । स. सि. १, ८

१ चतुर्णां क्षपकाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ असंज्ञिनां नानाजीवापेक्षयैकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम् । स. सि. १, ८

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठीणमोघं ॥ ३८४ ॥[1]

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ॥ ३८५ ॥[2]

एदं पि सुगमं ।

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ॥ ३८६ ॥[3]

एदं पि अवगयत्थं ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जासंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३८७ ॥[4]

तं जहा– एक्को सासणद्धाए दो समया अत्थि त्ति काल गदो । एगविग्गह

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारक जीवोंमें मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३८४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका अन्तर कितने काल होता है ? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३८५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर क्रमशः पल्योपमका असंख्यातवां भाग और अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८६ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंका उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्याता-संख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल है ॥ ३८७ ॥

जैसे– एक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सासादनगुणस्थानके कालमें दो समय

---

१ आहारानुवादेन आहारकेषु मिथ्यादृष्टेः सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ सासादनसम्यग्दृष्टिसम्यङ्मिथ्यादृष्ट्योर्नानाजीवापेक्षया सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ एकजीवं प्रति जघन्येन पल्योपमासंख्येयभागोऽन्तर्मुहूर्तश्च । स. सि. १, ८.

४ उत्कर्षेणाङ्गुलासंख्येयभागा असंख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्यः । स. सि. १, ८.

काऊण विदियसमए आहारी होदूण तदियसमए मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे आहारकाले उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो। एगसमयावसेसे आहारकाले सासणं गंतूण विग्गहं गदो। एदेहि ऊणो आहारकस्सकालो सासणुक्कस्संतरं।

एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं काऊण देवेसुववण्णो। छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (४)। मिच्छत्तं गंतूणंतरिदो। अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णो (५)। लद्धमंतरं। तदो सम्मत्तेण वा मिच्छत्तेण वा अंतोमुहुत्तमच्छिदूण (६) विग्गहं गदो। छहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो सम्मामिच्छादिट्ठिस्स उक्कस्संतरं।

असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ॥ ३८८॥

सुगममेदं।

अवशिष्ट रहने पर मरणको प्राप्त हुआ। पुनः विग्रह (मोड़ा) करके द्वितीय समयमें आहारक होकर और तीसरे समयमें मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ। असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणियों और उत्सर्पिणियों तक परिभ्रमणकर आहारककालमें अन्तर्मुहूर्त अवशिष्ट रह जाने पर उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। पुनः आहारककालके एक समयमात्र अवशिष्ट रहने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ। इस प्रकार दो समयोंसे कम आहारकका उत्कृष्ट काल ही आहारक सासादनसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (४) और मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ। अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिभ्रमण कर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध होगया। पीछे सम्यक्त्व अथवा मिथ्यात्वके साथ अन्तर्मुहूर्त रह कर (६) विग्रहगतिको प्राप्त हुआ। इस प्रकार छह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

असंयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान तक आहारक जीवोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर नहीं है, निरन्तर है ॥ ३८८॥

यह सूत्र सुगम है।

---

१ असंयतसम्यग्दृष्ट्याद्यप्रमत्तान्तानां नानाजीवापेक्षया नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ॥ ३८९ ॥

उदो ? गुणतर गतूण मव्वजहण्णकालेण पुणो अप्पिदगुणपडिवण्णस्स जह[illegible] तरुवलभा ।

उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो असंखेज्जाओ ओस[illegible] प्पिणि उस्सप्पिणीओ ॥ ३९० ॥

असंजदसम्मादिट्ठिस्स उच्चदे– एक्को अट्ठावीससंतकम्मिओ विग्गहं काऊण देवसुववण्णो । छहि पज्जत्तीहि पज्जत्तयदो (१) विस्संतो (२) विसुद्धो (३) वेदगसम्मत्तं पडिवण्णो (४)। मिच्छत्तं गतूणतरिदो अंगुलस्स असंखेज्जदिभागपरिभमिय अंते उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो (५)। लद्धमंतरं । उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए सासणं गतूण विग्गहं गदो । पचहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं ।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३८९ ॥

क्योंकि, विवक्षित गुणस्थानसे अन्य गुणस्थानको जाकर और सर्वजघन्य कालसे लौटकर पुन अपने विवक्षित गुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीवके जघन्य अन्तर पाया जाता है।

उक्त असंयतादि चार गुणस्थानवर्ती आहारक जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातासंख्यात अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल है ॥ ३९० ॥

आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका अन्तर कहते हैं– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला [illegible] विग्रह करके देवोंमें उत्पन्न हुआ। छहों पर्याप्तियोंसे पर्याप्त हो (१) विश्राम ले (२) विशुद्ध हो (३) वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (४)। पीछे मिथ्यात्वको जाकर अन्तरको प्राप्त हुआ और अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ (५)। इस प्रकार अन्तर लब्ध हो गया। पुन उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलियां अवशेष रह जाने पर सासादनको जाकर विग्रहको प्राप्त हुआ। इस प्रकार पांच अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका उत्कृष्ट अन्तर होता है।

गदो। तिहि अंतोमुहुत्तेहि ऊणओ आहारकालो उक्कस्सतर।

चदुण्हमुवसामगाणमतर केवचिर कालादो होदि, णाणाजीव पडुच्च ओघभगो ॥ ३९१ ॥

सुगममेद, बहुसो उत्तचादो।

एगजीव पडुच्च जहण्णेण अतोमुहुत्त ॥ ३९२ ॥

एद पि सुगम।

उक्कस्सेण अगुलस्स असखेज्जदिभागो असखेज्जासखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ ॥ ३९३ ॥

त जहा– एक्को अट्ठावीससतकम्मिओ विग्गह कादूण मणुसेसुववण्णो। अट्ठ वस्सिओ सम्मत्त अप्पमत्तभावेण सजम च समग पडिवण्णो (१)। अणताणुबंधी विसजोए-दूण (२) दसणमोहणीयमुवसामिय (३) पमत्तापमत्तपरावत्तसहस्स कादूण (४) तदा अपुव्वो (५) अणियट्टी (६) सुहुमो (७) उवसतो (८) पुणो वि परिवडमाणगो

हुआ। इस प्रकार तीन अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारककाल ही आहारक अप्रमत्तसयतका उत्कृष्ट अन्तर है।

आहारक चारों उपशामकोंका अन्तर कितने काल होता है? नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर ओघके समान है ॥ ३९१ ॥

यह सूत्र सुगम है क्योंकि, इसका अर्थ पहले बहुत बार कहा जा चुका है।

उक्त जीवोंका एक जीवकी अपेक्षा जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ॥ ३९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

आहारक चारों उपशामकोंका एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट अन्तर अगुलके असख्यातवें भागप्रमाण असख्यातासख्यात उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी है ॥ ३९३ ॥

जैसे– मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला एक मिथ्यादृष्टि जीव विग्रह करके मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। आठ वर्षका होकर सम्यक्त्वको और अप्रमत्तभावके साथ सयमको एक साथ प्राप्त हुआ (१)। पुन अनन्तानुबन्धीका विसयोजन करके (२) दर्शनमोहका उपशमनकर (३) प्रमत्त और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी सहस्रों परिवर्तनोंको करके (४) पश्चात् अपूर्वकरण (५) अनिवृत्तिकरण (६) सूक्ष्मसाम्पराय (७) और उप

---

१ चदुण्हमुवसामगाण नानाजीवापेक्षया सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ एकजीव प्रति जघन्येनान्तर्मुहूर्त। स. सि. १, ८.

३ उत्कर्षेणाङ्गुलासख्येयभागा असख्येयासख्येया उत्सर्पिण्यवसर्पिण्य। स. सि. १, ८.

सुहुमो (९) अणियट्टी (१०) अपुव्वो जादो (११)। हेट्ठा ओदरिदूणंतरिय अंगुलस्स असंखेज्जदिभागं परिभमिय अंते अपुव्वो जादो। लद्धमंतरं। तदो णिद्दा-पयलाणं बंधे वोच्छिण्णे मरिय विग्गहं गदो। अट्ठवस्सेहि बारसअंतोमुहुत्तेहि य ऊणओ आहारकालो उक्कस्संतरं। एवं चेव तिण्हमुवसामगाणं। णवरि दस णव अट्ठ अंतोमुहुत्ता समयाहिया ऊणा कादव्वा।

चदुण्हं खवाणमोघं[1] ॥ ३९४ ॥

सुगममेदं।

सजोगिकेवली ओघं ॥ ३९५ ॥

एदं पि सुगमं।

अणाहारा[2] कम्मइयकायजोगिभंगो[3] ॥ ३९६ ॥

शान्तकषाय होकर (८) फिर भी गिरता हुआ सूक्ष्मसाम्पराय (९) अनिवृत्तिकरण (१०) और अपूर्वकरण हुआ (११)। पुनः नीचे उतरकर अन्तरको प्राप्त हो अंगुलके असंख्यातवें भाग कालप्रमाण परिभ्रमणकर अन्तमें अपूर्वकरण उपशामक हुआ। इस प्रकार अन्तर लब्ध हुआ। तत्पश्चात् निद्रा और प्रचला, इन दोनों प्रकृतियोंके बंधसे व्युच्छिन्न होनेपर मरकर विग्रहको प्राप्त हुआ। इस प्रकार आठ वर्ष और बारह अन्तर्मुहूर्तोंसे कम आहारक काल ही अपूर्वकरण उपशामकका उत्कृष्ट अन्तर है। इसी प्रकार शेष तीनों उपशामकोंका भी अन्तर कहना चाहिए। विशेषता यह है कि आहारककालमें अनिवृत्तिकरण उपशामकके दश, सूक्ष्मसाम्पराय उपशामकके नौ और उपशान्तकषाय उपशामकके आठ अन्तर्मुहूर्त और एक समय कम करना चाहिए।

आहारक चारों क्षपकोंका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

आहारक सयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९५ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

अनाहारक जीवोंका अन्तर कार्मणकाययोगियोंके समान है ॥ ३९६ ॥

---

१ चतुर्णां क्षपकाणां सयोगकेवलिनां च सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'अणाहार' इति पाठः।

३ अनाहारकेषु मिथ्यादृष्टेर्नानाजीवापेक्षया एकजीवापेक्षया च नास्त्यन्तरम्। सासादनसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण पल्योपमासंख्येयभागः। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। असंयतसम्यग्दृष्टेर्नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण मासपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। सयोगकेवलिनां नानाजीवापेक्षया जघन्येनैकः समयः। उत्कर्षेण वर्षपृथक्त्वम्। एकजीवं प्रति नास्त्यन्तरम्। स. सि. १, ८.

मिच्छादिट्ठीणं णाणेगजीवं पडुच्च अंतराभावेण, सासणसम्मादिट्ठीणं णाणाजी पडुच्च एगसमयपलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागजहण्णुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, असंजदसम्मादिट्ठीणं णाणाजीवं पडुच्च एगसमय-वासपुधत्तंतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य, सजोगिकेवलीणं णाणाजीवं पडुच्च एगसमय-वासपुधत्त-जहण्णुक्कस्संतरेहि य, एगजीवं पडुच्च अंतराभावेण य दोण्हं साधम्मुवलंभादो। विसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसा, अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ३९७ ॥

सुगममेदं।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता।)

एवमंतराणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं[2]।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टियोंका नाना और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट पल्योपमका असंख्यातवां भाग अन्तरोंसे, तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट मास-पृथक्त्व अन्तरोंके द्वारा, और एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे, सयोगिकेवलियोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य एक समय और उत्कृष्ट वर्षपृथक्त्व अन्तर तथा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अभाव होनेसे दोनोंमें समानता पाई जाती है।

अनाहारक जीवोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं–

किन्तु विशेषता यह है कि अनाहारक अयोगिकेवलीका अन्तर ओघके समान है ॥ ३९७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई।

इस प्रकार अन्तरानुगम अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।
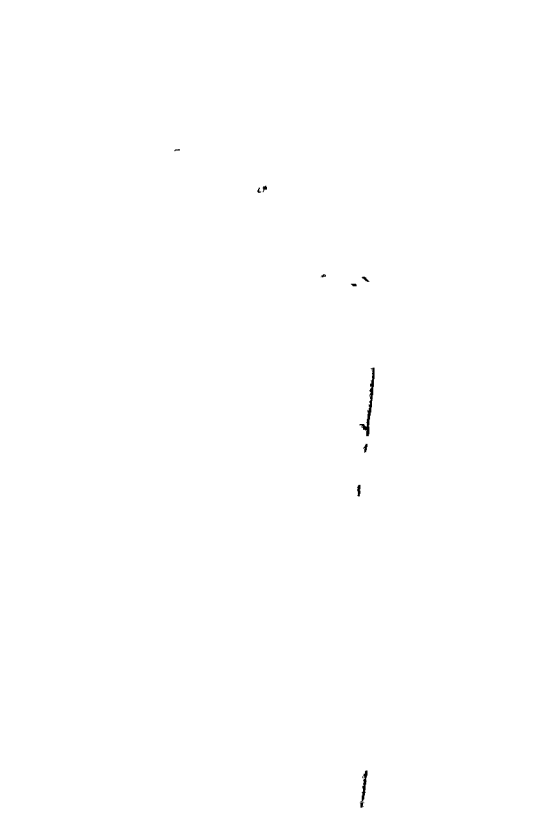
[1] [illegible]

[2] [illegible]

भावाणुगमो

सिरि भगवंत पुप्फदंत भूदबलि पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि वीरसेणाइरिय विरइय धवला टीका समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

भावाणुगमो

जरगयअसुद्धभावे उवगयकम्मक्खउब्भवउब्भावे ।
पणमिय सव्वरहंते भावणिओगं परूवेमो ॥

भावाणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य'॥ १ ॥

णाम-ट्ठवणा-दव्व भावो त्ति चउव्विहो भावो। भावसद्दो बज्झत्थणिरवक्खो अप्पाणम्हि चेव पयट्टो णामभावो होदि। तत्थ ठवणभावो सब्भावासब्भावभेएण दुविहो। विराग-सरागादिभावे अणुहरंती ठवणा सब्भावट्ठवणभावो। तव्विवरीदो असब्भावट्ठवण

अशुद्ध भावोंसे रहित, कर्मक्षयसे प्राप्त हुए हैं चार अनन्तभाव जिनको, ऐसे सब अरहंतोंको प्रणाम करके भावानुयोगद्वारका प्ररूपण करते हैं।

भावानुगमद्वारकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश निर्देश ॥ १ ॥

नाम स्थापना, द्रव्य और भावकी अपेक्षा भाव चार प्रकारका है। बाह्य अर्थसे निरपेक्ष अपने आपमें प्रवृत्त 'भाव' यह शब्द नामभावनिक्षेप है। उन चार निक्षेपोंमेंसे स्थापनाभावनिक्षेप, सद्भाव और असद्भावके भेदसे दो प्रकारका है। उनमेंसे विरागी और सरागी आदि भावोंका अनुकरण करनेवाली स्थापना सद्भावस्थापना भावनिक्षेप है। उससे विपरीत असद्भावस्थापना भावनिक्षेप है। द्रव्यभावनिक्षेप आगम और

१ भावो विभासदे। [illegible]

भावो। तत्थ दव्वभावो दुविहो आगम-णोआगमभेएण। भावपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो आगमदव्वभावो होदि। जो णोआगमदव्वभावो सो तिविहो जाणुगसरीर-भविय-तव्वदिरित्तभेएण। तत्थ णोआगमजाणुगसरीरदव्वभावो तिविहो भविय-वट्टमाण-समुज्झादभेएण। भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवस्स आहारो जं होसदि सरीरं तं भवियं णाम। भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवेण जमेगीभूदं सरीरं तं वट्टमाणं णाम। भावपाहुडपज्जायपरिणदजीवेण एगत्तमुवगमिय जं पुधभूदं सरीरं तं समुज्झादं णाम। भावपाहुडपज्जयसरूवेण जो जीवो परिणमिस्सदि सो णोआगमभवियदव्वभावो णाम। तव्वदिरित्तणोआगमदव्वभावो तिविहो सचित्ताचित्त-मिस्सभेएण। तत्थ सचित्तो जीवदव्वं। अचित्तो पोग्गल-धम्माधम्म-कालागासदव्वाणि। पोग्गल-जीवदव्वाणं संजोगो कधंचि जच्चंतरत्तमावण्णो णोआगममिस्सदव्वभावो णाम। कधं दव्वस्स भावव्ववएसो? ण, भवनं भावः, भूतिर्वा भाव इति भावसद्दस्स विउप्पत्तिअवलंबणादो। जो भावभावो सो दुविहो आगम-णोआगमभेएण। भावपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगमभावभावो णाम। णोआगमभावभावो पंचविहो ओदइओ ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ चेदि। तत्थ कम्मोदय-

---

नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। भावप्राभृतज्ञायक किन्तु वर्तमानमें अनुपयुक्त जीव आगमद्रव्यभाव कहलाता है। जो नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप है वह ज्ञायकशरीर, भव्य और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकार होता है। उनमें नोआगमज्ञायकशरीर द्रव्यभाव निक्षेप भव्य, वर्तमान और समुज्झितके भेदसे तीन प्रकारका है। भावप्राभृतपर्यायसे परिणत जीवका जो शरीर आधार होगा, वह भव्यशरीर है। भावप्राभृतपर्यायसे परिणत जीवके साथ जो एकीभूत शरीर है, वह वर्तमानशरीर है। भावप्राभृतपर्यायसे परिणत जीवके साथ एकत्वको प्राप्त होकर जो पृथक् हुआ शरीर है वह समुज्झितशरीर है। भावप्राभृतपर्यायस्वरूपसे जो जीव परिणत होगा, वह नोआगमभव्यद्रव्य भावनिक्षेप है। तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्य भावनिक्षेप, सचित्त, अचित्त और मिश्रके भेदसे तीन प्रकारका है। उनमें जीवद्रव्य सचित्तभाव है। पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, काल और आकाश द्रव्य अचित्तभाव हैं। कथंचित् जात्यन्तर भावको प्राप्त पुद्गल और जीव द्रव्योंका संयोग नोआगममिश्रद्रव्य भावनिक्षेप है।

शंका—द्रव्यके 'भाव' ऐसा व्यपदेश कैसे हो सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'भवनं भावः' अथवा 'भूतिर्वा भावः' इस प्रकार भावशब्दकी व्युत्पत्तिके अवलम्बनसे द्रव्यके भी 'भाव' ऐसा व्यपदेश बन जाता है।

जो भावनामक भावनिक्षेप है, वह आगम और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। भाव प्राभृतका ज्ञायक और उपयुक्त जीव आगमभावनामक भावनिक्षेप है। नोआगम भाव भावनिक्षेप औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे

जणिदो भावो ओदइओ णाम। कम्मुवसमेण समुब्भूदो ओवसमिओ णाम। कम्माणं खएण पयडीभूदजीवभावो खइओ णाम। कम्मोदए संते वि जं जीवगुणक्खंडमुवलब्भदि सो खओवसमिओ भावो णाम। जो चउहि भावेहि पुव्वुत्तेहि वदिरित्तो जीवाजीवगओ सो पारिणामिओ णाम[१] (५)।

एदेसु चदुसु भावेसु केण भावेण अहियारो? णोआगमभावभावेण। तं कधं णव्वदे? णामादितिभावेहि चोद्दसजीवसमासाणमणप्पभूदेहि इह पओजणाभावा। तिण्णि चेव इह णिक्खेवा होतु, णाम-ट्ठवणाणं विसेसाभावादो? ण, णामस्स दव्वज्झारोवणियमाभावादो, णामस्स ट्ठवणणियमाभावा, ट्ठवणाए इव आयराणुग्गहाणम

पांच प्रकारका है। उनमेंसे कर्मोदयजनित भावका नाम औदयिक है। कर्मोंके उपशमसे उत्पन्न हुए भावका नाम औपशमिक है। कर्मोंके क्षयसे प्रकट होनेवाले जीवके भाव क्षायिक है। कर्मोंके उदय होते हुए भी जो जीवगुणका खंड (अंश) उपलब्ध रहता है, वह क्षायोपशमिकभाव है। जो पूर्वोक्त चारों भावोंसे व्यतिरिक्त जीव और अजीवगत भाव है, वह पारिणामिक भाव है।

शंका—उक्त चार निक्षेपरूप भावोंमेंसे यहां पर किस भावसे अधिकार या प्रयोजन है?

समाधान—यहां नोआगमभावभावसे अधिकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—चौदह जीवसमासोंके लिए अनात्मभूत नामादि तीन भावनिक्षेपोंसे यहां पर कोई प्रयोजन नहीं है, इसलिए जाना जाता है कि यहां नोआगमभाव भाव निक्षेपसे ही प्रयोजन है।

शंका—यहां पर तीन ही निक्षेप होना चाहिए, क्योंकि, नाम और स्थापनामें कोई विशेषता नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, नामनिक्षेपमें नामवाले द्रव्यके अध्यारोपका कोई नियम नहीं है इसलिए, तथा नामवाली वस्तुकी स्थापना होनी ही चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं है इसलिए, एवं स्थापनाके समान नामनिक्षेपमें आदर और अनुग्रहकी आ

१ [illegible] ।

२ [illegible]

३ [illegible] ।

भावादो च[1] । भणिदं च—

> अप्पिदआदरभावो अणुग्गहभावो य धम्मभावो ।
> ठवणाए कीरंते ण होंति णामम्मि एए दु ॥ १ ॥
> णामिणि धम्मुवयारो णामं ठवणा य जस्स तं ठविदं ।
> तद्धम्मे ण वि जादो सुणाम ठवणाणमविसेसं ॥ २ ॥

तम्हा चउव्विहो चेव णिक्खेवो त्ति सिद्धं । तत्थ पंचसु भावेसु केण भावेण इह पओजणं ? पंचहि वि । कुदो ? जीवेसु पंचभावाणमुवलंभा । ण च सेसदव्वेसु पंच भावा अत्थि, पोग्गलदव्वेसु ओदइय-पारिणामियाणं दोण्हं चेव भावाणमुवलंभा, धम्माधम्म-कालागासदव्वेसु एक्कस्स पारिणामियभावस्सेवुवलंभा । भावो णाम जीवपरिणामो तिव्व-मंदणिज्जराभावादिरूवेण अणेयपयारो । तत्थ तिव्व-मंदभावो णाम—

> सम्मत्तुप्पत्तीय वि सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
> दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते ॥ ३ ॥
> खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा ।
> तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेढीए[2] ॥ ४ ॥

अभाव है, इसलिए दोनों निक्षेपोंमें भेद है ही । कहा भी है—

विवक्षित वस्तुके प्रति आदरभाव, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें किया जाता है । किन्तु ये बातें नामनिक्षेपमें नहीं होती हैं ॥ १ ॥

नाममें धर्मका उपचार करना नामनिक्षेप है, और जहां उस धर्मकी स्थापना की जाती है, वह स्थापनानिक्षेप है । इस प्रकार धर्मके विषयमें भी नाम और स्थापनाकी अविशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं होती ॥ २ ॥

इसलिए निक्षेप चार प्रकारका ही है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—पूर्वोक्त पांच भावोंमेंसे यहां किस भावसे प्रयोजन है ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन है, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हैं । किन्तु शेष द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें औदयिक और पारिणामिक, इन दोनों ही भावोंकी उपलब्धि होती है, और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है ।

शंका—भावनाम जीवके परिणामका है, जो कि तीव्र, मंद निर्जराभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका है । उनमें तीव्र मंदभाव नाम है—

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, विरतमें, अनन्तानुबन्धी कषायके विसंयोजनमें, दर्शनमोहके क्षपणमें, कषायोंके उपशामकोंमें, उपशान्तकषायमें, क्षपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जिन भगवान्में नियमसे असंख्यातगुणी निर्जरा होती है । किन्तु कालका प्रमाण उक्त गुणश्रेणी निर्जरामें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर हीन है ॥ ३-४ ॥

---

१ नामस्थापनयोरेकत्वं, संज्ञाकर्माविशेषादिति चेन्न, आदरानुग्रहाकांक्षित्वात् स्थापनायाम् । त. रा. वा. १, ५.
२ गो. जी. ६६-६७

एदेसिं सुसुद्धिपरिणामाणं पगरिसापगरिसत्तं तिव्व-मंदभावो णाम । एदेहि चेव परिणामेहि असंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मसडणं कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा णिज्जरा भावो णाम । तम्हा पंचेव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जदे ? ण एस दोसो, जदि जीवादिदव्वादो तिव्व-मंदादिभावा अभिण्णा होंति, तो ण तेसिं पंचभावेसु अंतब्भावो, दव्वत्तादो । अह भेदो अवलंबिज्जइ, पंचण्हमण्णदरो होज्ज, एदेहिंतो पुधभूदछट्ठभावाणुवलंभा । भणिदं च-

> ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य ।
> परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोग्गलाणं तु ॥ ५ ॥

भावो णाम किं ? दव्वपरिणामो पुव्वावरकोडिववदिरित्तवट्टमाणपरिणामुवलक्खियदव्वं वा । कस्स भावो ? छण्हं दव्वाणं । अधवा ण कस्सइ, परिणामि-परिणामाणं

इन सूत्रोंदिह परिणामोंकी प्रकर्षताका नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षताका नाम मंदभाव है। इन्हीं परिणामोंके द्वारा असंख्यात गुणश्रेणीरूपसे कर्मोंका झरना, अथवा कर्म-झरनेसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामोंको निर्जराभाव कहते हैं। इसलिए पांच ही जीवके भाव हैं, यह नियम युक्तिसंगत नहीं है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मंद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पांच भावोंमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वयं द्रव्य हो जाते हैं। अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पांचों भावोंमेंसे कोई एक होगा, क्योंकि, इन पांच भावोंसे पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है। कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारिणामिकभाव, ये पांच भाव होते हैं। इनमें पुद्गलोंके उदयसे (औदयिकभाव) होता है ॥ ५ ॥

(अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे भावस्वरूप पदार्थका निर्णय किया जाता है—)

शंका—भाव नाम किस वस्तुका है ?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वापर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं।

शंका—भाव किसके होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है ?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोंके स्वामी छहों द्रव्य हैं। अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, परिणामी और परिणामके समह-

भावादो च[1]। भणिदं च—

अप्पिदआदरभावो अणुग्गहभावो य धम्मभावो ।
ठवणाए कीरंते ण होंति णामम्मि एए दु ॥ १ ॥
णामिणि धम्मुवयारो णाम ट्ठवणा य जस्स तं ठविदं ।
तद्धम्मे ण वि जादो सुणाम ठवणाणमविसेस ॥ २ ॥

तम्हा चउव्विहो चेव णिक्खेवो त्ति सिद्धं । तत्थ पंचसु भावेसु केण भावेण इह पओजणं ? पंचहिं वि । कुदो ? जीवेसु पंचभावाणमुवलंभा । ण च सेसदव्वेसु पंच भावा अत्थि, पोग्गलदव्वेसु ओदइय-पारिणामियाणं दोण्हं चेव भावाणमुवलंभा, धम्माधम्म-कालागासदव्वेसु एक्कस्स पारिणामियभावस्सेवुवलंभा । भावो णाम जीवपरिणामो तिव्व-मंदणिज्जराभावादिरूवेण अणेयपयारो । तत्थ तिव्व-मंदभावो णाम—

सम्मत्तुप्पत्तीय वि सावयविरदे अणंतकम्मंसे ।
दंसणमोहक्खवए कसायउवसामए य उवसंते ॥ ३ ॥
खवए य खीणमोहे जिणे य णियमा भवे असंखेज्जा ।
तव्विवरीदो कालो संखेज्जगुणाए सेडीए[2] ॥ ४ ॥

अभाव है, इसलिए दोनों निक्षेपोंमें भेद है ही । कहा भी है—

विवक्षित वस्तुके प्रति आदरभाव, अनुग्रहभाव और धर्मभाव स्थापनामें किया जाता है । किन्तु ये बातें नामनिक्षेपमें नहीं होती हैं ॥ १ ॥

नाममें धर्मका उपचार करना नामनिक्षेप है, और जहां उस धर्मकी स्थापना की जाती है, वह स्थापनानिक्षेप है । इस प्रकार धर्मके विषयमें भी नाम और स्थापनाकी अविशेषता अर्थात् एकता सिद्ध नहीं होती ॥ २ ॥

इसलिए निक्षेप चार प्रकारका ही है, यह बात सिद्ध हुई ।

शंका—पूर्वोक्त पांच भावोंमेंसे यहां किस भावसे प्रयोजन है ?

समाधान—पांचों ही भावोंसे प्रयोजन है, क्योंकि, जीवोंमें पांचों भाव पाये जाते हैं । किन्तु शेष द्रव्योंमें तो पांच भाव नहीं हैं, क्योंकि, पुद्गल द्रव्योंमें औदयिक और पारिणामिक, इन दोनों ही भावोंकी उपलब्धि होती है, और धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय, आकाश और काल द्रव्योंमें केवल एक पारिणामिक भाव ही पाया जाता है ।

भाव नाम जीवके परिणामका है, जो कि तीव्र, मंद निर्जराभाव आदिके रूपसे अनेक प्रकारका है । उनमें तीव्र मंदभाव नाम है—

सम्यक्त्वकी उत्पत्तिमें, श्रावकमें, विरतमें, अनन्तानुबन्धी कषायके विसंयोजनमें, दर्शनमोहके क्षपणमें, कषायोंके उपशामकोंमें, उपशान्तकषायमें, क्षपकोंमें, क्षीणमोहमें, और जिन भगवान्‌में नियमसे असंख्यातगुणी निर्जरा होती है । किन्तु कालका प्रमाण उक्त गुणश्रेणी निर्जरामें संख्यात गुणश्रेणी क्रमसे विपरीत अर्थात् उत्तरोत्तर हीन है ॥ ३-४ ॥

१ नामस्थापनयोरेकत्व संज्ञाकर्माविशेषादिति चेन्न, आदरानुग्रहाकांक्षित्वात् स्थापनायाम् । त. रा. वा. १, ५.
२ गो. जी. ६६-६७

एदेहि सुसुद्दिट्ठपरिणामाण पयरिसापयरिसत्त तिव्व मदभावो णाम । एदेहि चेव परिणामहि असंखज्जगुणाए सेडीए कम्मसडण कम्मसडणजणिदजीवपरिणामो वा णिज्जरा भावो णाम । तम्हा पचेव जीवभावा इदि णियमो ण जुज्जदे ? ण एस दोसो, जदि जीवादिदव्वादो तिव्व-मदादिभावा अभिण्णा होंति, तो ण तेसिं पचभावेसु अतब्भावो, दव्वत्तादो । अह भेदो अवलबेज्ज, पचण्हमण्णदरो होज्ज, एदेहिंतो पुधभूदछट्ठभावाणु वलभा । भणिद च–

ओदइओ उवसमिओ खइओ तह वि य खओवसमिओ य ।
परिणामिओ दु भावो उदएण दु पोग्गलाण तु ॥ ५ ॥

भावो णाम किं ? दव्वपरिणामो पुव्वावरकोडिववदिरित्तवट्टमाणपरिणामुवलक्खियं दव्व वा । कस्स भावा ? छण्ह दव्वाण । अधवा ण कस्सइ, परिणामि परिणामाण

इन सूत्रादिष्ट परिणामोंकी प्रकर्षताका नाम तीव्रभाव और अप्रकर्षताका नाम मदभाव है । यहीं परिणामोंके द्वारा असख्यात गुणश्रेणारूपसे कर्मोंका झरना, अथवा कर्म-झरनसे उत्पन्न हुए जीवके परिणामोंको निर्जराभाव कहते है । इसलिए पाच ही जीवके भाव हैं, यह नियम युक्तिसगत नहीं है ?

समाधान—यह कोइ दोप नहीं, क्योंकि, यदि जीवादि द्रव्यसे तीव्र, मद आदि भाव अभिन्न होते हैं, तो उनका पाच भावोंमें अन्तर्भाव नहीं होता है, क्योंकि, वे स्वय द्रव्य हो जाते है । अथवा, यदि भेद माना जाय, तो पाचों भावोंमेंसे कोइ एक होगा, क्योंकि, इन पाच भावोंसे पृथग्भूत छठा भाव नहीं पाया जाता है । कहा भी है—

औदयिकभाव, औपशमिकभाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिकभाव और पारि णामिकभाव, ये पाच भाव होते है । इनमें पुद्गलोंके उदयसे (औदयिकभाव) होता हैं ॥ ५ ॥

(अब निर्देश, स्वामित्व आदि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे भावनामक पदार्थका निर्णय किया जाता है—)

शका—भाव नाम किस वस्तुका है ?

समाधान—द्रव्यके परिणामको अथवा पूर्वापर कोटिसे व्यतिरिक्त वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको भाव कहते हैं ।

शका —भाव किसके होता है, अर्थात् भावका स्वामी कौन है ?

समाधान—छहों द्रव्योंके भाव होता है, अर्थात् भावोंके स्वामी छहों द्रव्य हैं । अथवा, किसी भी द्रव्यके भाव नहीं होता है, क्योंकि, पारिणामी और पारिणामके समह-

संगहणयादो भेदाभावा। केण भावो? कम्माणमुदएण खएण खओवसमेण कम्माणमुवसमेण सभावदो वा। तत्थ जीवदव्वस्स भावा उत्तपंचकारणेहिंतो होंति। पोग्गलदव्वभावा पुण कम्मोदएण विस्ससादो वा उप्पज्जंति। सेसाणं चदुण्हं दव्वाणं भावा सहावदो उप्पज्जंति। कत्थ भावो? दव्वम्हि चेव, गुणिव्वदिरेगेण गुणाणमसंभवा। केवचिरं भावो? अणादिओ अपज्जवसिदो जहा- अभव्वाणमसिद्धदा, धम्मत्थियस्स गमणहेदुत्तं, अधम्मत्थियस्स ठिदिहेउत्तं, आगासस्स ओगाहणलक्खणत्तं, कालदव्वस्स परिणामहेदुत्तमिच्चादि। अणादिओ सपज्जवसिदो जहा- भव्वस्स असिद्धदा भव्वत्त मिच्छत्तमसंजमो इच्चादि। सादिओ अपज्जवसिदो जहा- केवलणाणं केवलदंसणमिच्चादि। सादिओ सपज्जवसिदो जहा- सम्मत्तसंजमपच्छायदाणं मिच्छत्तासंजमा इच्चादि। कदिविधो भावो? ओदइओ उवसमिओ खइओ खओवसमिओ पारिणामिओ त्ति पंचविहो। तत्थ जो सो ओदइओ जीवभावो

नयसे कोई भेद नहीं है।

शंका—भाव किससे होता है, अर्थात् भावका साधन क्या है?

समाधान—भाव, कर्मोंके उदयसे, क्षयसे, क्षयोपशमसे, कर्मोंके उपशमसे, अथवा स्वभावसे होता है। उनमेंसे जीवद्रव्यके भाव उक्त पांचों ही कारणोंसे होते हैं, किन्तु पुद्गलद्रव्यके भाव कर्मोंके उदयसे, अथवा स्वभावसे उत्पन्न होते हैं। तथा शेष चार द्रव्योंके भाव स्वभावसे ही उत्पन्न होते हैं।

शंका—भाव कहां पर होता है, अर्थात् भावका अधिकरण क्या है?

समाधान—भाव द्रव्यमें ही होता है, क्योंकि गुणीके बिना गुणोंका रहना असम्भव है।

शंका—भाव कितने काल तक होता है?

समाधान—भाव अनादि-निधन है। जैसे- अभव्यजीवोंके असिद्धता, धर्मास्तिकायके गमनहेतुता, अधर्मास्तिकायके स्थितिहेतुता, आकाशद्रव्यके अवगाहनस्वरूपता, और कालद्रव्यके परिणमनहेतुता, इत्यादि। अनादि-सान्तभाव, जैसे- भव्यजीवके असिद्धता, भव्यत्व, मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि। सादि-अनन्तभाव, जैसे- केवलज्ञान, केवलदर्शन, इत्यादि। सादि-सान्त भाव, जैसे- सम्यक्त्व और संयम धारणकर पीछे आए हुए जीवोंके मिथ्यात्व, असंयम इत्यादि।

शंका—भाव कितने प्रकारका होता है?

समाधान—औदयिक, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिकके भेदसे भाव पांच प्रकारका है। उनमेंसे जो औदयिकभाव नामक जीवद्रव्यका भाव

---

१ औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च। त. सू. २, १.

सो ठाणदो अट्ठविहो, वियप्पदो एक्कवीसविहो। किं ठाणं? उप्पत्तिहेऊ ठाणं। उत्त

गदि लिंग कसाया वि य मिच्छादंसणमसिद्धदण्णाणं।
लेस्सा असंजमो चिय होंति उदयस्स ठाणाइं ॥ ६ ॥

संपहि एदेसिं वियप्पा उच्चदे— गई चउव्विहा णिरय-तिरिय-णर-देवगई चे
लिंगमिदि तिविहं इत्थी पुरिस णउंसयं चेदि। कसाओ चउव्विहो कोहो माणो माया ला
चेदि। मिच्छादंसणमेयविहं। असिद्धत्तमेयविहं। किमसिद्धत्तं? अट्ठकम्मोदयसामण्ण
अण्णाणमेयविहं। लेस्सा छव्विहा। असंजमो एयविहो। एदे सव्वे वि एक्कवीस वियप्पा
होंति (२१)। पंचजादि-छसंठाण-छसंघडणादि-ओदइया भावा कत्थ णिवदंति? गदीए,
एदेसिमुदयस्स गदिउदयाविणाभावित्तादो। ण लिंगादीहि वियहिचारो, तत्थ तहाविह
विवक्खाभावादो।

वह स्थानकी अपेक्षा आठ प्रकारका और विकल्पकी अपेक्षा इक्कीस प्रकारका है।

शंका—स्थान क्या वस्तु है?

समाधान—भावकी उत्पत्तिके कारणको स्थान कहते हैं। कहा भी है—

गति, लिंग, कषाय, मिथ्यादर्शन, असिद्धत्व, अज्ञान, लेश्या और असंयम ये औदयिक भावके आठ स्थान होते हैं ॥ ६ ॥

अब इन आठ स्थानोंके विकल्प कहते हैं। गति चार प्रकारकी है— नरकगति, तिर्यंचगति, मनुष्यगति और देवगति। लिंग तीन प्रकारका है— स्त्रीलिंग, पुरुषलिंग और नपुंसकलिंग। कषाय चार प्रकारका है— क्रोध मान माया और लोभ। मिथ्यादर्शन एक प्रकारका है। असिद्धत्व एक प्रकारका है।

शंका—असिद्धत्व क्या वस्तु है?

समाधान—अष्ट कर्मोंके सामान्य उदयको असिद्धत्व कहते हैं।

अज्ञान एक प्रकारका है। लेश्या छह प्रकारकी है। असंयम एक प्रकारका है। इस प्रकार ये सब मिलकर औदयिकभावके इक्कीस विकल्प होते हैं (२१)।

शंका—पांच जातियां, छह संस्थान, छह संहनन आदि औदयिकभाव कहां अर्थात् किस भावमें अन्तर्गत होते हैं?

समाधान—उन जातियों आदिका गतिनामक औदयिकभावमें अन्तर्भाव होता है, क्योंकि इन जाति संस्थान आदिका उदय गतिनामकर्मके उदयका अविनाभावी है। इसी प्रकार लिंग कषाय आदि औदयिकभावोंसे भी व्यभिचार नहीं आता है, क्योंकि उन भावोंमें उस प्रकारकी विवक्षाका अभाव है।

१ [illegible]

उवसमिओ भावो ठाणदो दुविहो। वियप्पदो अट्ठविहो। भणिदं च–

सम्मत्त चारित्ते दो चेय ट्ठाणाइमुवसमे होंति।
अट्ठवियप्पा य तहा कोहाइया मुणेदव्वा ॥ ७ ॥

ओवसमियस्स भावस्स सम्मत्त चारित्ते चेदि दोण्णि ट्ठाणाणि। कुदो? उवसमसम्मत्त उवसमचारित्तमिदि दोण्हं चेव उवलंभा। उवसमसम्मत्तमेयविहं। ओवसमियचारित्तं सत्तविहं। तं जहा– णउंसयवेदुवसामणद्धाए एयं चारित्तं, इत्थिवेदुवसामणद्धाए विदियं, पुरिस-छण्णोकसायउवसामणद्धाए तदियं, कोहुवसामणद्धाए चउत्थं, माणुवसामणद्धाए पंचमं, मायोवसामणद्धाए छट्ठं, लोहुवसामणद्धाए सत्तममोवसमियचारित्तं। भिण्णकज्जलिंगेण कारणभेदसिद्धीदो उवसमियचारित्तं सत्तविहं उत्तं। अण्णहा पुण अणेयपयारं, समयं पडि उवसमसेडिम्हि पुध पुध असंखेज्जगुणसेडिणिज्जराणिमित्त-परिणामुवलंभा। खइओ भावो ठाणदो पंचविहो। वियप्पादो णवविहो। भणिदं च–

औपशमिकभावस्थानकी अपेक्षा दो प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा आठ प्रकारका है। कहा भी है–

औपशमिकभावमें सम्यक्त्व और चारित्र ये दो ही स्थान होते हैं। तथा औपशमिकभावके विकल्प आठ होते हैं, जो कि क्रोधादि कषायोंके उपशमनरूप जानना चाहिए ॥ ७ ॥

औपशमिकभावके सम्यक्त्व और चारित्र, ये दो ही स्थान होते हैं, क्योंकि, औपशमिकसम्यक्त्व और औपशमिकचारित्र ये दो ही भाव पाये जाते हैं। इनमेंसे औपशमिकसम्यक्त्व एक प्रकारका है और औपशमिकचारित्र सात प्रकारका है। जैसे– नपुंसकवेदके उपशमनकालमें एक चारित्र, स्त्रीवेदके उपशमनकालमें दूसरा चारित्र, पुरुषवेद और छह नोकषायोंके उपशमनकालमें तीसरा चारित्र, क्रोधसंज्वलनके उपशमनकालमें चौथा चारित्र, मानसंज्वलनके उपशमनकालमें पांचवां चारित्र, मायासंज्वलनके उपशमनकालमें छठा चारित्र और लोभसंज्वलनके उपशमनकालमें सातवां औपशमिक चारित्र होता है। भिन्न भिन्न कार्योंके लिंगसे कारणोंमें भी भेदकी सिद्धि होती है, इसलिए औपशमिकचारित्र सात प्रकारका कहा है। अन्यथा, अर्थात् उक्त प्रकारकी विवक्षा न की जाय तो, वह अनेक प्रकारका है, क्योंकि, प्रति समय उपशमश्रेणीमें पृथक् पृथक् असंख्यात गुणश्रेणी निर्जराके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

क्षायिकभाव स्थानकी अपेक्षा पांच प्रकारका है, और विकल्पकी अपेक्षा नौ प्रकारका है। कहा भी है–

---

१ सम्यक्त्वचारित्रे। त. सू. २, ३.

लद्धीओ सम्मत्तं चारित्तं दंसणं तहा णाणं ।
ठाणाइं पंच खइए भावे जिणभासियाइं तु ॥ ८ ॥

लद्धी सम्मत्तं चारित्तं णाणं दंसणमिदि पंच ट्ठाणाणि । तत्थ लद्धी पंच वियप्पा दाण-लाह-भोगुवभोग-वीरियमिदि । सम्मत्तमेयवियप्पं । चारित्तमेयवियप्पं । केवलणाणमेयवियप्पं । केवलदंसणमेयवियप्पं । एवं खइओ भावो णववियप्पो[1] । खओवसमिओ भावो ट्ठाणदो सत्तविहो । वियप्पदो अट्ठारसविहो । भणिदं च—

णाणण्णाणं च तहा दंसण-लद्धी तहेव सम्मत्तं ।
चारित्तं देसजमो सत्त य होंति ठाणाइं ॥ ९ ॥

णाणमण्णाणं दंसणं लद्धी सम्मत्तं चारित्तं संजमासंजमो चेदि सत्त ट्ठाणाणि । तत्थ णाणं चउव्विहं मदि सुद ओधि मणपज्जवणाणमिदि । केवलणाणं किण्ण गहिदं ? ण, तस्स खाइयभावादो । अण्णाणं तिविहं मदि-सुद विहंगअण्णाणमिदि । दंसणं तिविहं चक्खु अचक्खु ओधिदंसणमिदि । केवलदंसणं ण गहिदं । कुदो ? अप्पणा खाइयस्सस्स

दानादि लब्धियां, क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक चारित्र, क्षायिक दर्शन, तथा क्षायिक ज्ञान, इस प्रकार क्षायिक भावमें जिन भाषित पांच स्थान होते हैं ॥ ८ ॥

लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र, ज्ञान, दर्शन, ये पांच स्थान क्षायिकभावमें होते हैं । उनमें लब्धि पांच प्रकारकी हैं– क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, और क्षायिक वीर्य । क्षायिक सम्यक्त्व एक विकल्पात्मक है । क्षायिक चारित्र एक भेदरूप है । केवलज्ञान एक विकल्पात्मक है और केवलदर्शन एक विकल्परूप है । इस प्रकारसे क्षायिक भावके नौ भेद हैं । क्षायोपशमिकभाव स्थानकी अपेक्षा सात प्रकार और विकल्पकी अपेक्षा अठारह प्रकारका है । कहा भी है—

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और देशसंयम, ये सात स्थान क्षायोपशमिक भावमें होते हैं ॥ ९ ॥

ज्ञान, अज्ञान, दर्शन, लब्धि, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम ये सात स्थान क्षायोपशमिकभावके हैं । उनमें मति, श्रुत, अवधि और मनःपर्ययके भेदसे ज्ञान चार प्रकारका है ।

शंका—यहांपर ज्ञानोंमें केवलज्ञानका ग्रहण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वह क्षायिक भाव है ।

कुमति, कुश्रुत और विभंगके भेदसे अज्ञान तीन प्रकारका है । चक्षु, अचक्षु और अवधिके भेदसे दर्शन तीन प्रकारका है । यहांपर दर्शनोंमें केवलदर्शनका ग्रहण नहीं

१ [illegible]

खएण समुब्भवादो। लद्धी पंचविहा दाणादिभेएण। सम्मत्तमेयविहं वेदगसम्मत्तवदिरित्त-अण्णसम्मत्ताणमणुवलंभा। चारित्तमेयविहं, सामाइयछेदोवट्ठावण परिहारसुद्धिसंजम-विवक्खाभावा। संजमासंजमो एयविहो। एवमेदे सव्वे वि वियप्पा अट्ठारस होंति[१] (१८)। पारिणामिओ तिविहो भव्वाभव्व-जीवत्तमिदि[२]। उत्तं च–

एए ठाणं तिण्णि वियप्पा तह पारिणामिए होंति।
भव्वाभव्वा जीवा अत्तवणदो[३] चेव बोद्धव्वा[४] ॥ १० ॥

एदेसिं पुव्वुत्तभावावियप्पाणं संगहगाहा–

इगिवीस अट्ठ तह णव अट्ठारस तिण्णि चेव बोद्धव्वा।
ओदइयादी भावा वियप्पदो आणुपुव्वीए[५] ॥ ११ ॥

किया गया है, क्योंकि, वह अपने विरोधी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है। दानादिकके भेदसे लब्धि पांच प्रकारकी है। सम्यक्त्व एक प्रकारका है, क्योंकि, इस भावमें वेदकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्वोंका अभाव है। चारित्र एक विकल्परूप ही है, क्योंकि, यहांपर सामायिक, छेदोपस्थापना और परिहारविशुद्धिसंयमकी विवक्षाका अभाव है। संयमासंयम एक भेदरूप है। इस प्रकार मिलकर ये सब विकल्प अठारह होते हैं (१८)। पारिणामिकभाव, भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे तीन प्रकारका है। कहा भी है–

पारिणामिकभावमें स्थान एक तथा भव्य, अभव्य और जीवत्वके भेदसे विकल्प तीन प्रकारके होते हैं। ये विकल्प आत्माके असाधारण भाव होनेसे ग्रहण किये गये जानना चाहिए ॥ १० ॥

इन पूर्वोक्त भावोंके विकल्पोंको बतलानेवाली यह संग्रह गाथा है–

औदयिक आदि भाव विकल्पोंकी अपेक्षा आनुपूर्वीसे इक्कीस, आठ, नौ, अठारह और तीन भेदवाले हैं, ऐसा जानना चाहिए ॥ ११ ॥

१ [illegible] । त सू. २, ५
२ [illegible] । त सू. २, ७
३ [illegible]
४ [illegible] । त सि. २, ७ [illegible]
[illegible]
[illegible] । त सू. २, ७
५ [illegible] । त सू. २, २

ओघेण मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो[1] ॥ २ ॥

'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति जाणावणट्ठमोघेणेत्ति भणिदं। अत्थाभिहाण-पच्चया तुल्लणामधेया इदि णायादो इदि-करणपरो मिच्छादिट्ठिणिद्देसो मिच्छत्तभावं भणदि। पंचसु भावेसु एसो को भावो त्ति पुच्छिदे ओदइओ भावो त्ति तित्थयरवयणादो दिव्वज्झुणी विणिग्गया। को भावो, पंचसु भावेसु कदमो भावो त्ति भणिदं होदि। उदए भवो ओदइओ, मिच्छत्तकम्मस्स उदएण उप्पण्णमिच्छत्तपरिणामो कम्मोदयजणिदो त्ति ओदइओ। णणु मिच्छादिट्ठिस्स अण्णे वि भावा अत्थि, णाण-दंसण-गदि-लिंग-कसाय-भव्वाभव्वादिभावाभावे जीवस्स संसारिणो अभावप्पसंगा। भणिदं च—

मिच्छत्ते दस भंगा आसादण-मिस्सए वि बोद्धव्वा।
तिगुणा ते चदुहीणा अविरदसम्मस्स एमेव ॥ १३ ॥
देसे खओवसमिए विरदे खवगाण ऊणवीसं तु।
ओसामगेसु पुध पुध पणतीसं भावदो भंगा ॥ १४ ॥

ओघनिर्देशकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है? औदयिक भाव है ॥ २ ॥

'जैसा उद्देश होता है उसी प्रकार निर्देश होता है' इस न्यायके ज्ञापनार्थ सूत्रमें 'ओघ' ऐसा पद कहा। अर्थ, अभिधान (शब्द) और प्रत्यय (ज्ञान) तुल्य नामवाले होते हैं, इस न्यायसे 'इति' करणपरक अर्थात् जिसके पश्चात् हेतुवाचक इति शब्द आया है, ऐसा 'मिथ्यादृष्टि' यह शब्द मिथ्यात्वके भावको कहता है। पांचों भावोंमें यह कौन भाव है? ऐसा पूछनेपर यह औदयिक भाव है, इस प्रकार तीर्थंकरके मुखसे दिव्यध्वनि निकली है। यह कौन भाव है, अर्थात् पांचों भावोंमें यह कौनसा भाव है, यह तात्पर्य होता है। उदयसे जो हो, उसे औदयिक कहते हैं। मिथ्यात्वकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेवाला मिथ्यात्वपरिणाम कर्मोदयजनित है, अतएव औदयिक है।

शंका—मिथ्यादृष्टिके अन्य भी भाव होते हैं, ज्ञान, दर्शन, गति, लिंग, कषाय, भव्यत्व, अभव्यत्व आदि भावोंके अभाव माननेपर संसारी जीवके अभावका प्रसंग प्राप्त होता है। कहा भी है—

मिथ्यात्वगुणस्थानमें उक्त भावोंसम्बन्धी दश भंग होते हैं। सासादन और मिश्र गुणस्थानमें भी इसी प्रकार दश दश भंग जानना चाहिए। अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें वे ही भंग त्रिगुणित और चतुर्हीन अर्थात् (१० × ३ − ४ = २६) छव्वीस होते हैं। इसी प्रकार ये छव्वीस भंग क्षायोपशमिक देशविरत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं। क्षपकश्रेणीवाले चारों क्षपकोंके उन्नीस उन्नीस भंग होते हैं।

---

१ सामान्येन तावत् मिथ्यादृष्टिरित्यौदयिको भावः। स. सि. १, ८. मिच्छे खलु ओदइओ। गो. जी. ११.

२ प्रतिषु 'इदि' इति पाठः।

उपशमश्रेणीवाले चारों उपशामकोंमें पृथक् पृथक् पैंतीस भंग भावकी अपेक्षा हो
हैं ॥ १३-१४ ॥

विशेषार्थ—ऊपर बतलाये गये भंगोंका स्पष्टीकरण इस प्रकार है- औदयिकादि
पांचों मूल भावोंमेंसे मिथ्यात्वगुणस्थानमें औदयिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक, ये
तीन भाव होते हैं। अतः असंयोगी या प्रत्येकसंयोगकी अपेक्षा ये तीन भंग हुए। इनके
द्विसंयोगी भंग भी तीन ही होते हैं- औदयिक क्षायोपशमिक, औदयिक पारिणामिक
और क्षायोपशमिक पारिणामिक। तीनों भावोंका संयोगरूप त्रिसंयोगी भंग एक ही होता
है। इन सात भंगोंके सिवाय स्वसंयोगी तीन भंग और होते हैं। जैसे- औदयिक औद
यिक, क्षायोपशमिक क्षायोपशमिक और पारिणामिक पारिणामिक। इस प्रकार ये सब
मिलाकर (३ + ३ + १ + ३ = १०) मिथ्यात्वगुणस्थानमें दश भंग होते हैं। ये ही
दश भंग सासादन और मिश्र गुणस्थानमें भी जानना चाहिए। असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानमें पांचों मूलभाव होते हैं इसलिए यहां प्रत्येकसंयोगी पांच भंग होते हैं। पांचों
भावोंके द्विसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे इस गुणस्थानमें औपशमिक और
क्षायिकभावका संयोगी भंग सम्भव नहीं, क्योंकि, वह उपशमश्रेणीमें ही सम्भव है।
अतः दशमेंसे एक घटा देने पर द्विसंयोगी भंग नौ ही पाये जाते हैं। पांचों भावोंके
त्रिसंयोगी भंग दश होते हैं। किन्तु उनमेंसे यहांपर क्षायिक औपशमिक औदयिक,
क्षायिक औपशमिक-पारिणामिक और क्षायिक औपशमिक क्षायोपशमिक, ये तीन भंग
सम्भव नहीं हैं, अतएव शेष सात ही भंग होते हैं। पांचों भावोंके चतुःसंयोगी पांच भंग
होते हैं। उनमेंसे यहांपर औदयिक क्षायोपशमिक क्षायिक-पारिणामिक, तथा औदयिक
क्षायोपशमिक औपशमिक पारिणामिक ये दो ही भंग सम्भव हैं, शेष तीन नहीं। इसका
कारण यह है कि यहांपर क्षायिक और औपशमिकभाव साथ साथ नहीं पाये जाते हैं।
इसी कारण पंचसंयोगी भंगका भी यहां अभाव है। इनके अतिरिक्त स्वसंयोगी भंगों
मेंसे क्षायोपशमिक क्षायोपशमिक, औदयिक औदयिक और पारिणामिक पारिणामिक ये
तीन भंग और भी होते हैं। औपशमिक और क्षायिकके स्वसंयोगी भंग यहां सम्भव नहीं
हैं। इस प्रकार प्रत्येकसंयोगी पांच, द्विसंयोगी नौ, त्रिसंयोगी सात, चतुःसंयोगी दो
और स्वसंयोगी तीन, ये सब मिलाकर (+ ९ + ७ + + =) असंयतसम्यग्दृष्टि
गुणस्थानमें छब्बीस भंग होते हैं। ये ही छब्बीस भंग संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्र
मत्तसंयत गुणस्थानमें भी होते हैं। अपूर्वकरणादि उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें औपशमिक
भावके बिना शेष चार भाव ही होते हैं। अतएव इनके प्रत्येकसंयोगी भंग चार
द्विसंयोगी भंग छह, त्रिसंयोगी भंग चार और चतुःसंयोगी भंग एक होता है। तथा
चारों भावोंके स्वसंयोगी चार भंग और भी होते हैं। इस प्रकार सब मिलाकर
(४ + + ४ + + =) उन्नीस भंग क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं।
उपशमश्रेणीसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंमें पांचों ही मूल भाव सम्भव हैं, क्योंकि, यहांपर
क्षायिकसम्यक्त्वके साथ औपशमिकचारित्र भी पाया जाता है। अतएव पांचों भावोंके
प्रत्येकसंयोगी पांच भंग, द्विसंयोगी दश भंग, त्रिसंयोगी दश भंग, चतुःसंयोगी पांच

तदो मिच्छादिट्ठिस्स ओदइओ चेव भावो अत्थि, अण्णे भावा णत्थि त्ति ण घडदे ? ण एस दोसो, मिच्छादिट्ठिस्स अण्णे भावा णत्थि त्ति सुत्ते पडिसेहाभावा। किंतु मिच्छत्तं मोत्तूण जे अण्णे गदि-लिंगादओ साधारणभावा ते मिच्छादिट्ठित्तस्स कारणं ण होंति। मिच्छत्तोदओ एक्को चेव मिच्छत्तस्स कारणं, तेण मिच्छादिट्ठि त्ति भावो ओदइओ त्ति परूविदो।

सासणसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ३॥

एत्थ चोदओ भणदि– भावो पारिणामिओ त्ति णेदं घडदे, अण्णेहिंतो अणुप्पण्णस्स परिणामस्स अत्थित्तविरोहा। अह अण्णेहिंतो उप्पत्ती इच्छिज्जदि, ण सो पारिणामिओ, णिक्कारणस्स सकारणत्तविरोहा इदि। परिहारो उच्चदे। तं जहा– जो कम्माणमुदय-उवसम-खइय-खओवसमेहि विणा अण्णेहिंतो उप्पण्णो परिणामो सो पारिणामिओ भण्णदि, ण णिक्कारणो कारणमंतरेणुप्पण्णपरिणामाभावा। सत्त-पमय-चादओ

भंग होते हैं और पंचसंयोगी एक भंग होता है। तथा स्वसंयोगी भंग चार ही होते हैं, क्योंकि यहांपर क्षायिकसम्यक्त्वके साथ क्षायिकभावका अन्य भेद संभव नहीं है। इस प्रकार सब मिलाकर (५ + १० + १० + ५ + १ + ४ = ३५) पैंतीस भंग उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें होते हैं।

इसलिए मिथ्यादृष्टि जीवके केवल एक औदयिक भाव ही होता है, और अन्य भाव नहीं होते हैं, यह कथन घटित नहीं होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, 'मिथ्यादृष्टिके औदयिक भावके अतिरिक्त अन्य भाव नहीं होते हैं', इस प्रकारका सूत्रमें प्रतिषेध नहीं किया गया है। किन्तु मिथ्यात्वको छोड़कर जो अन्य गति, लिंग आदिक साधारण भाव हैं, वे मिथ्यादृष्टित्वके कारण नहीं होते हैं। एक मिथ्यात्वका उदय ही मिथ्यादृष्टित्वका कारण है, इसलिए 'मिथ्यादृष्टि' यह भाव औदयिक कहा गया है।

सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ३॥

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि 'भाव पारिणामिक है' यह बात घटित नहीं होती है, क्योंकि दूसरोंसे नहीं उत्पन्न होनेवाले परिणामके अस्तित्वका विरोध है। यदि अन्यसे उत्पत्ति मानी जाय तो पारिणामिक नहीं रह सकता है, क्योंकि, निष्कारण वस्तुके सकारणत्वका विरोध है ?

समाधान—उक्त शंकाका परिहार कहते हैं। वह इस प्रकार है— जो कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमके विना अन्य कारणोंसे उत्पन्न हुआ परिणाम है, वह पारिणामिक कहा जाता है। न कि निष्कारण भावको पारिणामिक कहते हैं, क्योंकि,

१ [illegible]

भावा णिक्कारणा उवलब्भंतीदि चे ण, विसेससत्तादिसरूवेण अपरिणमंतसत्तादिसामण्णाणुवलंभा। सासणसम्मादिट्ठित्तं पि सम्मत्त-चारित्तुभयविरोहिअणंताणुबंधिचउक्कस्सुदयमंतरेण ण होदि त्ति ओदइयमिदि किण्णेच्छिज्जदि? सच्चमेदं, किंतु ण तहा अप्पणा अत्थि, आदिमचदुगुणट्ठाणभावपरूवणाए दंसणमोहवदिरित्तसेसकम्मेसु विवक्खाभावा[1]। तदो अप्पिदस्स दंसणमोहणीयस्स कम्मस्स उदएण उवसमेण खएण खओवसमेण वा ण होदि त्ति णिक्कारणं सासणसम्मत्तं, अदो चेव पारिणामियत्तं पि। अणेण णाएण सव्वभावाणं पारिणामियत्तं पसज्जदीदि चे होदु, ण कोइ दोसो, विरोहाभावा। अण्णभावेसु पारिणामियववहारो किण्ण कीरदे? ण, सासणसम्मत्तं मोत्तूण अप्पिदकम्मादो णुप्पण्णस्स अण्णस्स भावस्स अणुवलंभा।

कारणके विना उत्पन्न होनेवाले परिणामका अभाव है।

शंका—सत्त्व, प्रमेयत्व आदिक भाव कारणके विना भी उत्पन्न होनेवाले पाये जाते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, विशेष सत्त्व आदिके स्वरूपसे नहीं परिणत होनेवाले सत्त्वादि सामान्य नहीं पाये जाते हैं।

शंका—सासादनसम्यग्दृष्टिपना भी सम्यक्त्व और चारित्र, इन दोनोंके विरोधी अनन्तानुबंधी चतुष्कके उदयके विना नहीं होता है, इसलिए इसे औदयिक क्यों नहीं मानते हैं?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु उस प्रकारकी यहां विवक्षा नहीं है, क्योंकि, आदिके चार गुणस्थानोंसम्बन्धी भावोंकी प्ररूपणामें दर्शनमोहनीय कर्मके सिवाय शेष कर्मोंके उदयकी विवक्षाका अभाव है। इसलिए विवक्षित दर्शनमोहनीयकर्मके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे अथवा क्षयोपशमसे नहीं होता है, अतः यह सासादन सम्यक्त्व निष्कारण है और इसीलिए इसके पारिणामिकपना भी है।

शंका—इस न्यायके अनुसार तो सभी भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसंग प्राप्त होता है?

समाधान—यदि उक्त न्यायके अनुसार सभी भावोंके पारिणामिकपनेका प्रसंग आता है, तो आने दो, कोई दोष नहीं है, क्योंकि, इसमें कोई विरोध नहीं आता।

शंका—यदि ऐसा है, तो फिर अन्य भावोंमें पारिणामिकपनेका व्यवहार क्यों नहीं किया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सासादनसम्यक्त्वको छोड़कर विवक्षित कर्मसे नहीं उत्पन्न होनेवाला अन्य कोई भाव नहीं पाया जाता।

---

१ एदे भावा णियमा दंसणमोहं पडुच्च भणिदा हु। चारित्तं णत्थि जदो अविरद-अंतेसु ठाणेसु॥ गो. जी. ११

सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ४ ॥

पडिबंधिकम्मोदए संते वि जो उवलब्भइ जीवगुणावयवो सो खओवसमिओ उच्चइ। कुदो? सव्वघादणसत्तीए अभावो खओ उच्चदि। खओ चेव उवसमो खओवसमो, तम्हि जादो भावो खओवसमिओ। ण च सम्मामिच्छत्तुदए संते सम्मत्तस्स कणिया वि उव्वरदि, सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादित्तण्णहाणुववत्तीदो। तदो सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि ण घडदे? एत्थ परिहारो उच्चदे– सम्मामिच्छत्तुदए संते सद्दहणासद्दहणप्पओ करंचिओ जीवपरिणामो उप्पज्जइ। तत्थ जो सद्दहणंसो सो सम्मत्तावयवो। तं सम्मामिच्छत्तुदओ ण विणासेदि त्ति सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं। असद्दहणभागेण विणा सद्दहणभागस्सेव सम्मामिच्छत्तववएसो णत्थि त्ति ण सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि चे एवंविहविवक्खाए सम्मामिच्छत्तं खओवसमियं मा होदु, किंतु अवयव्यवयवनिराकरणानिराकरणं पडुच्च खओवसमियं सम्मामिच्छत्तदव्वकम्मं पि सव्वघादी चेव होदु, जच्चंतरस्स

सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ४ ॥

शंका—प्रतिबंधी कर्मके उदय होनेपर भी जो जीवके गुणका अवयव (अंश) पाया जाता है, वह गुणांश क्षायोपशमिक कहलाता है, क्योंकि, गुणोंके संपूर्णरूपसे घातनेकी शक्तिका अभाव क्षय कहलाता है। क्षयरूप ही जो उपशम होता है, वह क्षयोपशम कहलाता है। उस क्षयोपशममें उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायोपशमिक कहलाता है। किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय रहते हुए सम्यक्त्वकी कणिका भी अवशिष्ट नहीं रहती है, अन्यथा, सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सर्वघातीपना बन नहीं सकता है। इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है, यह कहना घटित नहीं होता?

समाधान—यहां उक्त शंकाका परिहार करते हैं- सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके उदय होने पर श्रद्धानाश्रद्धानात्मक करंचित अर्थात् शबलित या मिश्रित जीवपरिणाम उत्पन्न होता है, उसमें जो श्रद्धानांश है, वह सम्यक्त्वका अवयव है। उसे सम्यग्मिथ्यात्वकर्मका उदय नहीं नष्ट करता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक है।

शंका—अश्रद्धान भागके विना केवल श्रद्धान भागके ही 'सम्यग्मिथ्यात्व' यह संज्ञा नहीं है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक नहीं है?

समाधान—उक्त प्रकारकी विवक्षा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वभाव क्षायोपशमिक भले ही न होवे, किन्तु अवयवीके निराकरण और अवयवके अनिराकरणकी अपेक्षा वह क्षायोपशमिक है। अर्थात् सम्यग्मिथ्यात्वके उदय रहते हुए अवयवीरूप शुद्ध आत्माका तो निराकरण रहता है, किन्तु अवयवरूप सम्यक्त्वगुणका अंश प्रगट रहता है। इस प्रकार क्षायोपशमिक भी वह सम्यग्मिथ्यात्व द्रव्यकर्म सर्वघाती ही होवे, क्योंकि,

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टिरिति क्षायोपशमिको भावः। स. सि. १, ८. मिस्से खओवसमिओ। गो. जी. ११.

२ प्रतिषु 'व अवयवनि' इति पाठः।

सम्मामिच्छत्तस्स सम्मत्ताभावादो। किंतु सद्दहणभागो असद्दहणभागो ण होदि, सद्दहणासद्दहणाणमेयत्तविरोहा। ण च सद्दहणभागो कम्मोदयजणिओ, तत्थ विवरीयत्ताभावा। ण य तत्थ सम्मामिच्छत्तववएसाभावो, समुदाएसु पयट्टाणं तदेगदेसे वि पउत्तिदंसणादो। तदो सिद्धं सम्मामिच्छत्तं खओवसमियमिदि। मिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण सम्मामिच्छत्तभावो होदि त्ति सम्मामिच्छत्तस्स खओवसमियत्तं केई परूवयंति, तण्ण घडदे, मिच्छत्तभावस्स वि खओवसमियत्तप्पसंगा। कुदो? सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण मिच्छत्तभावुप्पत्तीए उवलंभा।

असंजदसम्माइट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ५ ॥

जात्यन्तरभूत सम्यग्मिथ्यात्वकर्मके सम्यक्त्वताका अभाव है। किन्तु श्रद्धानभाग अश्रद्धानभाग नहीं हो जाता है, क्योंकि, श्रद्धान और अश्रद्धानके एकताका विरोध है। और श्रद्धानभाग कर्मोदय-जनित भी नहीं है, क्योंकि, इसमें विपरीतताका अभाव है। और न उनमें सम्यग्मिथ्यात्व संज्ञाका ही अभाव है, क्योंकि समुदायोंमें प्रवृत्त हुए शब्दोंकी उनके एक देशमें भी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए यह सिद्ध हुआ कि सम्यग्मिथ्यात्व क्षायोपशमिक भाव है।

कितने ही आचार्य ऐसा कहते हैं कि मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयरूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्व कर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्मिथ्यात्वभाव होता है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वके क्षायोपशमिकता सिद्ध होती है। किन्तु उनका यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, ऐसा मानने पर तो मिथ्यात्वभावके भी क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त होगा, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यक्त्वदेशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे तथा मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति पाई जाती है।

असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव भी है, क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ५॥

१ असंयतसम्यग्दृष्टिरिति औपशमिको वा क्षायिको वा क्षायोपशमिको वा भावः। स. सि. १, ८. अविरदसम्मम्हि तिण्णेव ॥ गो. जी. ११.

तं जहा- मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वघादिफद्दयाणं सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणं च उवसमेण उदयाभावलक्खणेण उवसमसम्मत्तमुप्पज्जदि त्ति तमोवसमियं। एदेसिं चेव खएण उप्पण्णो खइओ भावो। सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदएण सह वट्टमाणो सम्मत्तपरिणामो खओवसमिओ। मिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मामिच्छत्तस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मत्तस्स देसघादिफद्दयाणमुदएण खओवसमिओ भावो त्ति केइ भणंति, तण्ण घडदे, अइवत्तिदोसप्पसंगादो। कधं पुण घडदे? जहट्ठियट्ठसद्दहणघायणसत्ती सम्मत्तफद्दएसु खीणा त्ति तेसिं खइयसण्णा। खयाणमुवसमो पसण्णदा[1] खओवसमो। तत्थुप्पण्णत्तादो खओवसमियं वेदगसम्मत्तमिदि घडदे। एवं सम्मत्ते तिण्णि भावा, अण्णे णत्थि। गदिलिंगादओ भावा तत्थुवलब्भंति इदि चे होदु णाम तेसिमत्थित्तं, किंतु ण तेहिंतो सम्मत्तमुप्पज्जदि। तदो सम्माइट्ठी वि ओदइयादिववएसं ण लहदि त्ति घेत्तव्वं।

जैसे- मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप लक्षणवाले उपशमसे उपशमसम्यक्त्व उत्पन्न होता है, इसलिए 'असंयतसम्यग्दृष्टि' यह भाव औपशमिक है। इन्हीं तीनों प्रकृतियोंके क्षयसे उत्पन्न होनेवाले भावको क्षायिक कहते हैं। सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयके साथ रहनेवाला सम्यक्त्वपरिणाम क्षायोपशमिक कहलाता है। मिथ्यात्वके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावरूप क्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमनसे, और सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे क्षायोपशमिक भाव कितने ही आचार्य कहते हैं, किन्तु यह कथन घटित नहीं होता है, क्योंकि, वैसा माननेपर अतिव्याप्ति दोषका प्रसंग आता है।

शंका--तो फिर क्षायोपशमिकभाव कैसे घटित होता है?

समाधान--यथास्थित अर्थके श्रद्धानको घात करनेवाली शक्ति जब सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धकोंमें क्षीण हो जाती है, तब उनकी क्षायिकसंज्ञा है। क्षीण हुए स्पर्धकोंके उपशमको अर्थात् प्रसन्नताको क्षयोपशम कहते हैं। उसमें उत्पन्न होनेसे वेदकसम्यक्त्व क्षायोपशमिक है, यह कथन घटित हो जाता है। इस प्रकार सम्यक्त्वमें तीन भाव होते हैं, अन्य भाव नहीं होते हैं।

शंका--असंयतसम्यग्दृष्टिमें गति, लिंग आदि भाव पाये जाते हैं, फिर उनका ग्रहण यहां क्यों नहीं किया?

समाधान--असंयतसम्यग्दृष्टिमें भले ही गति, लिंग आदि भावोंका अस्तित्व रहा आवे, किन्तु उनसे सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता है, इसलिए सम्यग्दृष्टि भी औदयिक आदि भावोंके व्यपदेशको नहीं प्राप्त होता है, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

१ प्रतिषु 'पसण्णदा' इति पाठः।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ ६ ॥

सम्मादिट्ठीए तिण्णि भावे भणिऊण असंजदत्तस्स कदमो भावो होदि त्ति जाणावणट्ठमेदं सुत्तमागदं। संजमघादीणं कम्माणमुदएण जेणेसो असंजदो तेण असंजदो त्ति ओदइओ भावो। हेट्ठिल्लाणं गुणट्ठाणाणमोदइयमसंजदत्तं किण्ण परूविदं? ण एस दोसो, एदेणेव तेसिमोदइयअसंजदभावोवलद्धीदो। जेणेदमंतदीवयं सुत्तं तेणेदे ठाइदूण अइक्कंतसव्वसुत्ताणमवयवसरूवं पडिवज्जदि, तत्थ अप्पणो अत्थित्तं वा पयासेदि, तेण अदीदगुणट्ठाणाणं सव्वेसिमोदइओ असंजमभावो अत्थि त्ति सिद्धं। एदमादीए अभणिय एत्थ भणंतस्स को अभिप्पाओ? उच्चदे— असंजमभावस्स पज्जवसाणपरूवणट्ठमुवरिमाणमसंजमभावपडिसेहट्ठं चेत्थेदं उच्चदे।

संजदासंजद पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[2] ॥ ७ ॥

किन्तु असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदायिकभावसे है ॥ ६ ॥

सम्यग्दृष्टिके तीनों भाव कहकर असंयतके उसके असंयतत्वकी अपेक्षा कौनसा भाव होता है, इस बातके बतलानेके लिए यह सूत्र आया है। चूंकि संयमके घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे यह असंयतरूप होता है, इसलिए 'असंयत' यह औदयिकभाव है।

शंका—अधस्तन गुणस्थानोंके असंयतपनको औदयिक क्यों नहीं कहा?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, इसी ही सूत्रसे उन अधस्तन गुणस्थानोंके औदयिक असंयतभावकी उपलब्धि होती है। चूंकि यह सूत्र अन्तदीपक है, इसलिए असंयतभावको अन्तमें रख देनेसे यह पूर्वोक्त सभी सूत्रोंका अंग बन जाता है। अथवा, अतीत सब सूत्रोंमें अपने अस्तित्वको प्रकाशित करता है, इसलिए सभी अतीत गुणस्थानोंका असंयमभाव औदयिक होता है, यह बात सिद्ध हुई।

शंका—यह 'असंयत' पद आदिमें न कहकर यहांपर कहनेका क्या अभिप्राय है?

समाधान—यहां तकके गुणस्थानोंके असंयमभावकी अन्तिम सीमा बतानेके लिए और ऊपरके गुणस्थानोंके असंयमभावके प्रतिषेध करनेके लिए यह असंयत पद यहांपर कहा है।

संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत, यह कौनसा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ७ ॥

---

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन। स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतः प्रमत्तसंयतोऽप्रमत्तसंयत इति च क्षायोपशमिको भावः। स. सि. १, ८. देसविरदे पमत्ते इदरे य खओवसमियभावो दु। सो खलु चरित्तमोहं पडुच्च भणियं तहा उवरिं। गो. जी. १३.

तं जहा– चारित्तमोहणीयकम्मोदए खओवसमसण्णिदे संते जं संजदासंजद-पमत्तसंजद-अप्पमत्तसंजदत्तं च उप्पज्जदि, तेणेदे तिण्णि वि भावा खओवसमिया। पच्चक्खाणावरण-चदुसंजलण-णवणोकसायाणमुदयस्स सव्वप्पणा चारित्तविणासणसत्तीए अभावादो तस्स खयसण्णा। तेसिं चेव उप्पण्णचारित्तं सेडिं वा आवरिदुमसमत्थाणमुवसमसण्णा। तेहि दोहिंतो उप्पण्णा एदे तिण्णि वि भावा खओवसमिया जादा। एवं संते पच्चक्खाणावरणस्स सव्वघादित्तं फिट्टदि त्ति उत्ते ण फिट्टदि, पच्चक्खाणं सव्वं घादयदि त्ति तं सव्वघादी उच्चदि। सव्वमपच्चक्खाणं ण घादेदि, तस्स तत्थ वावाराभावा। तेण तप्परिणदस्स सव्वघादिसण्णा। जस्सोदए संते जमुप्पज्जमाणमुवलब्भदि ण तं पडि तं सव्वघादिववएसं लहदि, अइप्पसंगादो। अपच्चक्खाणावरणचउक्कस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण चदुसंजलण-णवणोकसायाणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण देसघादिफद्दयाणमुदएण पच्चक्खाणावरणचदुक्कस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण देससंजमो

चूंकि क्षयोपशमनामक चारित्रमोहनीयकर्मके उदय होने पर संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतपना उत्पन्न होता है, इसलिए ये तीनों ही भाव क्षायोपशमिक हैं। प्रत्याख्यानावरणचतुष्क, संज्वलनचतुष्क और नव नोकषायोंके उदयके सर्व प्रकारसे चारित्र विनाश करनेकी शक्तिका अभाव है, इसलिए उनके उदयकी क्षय संज्ञा है। उन्हीं प्रकृतियोंकी उत्पन्न हुए चारित्रको अथवा श्रेणीको आवरण नहीं करनेके कारण उपशम संज्ञा है। क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न हुए ये उक्त तीनों भाव भी क्षायोपशमिक हो जाते हैं।

शंका—यदि ऐसा माना जाय, तो प्रत्याख्यानावरण कषायका सर्वघातिपना नष्ट हो जाता है?

समाधान—वैसा माननेपर भी प्रत्याख्यानावरण कषायका सर्वघातिपना नष्ट नहीं होता है, क्योंकि, प्रत्याख्यानावरण कषाय अपने प्रतिपक्षी सर्व प्रत्याख्यान (संयम) गुणको घातता है, इसलिए वह सर्वघाती कहा जाता है। किन्तु सर्व अप्रत्याख्यानको नहीं घातता है, क्योंकि, उसका इस विषयमें व्यापार नहीं है। इसलिए इस प्रकारसे परिणत प्रत्याख्यानावरण कषायके सर्वघाती संज्ञा सिद्ध है। जिस प्रकृतिके उदय होने पर जो गुण उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है, उसकी अपेक्षा वह प्रकृति सर्वघाती संज्ञाको नहीं प्राप्त होती है। यदि ऐसा न माना जाय तो अतिप्रसंग दोष आजायगा।

अप्रत्याख्यानावरणचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे और उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, तथा चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयाभावी क्षयसे और उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे और प्रत्याख्यानावरण कषायचतुष्कके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे देशसंयम उत्पन्न होता

उप्पज्जदि । बारसकसायाण सव्वधादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव सदोवसमेण
संजुलण-णवणोकसायाण सव्वधादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव सदोवसमेण देसघा-
फद्दयाणमुदएण पमत्तापमत्तसंजमा¹ उप्पज्जंति, तेणेदे तिण्णि वि भावा खओवसमि-
इदि के वि भणंति । ण च एदं समंजसं । कुदो ? उदयाभावो उवसमो त्ति कट्टु उदय-
विरहिदसव्वपयडीहि ट्ठिदि अणुभागफद्दएहि अ उवसमसण्णा लद्धा । संपहि ण क्खओ-
अत्थि, उदयस्स विज्जमाणस्स खयव्ववएसविरोहादो । तदो एदे तिण्णि भावा उदओव-
समियत्तं पत्ता । ण च एवं, एदेसिमुदओवसमियत्तपदुप्पायणसुत्ताभावा । ण च फल-
दाऊण णिज्जरियगयकम्मक्खंडाण खयव्ववएसं काऊण एदेसिं खओवसमियत्तं वोत्तु-
जुत्तं, मिच्छादिट्ठिआदि सव्वभावाणं एवं संते खओवसमियत्तप्पसंगा । तम्हा पुव्विल्लो
चेय अत्थो घेत्तव्वो, णिरवज्जत्तादो । दंसणमोहणीयकम्मस्स उवसम-खय-खओवसमे
अस्सिदूण संजदासंजदादीणमोवसमियादिभावा किण्ण परूविदा ? ण, तदो संजमासंजमादि-
भावाणमुप्पत्तीए अभावादो । ण च एत्थ सम्मत्तविसया पुच्छा अत्थि, जेण दंसण

है। अनन्तानुबन्धी आदि बारह कषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सद-
वस्थारूप उपशमसे चारों संज्वलन और नवों नोकषायोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदय
क्षयसे, तथा उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे और देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे प्रमत्त
और अप्रमत्त गुणस्थानसम्बन्धी संयम उत्पन्न होता है, इसलिए उक्त तीनों ही भाव
क्षायोपशमिक हैं, ऐसा कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु उनका यह कथन युक्तिसंगत
नहीं है, क्योंकि, उदयके अभावको उपशम कहते हैं, ऐसा अर्थ करके उदयसे विरहित
सर्वप्रकृतियोंको तथा उन्हींके स्थिति और अनुभागके स्पर्धकोंको उपशमसंज्ञा प्राप्त हो
जाती है। अभी वर्तमानमें क्षय नहीं है, क्योंकि, जिस प्रकृतिका उदय विद्यमान है,
उसके क्षय संज्ञा होनेका विरोध है। इसलिए ये तीनों ही भाव उदयोपशमिकपनेको
प्राप्त होते हैं। किन्तु ऐसा माना नहीं जा सकता है क्योंकि उक्त तीनों गुणस्थानोंके
उदयोपशमिकपना प्रतिपादन करनेवाले सूत्रका अभाव है। और फलको देकर एवं
निर्जराको प्राप्त होकर गये हुए कर्मस्कंधोंके क्षय संज्ञा करके उक्त गुणस्थानोंको
क्षायोपशमिक कहना भी युक्त नहीं है क्योंकि ऐसा होनेपर मिथ्यादृष्टि आदि सभी
भावोंके क्षायोपशमिकताका प्रसंग प्राप्त हो जायगा। इसलिए पूर्वोक्त ही अर्थ ग्रहण
करना चाहिए क्योंकि वही निरवद्य (निर्दोष) है।

शंका—दर्शनमोहनीयकर्मके उपशम क्षय और क्षयोपशमका आश्रय करके
संयतासंयतादिकोंके औपशमिकादि भाव क्यों नहीं बताए गए?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमादिकसे संयमासंयमादि
भावोंकी उत्पत्ति नहीं होती। दूसरे, यहां पर सम्यक्त्व विषयक पृच्छा (प्रश्न) भी नहीं है,

१ प्रतिषु 'संजमो' इति पाठः ।

मोहणिबंधणओवसमियादिभावेहि संजदासंजदादीणं ववएसो होज्ज। ण च एवं, तधाणुवलंभा।

चदुण्हमुवसमा[1] त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो[2] ॥ ८ ॥

तं जहा- एक्कवीसपयडीओ उवसामेंति त्ति चदुण्हं ओवसमिओ भावो। होदु णाम उवसंतकसायस्स ओवसमिओ भावो उवसमिदासेसकसायत्तादो। ण सेसाणं, तत्थ असेसमोहस्सुवसमाभावा? ण, अणियट्टिबादरसांपराइय-सुहुमसांपराइयाणं उवसमिदथोवकसायजणिदुवसमपरिणामाणं ओवसमियभावस्स अत्थित्ताविरोहा। अपुव्वकरणस्स अणुवसंतासेसकसायस्स कधमोवसमिओ भावो? ण, तस्स वि अपुव्वकरणेहि पडिसमयमसंखेज्जगुणाए सेडीए कम्मक्खंधे णिज्जरंतस्स ट्ठिदि-अणुभागखंडयाणि घादिय कमेण ट्ठिदि-अणुभागे असंखेज्जाणंतगुणहीणे करेंतस्स पारद्धुवसमणकिरियस्स तदविरोहा।

जिससे कि दर्शनमोहनीय निमित्तक औपशमिकादि भावोंकी अपेक्षा संयतासंयतादिकके औपशमिकादि भावोंका व्यपदेश हो सके। ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारकी व्यवस्था नहीं पाई जाती है।

अपूर्वकरण आदि चारों गुणस्थानवर्ती उपशामक यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव है ॥ ८ ॥

वह इस प्रकार है- चारित्रमोहनीयकर्मकी इक्कीस प्रकृतियोंका उपशमन करते हैं, इसलिए चारों गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिकभाव माना गया है।

शंका—समस्त कषाय और नोकषायोंके उपशमन करनेसे उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीवके औपशमिक भाव भले ही रहा आवे, किन्तु अपूर्वकरणादि शेष गुणस्थानवर्ती जीवोंके औपशमिक भाव नहीं माना जा सकता है, क्योंकि, उन गुणस्थानोंमें समस्त मोहनीयकर्मके उपशमका अभाव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, कुछ कषायोंके उपशमन किए जानेसे उत्पन्न हुआ है उपशम परिणाम जिनके, ऐसे अनिवृत्तिकरण बादरसाम्पराय और सूक्ष्मसाम्पराय संयतके उपशमभावका अस्तित्व माननेमें कोई विरोध नहीं है।

शंका—नहीं उपशमन किया है किसी भी कषायका जिसने, ऐसे अपूर्वकरण संयतके औपशमिक भाव कैसे माना जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अपूर्वकरण परिणामोंके द्वारा प्रतिसमय असंख्यात गुणश्रेणीरूपसे कर्मस्कंधोंकी निर्जरा करनेवाले, तथा स्थिति और अनुभागकांडकोंको घात करके क्रमसे कर्मोंकी स्थिति और अनुभागको असंख्यात और अनन्तगुणित हीन करनेवाले तथा उपशमनक्रियाका आरम्भ करनेवाले, ऐसे अपूर्वकरणसंयतके उपशमभावके माननेमें कोई विरोध नहीं है।

---

१ [illegible]

२ [illegible] १, ८ [illegible]

दुवसमेण उप्पण्णो भावो ओवसमिओ भण्णइ। अपुव्वकरणस्स तदभावा णोव भावो इदि च ण, उवसमणसत्तिसमण्णिदअपुव्वकरणस्स तदत्थित्ताविरोहा। उवसमे जादो उवसमियकम्माणमुवसमणट्ठं जादो वि ओवसमिओ भाओ त्ति अधवा भविस्समाणे भूदोवयारादो अपुव्वकरणस्स ओवसमिओ भावो, सयला पट्टचक्कहरस्स तित्थयरववएसो व्व।

वदुण्ह खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, भावो[1] ॥ ९ ॥

सजोगि अजोगिकेवलीण खविदघाइकम्माण होदु णाम खइओ भावो। खीण वि होदु, खविदमोहणीयत्तादो। ण सेसाण, तत्थ कम्मक्खयाणुवलभा? ण, हुमसांपराइयाण पि खवियमोहेयदेसाण कम्मक्खयजणिदभावोवलभा। अपुव्व

शंका—कर्मोंके उपशमनसे उत्पन्न होनेवाला भाव औपशमिक कहलाता है। पूर्वकरणसंयतके कर्मोंके उपशमका अभाव है, इसलिए उसके औपशमिक भाव नना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उपशमनशक्तिसे समन्वित अपूर्वकरणसंयतके औप ावके अस्तित्वको माननेमें कोई विरोध नहीं है।

इस प्रकार उपशम होनेपर उत्पन्न होनेवाला और उपशमन होने योग्य कर्मोंके ाथ उत्पन्न हुआ भी भाव औपशमिक कहलाता है, यह बात सिद्ध हुई। अथवा, ं होनेवाले उपशम भावमें भूतकालका उपचार करनेसे अपूर्वकरणके औपशमिक ा जाता है, जिस प्रकार कि सब प्रकारके असंयममें प्रवृत्त हुए चक्रवर्ती तीर्थंकरके र' यह व्यपदेश बन जाता है।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, यह कौनसा भाव है? भाव है ॥ ९ ॥

शंका—घातिकर्मोंके क्षय करनेवाले सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके क्षायिक ऊ ही रहा आवे। क्षीणकषाय वीतरागछद्मस्थके भी क्षायिक भाव रहा आवे, उसके भी मोहनीयकर्मका क्षय हो गया है। किन्तु सूक्ष्मसाम्पराय आदि शेष क क्षायिक भाव मानना युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि, उनमें किसी भी कर्मका ीं पाया जाता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, मोहनीयकर्मके एक देशके क्षपण करनेवाले बादर य और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकोंके भी कर्मक्षय जनित भाव पाया जाता है।

1 चदुसु खवगेसु सयोगायोगकेवलिनोश्च क्षायिको भावः। स. सि. १, ८. खवगेसु खइओ भावो णियमा ासो त्ति सिद्धे य ॥ गो. जी. १४

करणस्स अणिट्ठकम्मस्स कधं खइओ भावो ? ण, तस्स वि कम्मक्खयणिमित्तपरिणामुवलंभा। एत्थ वि कम्माणं खए जादो खइओ, खयट्ठं जादो वा खइओ भावो इदि दुविहा सद्दउप्पत्ती घेत्तव्वा। उवयारेण वा अपुव्वकरणस्स खइओ भावो। उवयारे आसइज्जमाणे अइप्पसंगो किण्ण होदीदि चे ण, पच्चासत्तीदो अइप्पसंगपडिसेहादो।

ओघाणुगमो समत्तो।

आदेसेण गइयाणुवादेण णिरयगईए णेरइएसु मिच्छादिट्ठि त्ति को भावो, ओदइओ भावो[1] ॥ १० ॥

कुदो ? मिच्छत्तुदयजणिदअसद्दहणपरिणामुवलंभा। सम्मामिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण[2] अणुदओवसमेण वा मिच्छत्तसव्वघादिफद्दयाणमुदएण मिच्छाइट्ठी

शंका—किसी भी कर्मके नष्ट नहीं करनेवाले अपूर्वकरणसंयतके क्षायिकभाव कैसे माना जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, उसके भी कर्मक्षयके निमित्तभूत परिणाम पाये जाते हैं।

यहां पर भी कर्मोंके क्षय होने पर उत्पन्न होनेवाला भाव क्षायिक है, तथा कर्मोंके क्षयके लिए उत्पन्न हुआ भाव क्षायिक है, ऐसी दो प्रकारकी शब्द-व्युत्पत्ति ग्रहण करना चाहिए। अथवा उपचारसे अपूर्वकरण संयतके क्षायिक भाव मानना चाहिए।

शंका—इस प्रकार सर्वत्र उपचारके आश्रय करने पर अतिप्रसंग दोष क्यों नहीं प्राप्त होगा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रत्यासत्ति अर्थात् समीपवर्ती अर्थके प्रसंगसे अतिप्रसंग दोषका प्रतिषेध हो जाता है।

इस प्रकार ओघ भावानुगम समाप्त हुआ।

आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके अनुवादसे नरकगतिमें नारकियोंमें मिथ्यादृष्टि यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ १० ॥

क्योंकि, यहां पर मिथ्यात्वके उदयसे उत्पन्न हुआ अश्रद्धानरूप परिणाम पाया जाता है।

शंका—सम्यग्मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे अथवा अनुदयोपशमसे और मिथ्यात्वप्रकृतिके सर्वघाती

1 [illegible]

2 [illegible]

दि त्ति खओवसमिओ सो किण्ण होदि ? उच्चदे– ण ताव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-
फद्दयाणमुदयक्खओ सतोवसमो अणुदओवसमो वा मिच्छादिट्ठीए कारणं, सव्वहि-
दो। जं जदो णियमेण उप्पज्जदि तं तस्स कारणं, अण्णहा अणवत्थापसंगादो।
च्छत्तुप्पज्जणकाले विज्जमाणा तक्कारणत्तं पडिवज्जंति तो णाण-दंसण असंजमा
वि तक्कारणं होंति। ण चेवं, तहाविहववहाराभावा। मिच्छादिट्ठीए पुण
दओ कारणं, तेण विणा तदणुप्पत्तीए।

सासणसम्माइट्ठि त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो ॥ ११ ॥

अणंताणुबंधीणमुदएणेव सासणसम्मादिट्ठी होदि त्ति ओदइओ भावो किण्ण
? ण, आइल्लेसु चदुसु वि गुणट्ठाणेसु चारित्तावरणतिव्वोदएण पत्तासंजमेसु दंसण-
धणेसु चारित्तमोहविवक्खाभावा। अप्पिदस्स दंसणमोहणीयस्स उदएण उवसमेण
खओवसमेण वा सासणसम्मादिट्ठी ण होदि त्ति पारिणामिओ भावो।

के उदयसे मिथ्यादृष्टिभाव उत्पन्न होता है, इसलिए उसे क्षायोपशमिक क्यों न
ाय?

समाधान—न तो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके देशघाती
का उदयक्षय, अथवा सदवस्थारूप उपशम, अथवा अनुदयरूप उपशम मिथ्यादृष्टि
कारण है, क्योंकि, उसमें व्यभिचार दोष आता है। जो जिससे नियमतः उत्पन्न
, वह उसका कारण होता है। यदि ऐसा न माना जावे, तो अनवस्था दोषका
ाता है। यदि यह कहा जाय कि मिथ्यात्वके उत्पन्न होनेके कालमें जो भाव
न हैं, वे उसके कारणपनेको प्राप्त होते हैं। तो फिर ज्ञान, दर्शन, असंयम आदि भी
सके कारण हो जावेंगे। किन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि, उस प्रकारका व्यवहार नहीं
ाता है। इसलिए यही सिद्ध होता है कि मिथ्यादृष्टिका कारण मिथ्यात्वका उदय
्योंकि, उसके विना मिथ्यात्वभावकी उत्पत्ति नहीं होती है।

नारकी सासादनसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? पारिणामिक भाव है ॥ ११ ॥

शंका—अनन्तानुबन्धी चारों कषायोंके उदयसे ही जीव सासादनसम्यग्दृष्टि
, इसलिए उसे औदयिकभाव क्यों नहीं कहते हैं?

समाधान—नहीं, क्योंकि, दर्शनमोहनीयनिबन्धनक आदिके चारों ही गुणस्थानोंमें

तं जहा- तिण्णि वि करणाणि काऊण सम्मत्तं पडिवण्णजीवाणं ओवसमिओ भावो, दंसणमोहणीयस्स तत्थुदयाभावा। खविददंसणमोहणीयाणं सम्मादिट्ठीणं खइयो, पडिवक्खसम्मक्खएणुप्पण्णत्तादो। इदरेसिं सम्मादिट्ठीणं खओवसमिओ, पडिवक्खकम्मोदएण सह लद्धप्पसरूवत्तादो। मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वघादिफद्दयाणमुदयक्खएण तेसिं चेव संतोवसमेण अणुदओवसमेण वा सम्मत्तदेसघादिफद्दयाणमुदएण सम्मादिट्ठी उप्पज्जदि त्ति तिस्से खओवसमियत्तं केइं भणंति, तण्ण घडदे, विउचारदंसणादो, अइप्पसंगादो वा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ १४ ॥

संजमघादीणं कम्माणमुदएण असंजमो होदि, तदो असंजदो त्ति ओदइओ भावो। एदेण अवदीवएण सुत्तेण अईदंतगव्वगुणट्ठाणेसु ओदइयमसंजदत्तमत्थि त्ति भणिदं होदि।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइयाणं ॥ १५ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठि त्ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि त्ति पारिणामिओ, सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति खओवसमिओ, असंजदसम्मादिट्ठि त्ति उवसमिओ खइओ खओव-

---

जस- अध करण आदि तीनों ही करणोंको करके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके औपशमिक भाव होता है, क्योंकि, वहांपर दर्शनमोहनीयकर्मके उदयका अभाव है। दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपण करनेवाले सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायिकभाव होता है, क्योंकि, यह अपने प्रतिपक्षी कर्मके क्षयसे उत्पन्न होता है। अन्य सम्यग्दृष्टि जीवोंके क्षायोपशमिकभाव होता है, क्योंकि, प्रतिपक्षी कर्मके उदयके साथ उसके आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होती है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयक्षयसे, उन्हींके सदवस्थारूप उपशमसे, अथवा अनुदयरूप उपशमसे, तथा सम्यक्त्वप्रकृतिके देशघाती स्पर्धकोंके उदयसे सम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए उसके भी क्षायोपशमिकता कितने ही आचार्य कहते हैं। किन्तु यह घटित नहीं होती है, क्योंकि, ऐसा माननेपर व्यभिचार देखा जाता है, अथवा अतिप्रसंग दोष आता है।

किन्तु नारकी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ १४ ॥

चूंकि, असंयमभाव संयमका घात करनेवाले कर्मोंके उदयसे होता है, इसलिए 'असंयत' यह औदयिकभाव है। इस अन्तदीपक सूत्रसे अतिक्रान्त सब गुणस्थानोंमें असंयतपना औदयिक है, यह सूचित किया गया है।

इस प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंके सर्व गुणस्थानोंसम्बन्धी भाव होते हैं ॥ १५ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिक भाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिकभाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिकभाव है और असंयतसम्यग्दृष्टि यह

समिओ वा भावो, संजमघादीणं कम्माणमुदएण असंजदो त्ति इच्चेदेहि विसेसाभावा।

बिदियाए जाव सत्तमीए पुढवीए णेरइएसु मिच्छाइट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमोघं[1] ॥ १६ ॥

सुगममेदं।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा[2] भावो[3] ॥ १७ ॥

तं जहा- दंसणमोहणीयस्स उवसमेण उदयाभावलक्खणेण जेणुप्पज्जइ उवसमसम्मादिट्ठी तेण सा ओवसमिया। जदि उदयाभावो वि उवसमो उच्चइ, तो देवत्तं पि ओवसमियं होज्ज, तिण्हं गईणमुदयाभावेण उप्पज्जमाणत्तादो? ण, तिण्हं गईणं थिउक्कसंकमेण[4] उदयस्सुवलंभा, देवगइणामाए उदओवलंभादो वा। वेदगसम्मत्तस्स दंसण-

---

औपशमिकभाव भी है, क्षायिकभाव भी है और क्षायोपशमिकभाव भी है, तथा संयमघाती कर्मोंके उदयसे असंयत है। इस प्रकार नारकसामान्यकी भावप्ररूपणासे कोई विशेषता नहीं है।

द्वितीय पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक नारकोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके भाव ओघके समान हैं ॥ १६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त नारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ १७ ॥

चूंकि, दर्शनमोहनीयके उदयाभावलक्षणवाले उपशमके द्वारा उपशमसम्यग्दृष्टि उत्पन्न होती है, इसलिए वह औपशमिक है।

शंका—यदि उदयाभावको भी उपशम कहते हैं तो देवपना भी औपशमिक होगा, क्योंकि, वह शेष तीनों गतियोंके उदयाभावसे उत्पन्न होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर तीनों गतियोंका स्तिबुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है, अथवा देवगतिनामकर्मका उदय पाया जाता है, इसलिए देवपर्यायको औपशमिक नहीं कहा जा सकता।

---

१ द्वितीयादिष्वा सप्तम्या मिथ्यादृष्टिसासादनसम्यग्दृष्टिसम्यग्मिथ्यादृष्टीनां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'वा' इति पाठो नास्ति।

३ असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको वा क्षायोपशमिको वा भावः। स. सि. १, ८.

४ पिंडपगईण जा उदयसंगया तीए अणुदयगयाओ। संकामिऊण वेयइ जं एसो थिबुगसंकमो ॥ पं. सं., संक्रम. ८०.

मोहणीयावयवस्स देसघादिलक्खणस्स उदयादो उप्पण्णसम्मादिट्ठिभावो खओवसमिओ। वेदगसम्मत्तफद्दयाणं खयसण्णा, सम्मत्तपडिबंधणसत्तीए तत्थाभावा। मिच्छत्त सम्मामिच्छत्ताणमुदयाभावो उवसमो। तेहि दोहि उप्पण्णत्तादो सम्माइट्ठिभावो खओवसमिओ। खइओ भावो किण्णोवलब्भदे ? ण, विदियादिसु पुढवीसु खइयसम्मादिट्ठीणमुप्पत्तीए अभावा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ १८ ॥

सम्मादिट्ठित्त दुभावसण्णिदं सोच्चा असंजदभावावगमत्थं पुच्छिदसिस्ससंदेह-

---

विशेषार्थ—गति, जाति आदि पिंड प्रकृतियोंमेंसे जिस किसी विवक्षित एक प्रकृतिके उदय आने पर अनुदय प्राप्त शेष प्रकृतियोंका जो उसी प्रकृतिमें संक्रमण होकर उदय आता है, उसे स्तिवुकसंक्रमण कहते हैं। जैसे—एकेन्द्रिय जीवोंके उदय प्राप्त एकेन्द्रिय जातिनामकर्ममें अनुदय प्राप्त द्वीन्द्रिय जाति आदिका संक्रमण होकर उदयमें आना। गति नामकर्म भी पिंड प्रकृति है। उसके चारों भेदोंमेंसे किसी एकके उदय होने पर अनुदय प्राप्त शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा संक्रमण होकर विपाक होता है। प्रकृतमें यही बात देवगतिको लक्ष्यमें रखकर कही गई है कि देवगति नाम कर्मके उदयकालमें शेष तीनों गतियोंका स्तिवुकसंक्रमणके द्वारा उदय पाया जाता है।

दर्शनमोहनीयकर्मकी अवयवस्वरूप और देशघाती लक्षणवाली वेदकसम्यक्त्व प्रकृतिके उदयसे उत्पन्न होनेवाला सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है। वेदक सम्यक्त्वप्रकृतिके स्पर्धकोंकी क्षय संज्ञा है, क्योंकि, उसमें सम्यग्दर्शनके प्रतिबंधनकी शक्तिका अभाव है। मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों प्रकृतियोंके उदयाभावको उपशम कहते हैं। इस प्रकार उपर्युक्त क्षय और उपशम, इन दोनोंके द्वारा उत्पन्न होनेसे सम्यग्दृष्टिभाव क्षायोपशमिक कहलाता है।

शंका—यहां क्षायिक भाव क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, द्वितीयादि पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्तिका अभाव है।

किन्तु उक्त नारकी असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है॥ १८॥

द्वितीयादि पृथिवियोंके सम्यग्दृष्टित्वको औपशमिक और क्षायोपशमिक, इन दो भावोंसे संयुक्त सुन कर यहां असंयतभावके परिज्ञानार्थ प्रश्न करनेवाले शिष्यके

---

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन। स. सि. १, ८

विणासणट्ठमागदमिदं सुत्तं । संजमघादिचारित्तमोहणीयकम्मोदयसमुप्पण्णत्तादो असंजदभावो ओदइओ । उवरिमगुणट्ठाणेसु असंजदभावस्स अत्थित्तं एदेण सुत्तेण परूविदं ।

तिरिक्खगदीए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिंदियपज्जत्त-पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव संजदासंजदाणमोघं ॥ १९ ॥

कुदो? मिच्छादिट्ठि त्ति ओदइओ, सासणसम्मादिट्ठि त्ति पारिणामिओ, सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति खओवसमिओ, सम्मादिट्ठि त्ति ओवसमिओ खइओ खओवसमिओ वा, ओदइएण भावेण पुणो असंजदो, संजदासंजदो त्ति खओवसमिओ भावो इच्चेदेहि ओघादो चउव्विहतिरिक्खाणं भेदाभावा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु भेदपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २० ॥

असंयतत्वके विनाश करनेके लिए यह सूत्र आया है। द्वितीयादि पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टि नारकियोंका असंयतभाव संयमघाती चारित्रमोहनीयकर्मके उदयसे उत्पन्न होनेके कारण औदयिक है। तथा, इस सूत्रके द्वारा ऊपरके गुणस्थानोंमें असंयतभावके अस्तित्वका निरूपण किया गया है।

तिर्यंचगतिमें तिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंच, पंचेन्द्रियतिर्यंचपर्याप्त और पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिमतियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर संयतासंयत गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ १९ ॥

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि यह औदयिक भाव है, सासादनसम्यग्दृष्टि यह पारिणामिक भाव है, सम्यग्मिथ्यादृष्टि यह क्षायोपशमिक भाव है, सम्यग्दृष्टि यह औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव है, तथा औदयिकभावकी अपेक्षा यह असंयत है। संयतासंयत यह क्षायोपशमिक भाव है। इस प्रकार ओघसे चारों प्रकारके तिर्यंचोंका कोई भेद नहीं है।

अब पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें भेद प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेष बात यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २० ॥

१ [illegible]

कुदो ? उवसम-वेदयसम्मादिट्ठीणं चेय तत्थ संभवादो। खइओ भावो किण्ण तत्थ संभवइ ? खइयसम्मादिट्ठीणं बद्धाउआणं इत्थिवेदएसु उप्पत्तीए अभावा, मणुसगइ-वदिरित्तसेसगईसु दंसणमोहणीयक्खवणाए अभावादो च।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २१ ॥

सुगममेदं।

मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ २२ ॥

तिविहमणुससयलगुणट्ठाणाणं ओघसयलगुणट्ठाणेहिंतो भेदाभावा। मणुसअपज्जत्त-तिरिक्खअपज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं सुत्ते भावो किण्ण परूविदो ? ण, ओघपरूवणादो चेय तब्भावावगमादो पुध ण परूविदो।

क्योंकि, पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि जीवोंका ही पाया जाना सम्भव है।

शंका—उनमें क्षायिकभाव क्यों नहीं सम्भव है?

समाधान—क्योंकि, बद्धायुष्क क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंकी स्त्रीवेदियोंमें उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त शेष गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें क्षायिकभाव नहीं पाया जाता।

किन्तु तिर्यंच असंयतसम्यग्दृष्टियोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ २२ ॥

क्योंकि, तीनों प्रकारके मनुष्योंसम्बन्धी समस्त गुणस्थानोंकी भावप्ररूपणामें ओघके सकल गुणस्थानोंसे कोई भेद नहीं है।

शंका—लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्य और लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यंच मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंका सूत्रमें प्ररूपण क्यों नहीं किया गया?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघसम्बन्धी भावप्ररूपणासे ही उनके भावोंका परिज्ञान हो जाता है, इसलिए उनके भावोंका सूत्रमें पृथक् निरूपण नहीं किया गया।

---

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणां मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत्। स. सि. १, ८.

देवगदीए देवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादि[ट्ठि] त्ति ओघं ॥ २३ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाणं पारिणामिएण, सम्मामिच्छादिट्ठीणं खओवसमिएण, असंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमिएहि भावेहि ओ[घ] मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीहि साधम्मुवलंभा।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी सम्मामिच्छादिट्ठी ओघं ॥ २४ ॥

कुदो ? एदेसिं चदुगुणट्ठाणाणं सव्वपयारेण ओघादो भेदाभावा।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २५ ॥

कुदो ? तत्थ उवसम-वेदगसम्मत्ताणं दोण्हं चेव संभवादो। खइओ भावो एत्थ

देवगतिमें देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि तक भाव ओघके समान हैं ॥ २३ ॥

क्योंकि, देवमिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, देवसासादनसम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, देवसम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके क्षायोपशमिकभावसे और देवअसंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक तथा क्षायोपशमिक भावोंसे ओघ मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि आदिके भावोंके साथ समानता पाई जाती है।

भवनवासी, वानव्यन्तर और ज्योतिष्क देव तथा देवियां, तथा सौधर्म-ईशान कल्पवासिनी देवियां, इनके मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ २४ ॥

क्योंकि, इन सूत्रोक्त गुणस्थानोंका सब प्रकार ओघसे कोई भेद नहीं है।

असंयतसम्यग्दृष्टि उक्त देव और देवियोंके कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है और क्षायोपशमिक भाव है ॥ २५ ॥

क्योंकि, उनमें उपशमसम्यक्त्व और क्षायोपशमिकसम्यक्त्व, ये दो ही पाये जाते हैं।

[illegible]

विण्ण परूविदो ? ण, भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसिय विदियादिछपुढविणेरइय सव्व विगलिंदिय-लद्धिअपज्जत्तित्थीवेदेसु सम्मादिट्ठीणमुववादाभावा, मणुसगइवदिरित्तण्णगईसु दंसणमोहणीयस्स खवणाभावा च ।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २६ ॥

सुगममेदं ।

सोधम्मीसाणप्पहुडि जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ २७ ॥

कुदो ? एत्थतणगुणट्ठाणाणं ओघचदुगुणट्ठाणेहिंतो अप्पिदभावेहि भेदाभावा ।

अणुदिसादि जाव सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, ओवसमिओ वा खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ २८ ॥

शंका—उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव, द्वितीयादि छह पृथिवियोंके नारकी, सब विकलेन्द्रिय, सब लब्ध्यपर्याप्तक और स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंकी उत्पत्ति नहीं होती है, तथा मनुष्यगतिके अतिरिक्त अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है, इसलिए उक्त भवनत्रिक आदि देव और देवियोंमें क्षायिकभाव नहीं बतलाया गया ।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देव और देवियोंका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ २६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सौधर्म-ईशानकल्पसे लेकर नव ग्रैवेयक पर्यंत विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ २७ ॥

क्योंकि, सौधर्मादि विमानवासी चारों गुणस्थानवर्ती देवोंके ओघसम्बन्धी चारों गुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है ।

अनुदिश आदिसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भी है, क्षायिक भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ २८ ॥

तं जहा- वेदगसम्माइट्ठीणं खओवसमिओ भावो, खइयसम्माइट्ठीणं खइओ, उवसमसम्माइट्ठीणं ओवसमिओ भावो। तत्थ मिच्छाइट्ठीणमभावे संते कधमुवसमसम्माइट्ठीणं संभवो, कारणाभावे कज्जस्स उप्पत्तिविरोहादो? ण एस दोसो, उवसमसम्मत्तेण सह उवसमसेढिं चडंत-ओदरंताणं संजदाणं कालं करिय देवेसुप्पण्णाणमुवसमसम्मत्तुवलंभा। तिसु ट्ठाणेसु पउत्तो वासद्दो अणत्थओ, एगेणेव इट्ठकज्जसिद्धीदो? ण, मंदबुद्धिसिस्साणुग्गहट्ठत्तादो।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ २९ ॥

सुगममेदं।

एवं गइमग्गणा समत्ता।

इंदियाणुवादेण पंचिंदियपज्जत्तएसु मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३० ॥

जैसे- वेदकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायोपशमिक भाव, क्षायिकसम्यग्दृष्टि देवोंके क्षायिक भाव और उपशमसम्यग्दृष्टि देवोंके औपशमिक भाव होता है।

शंका— अनुदिश आदि विमानोंमें मिथ्यादृष्टि जीवोंका अभाव होते हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंका होना कैसे सम्भव है, क्योंकि, कारणके अभाव होनेपर कार्यकी उत्पत्तिका विरोध है?

समाधान— यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणी पर चढ़ते और उतरते हुए मरणकर देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयतोंके उपशमसम्यक्त्व पाया जाता है।

शंका— सूत्रमें तीन स्थानोंपर प्रयुक्त हुआ 'वा' शब्द अनर्थक है, क्योंकि, एक ही 'वा' शब्दसे इष्ट कार्यकी सिद्धि हो जाती है?

समाधान— नहीं, क्योंकि, मन्दबुद्धि शिष्योंके अनुग्रहार्थ सूत्रमें तीन स्थानोंपर 'वा' शब्दका प्रयोग किया गया है।

किन्तु उक्त असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका असंयतत्व औदयिकभावसे है ॥ २९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

इन्द्रियमार्गणाके अनुवादसे पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ३० ॥

---

१ इन्द्रियानुवादेन पञ्चेन्द्रियपर्याप्तकेषु [illegible] । पञ्चेन्द्रियेषु [illegible] । स. सि. १, ८

कुदो ? एत्थतणगुणट्ठाणाणमोघगुणट्ठाणेहिंतो अप्पिदभाव पडि भेदाभावा। एइंदिय-बेइंदिय-तेइंदिय चउरिंदिय पंचिंदियअपज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं भावो किण्ण परूविदो ? ण एस दोसो, परूवणाए विणा वि तत्थ भावोवलद्धीदो। परूवणा कीरदे परावबोहणट्ठं, ण च अवगयअट्ठपरूवणा फलवंता, परूवणाकज्जस्स अवगमस्स पुव्वमेवुप्पण्णत्तादो।

एवमिंदियमग्गणा समत्ता।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ३१ ॥

कुदो ? ओघगुणट्ठाणेहिंतो एत्थतणगुणट्ठाणाणमप्पिदभावेहि भेदाभावा। सव्व-पुढवी-सव्वआउ-सव्वतेउ-सव्ववाउ-सव्ववणप्फदि तसअपज्जत्तमिच्छादिट्ठीणं भावपरूवणा सुत्ते ण कदा, अवगदपरूवणाए फलाभावा। तस-तसपज्जत्तगुणट्ठाणभावो ओघादो चेव णज्जदि त्ति तब्भावपरूवणमणत्थयमिदि तप्परूवणं पि मा किज्जदु त्ति भणिदे ण, तत्थ

क्योंकि, पंचेन्द्रियपर्याप्तकोंमें होनेवाले गुणस्थानोंका ओघगुणस्थानोंकी अपेक्षा विवक्षित भावोंके प्रति कोई भेद नहीं है।

शंका—यहांपर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय अपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवोंके भावोंकी प्ररूपणा क्यों नहीं की ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, प्ररूपणाके विना भी उनमें होनेवाले भावोंका ज्ञान पाया जाता है। प्ररूपणा दूसरोंके परिज्ञानके लिये की जाती है, किन्तु जाने हुए अर्थकी प्ररूपणा फलवती नहीं होती है, क्योंकि, प्ररूपणाका कार्यभूत ज्ञान प्ररूपणा करनेके पूर्वमें ही उत्पन्न हो चुका है।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३१ ॥

क्योंकि, ओघगुणस्थानोंकी अपेक्षा त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें होनेवाले गुणस्थानोंका विवक्षित भावोंके साथ कोई भेद नहीं है। सर्व पृथिवीकायिक, सर्व जलकायिक, सर्व तेजस्कायिक, सर्व वायुकायिक, सर्व वनस्पतिकायिक और त्रस लब्ध्यपर्याप्तक मिथ्यादृष्टि जीवोंकी भावप्ररूपणा सूत्रमें नहीं की गई है क्योंकि, जाने हुए भावोंकी प्ररूपणा करनेमें कोई फल नहीं है।

शंका—त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्त जीवोंमें संभव गुणस्थानोंके भाव ओघसे ही ज्ञात हो जाते हैं, इसलिए उनके भावोंका प्ररूपण करना अनर्थक है, अतः उनका प्ररूपण भी नहीं करना चाहिए ?

---

१ कायानुवादेन स्थावरकायिकानामौदयिको भावः। त्रसकायिकानां सामान्यमेव। स. सि. १, ८

बहूसु गुणट्ठाणेसु संतेसु किण्णु कस्सइ अण्णो भावो होदि, ण होदि त्ति संदेहो मा होदि त्ति तप्पडिसेहट्ठं तप्परूवणाकरणादो ।

एवं कायमग्गणा समत्ता ।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ३२ ॥

सुगममेदं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठीणं ओघं ॥ ३३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ वा खओवसमिओ वा भावो ॥ ३४ ॥

कुदो ? खइय-वेदगसम्मादिट्ठीणं देव-णेरइय-मणुसाणं तिरिक्ख-मणुसेसु उप्पज्ज

समाधान—नहीं, क्योंकि, त्रसकायिक और त्रसकायिकपर्याप्तकोंमें बहुतसे गुणस्थानोंके होनेपर क्या किसी जीवके कोई अन्य भाव होता है, अथवा नहीं होता है, इस प्रकारका सन्देह न होवे, इस कारण उसके प्रतिषेध करनेके लिए उनके भावोंकी प्ररूपणा की गई है ।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई ।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भाव ओघके समान हैं ॥ ३३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव भी है और क्षायोपशमिक भाव भी है ॥ ३४ ॥

क्योंकि, तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टि तथा वेदक

---

१ योगानुवादेन कायवाङ्मानसयोगिनां मिथ्यादृष्ट्यादिसयोगकेवल्यन्तानामयोगकेवलिनां च सामान्यवत् ।

णाणाणुवलंभा। ओवसमिओ भावो एत्थ किण्ण परूविदो ? ण, चउगइउवसमसम्मादिट्ठीणं मरणाभावादो ओरालियमिस्सम्हि उवसमसम्मत्तस्सुवलंभाभावा। उवसमसेडिं चडंत ओअरंतसंजदाणमुवसमसम्मत्तेण मरणं अत्थि त्ति चे सच्चमत्थि, किंतु ण ते उवसमसम्मत्तेण ओरालियमिस्सकायजोगिणो होंति, देवगदिं मोत्तूण तेसिमण्णत्थ उप्पत्तीए अभावा।

ओदइएण भावेण पुणो असजदो ॥ ३५ ॥

सुगममद।

सजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥ ३६ ॥

एदं पि सुगमं।

वेउव्वियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघभंगो ॥ ३७ ॥

सम्यग्दृष्टि देव, नारकी और मनुष्य पाये जाते हैं।

शंका—यहां, अर्थात् औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें, औपशमिकभाव क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों गतियोंके उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका मरण नहीं होनेसे औदारिकमिश्रकाययोगमें उपशमसम्यक्त्वका सद्भाव नहीं पाया जाता।

शंका—उपशमश्रेणीपर चढ़ते और उतरते हुए संयत जीवोंका उपशमसम्यक्त्वके साथ तो मरण पाया जाता है ?

समाधान—यह कथन सत्य है, किन्तु उपशमश्रेणीमें मरनेवाले वे जीव उपशमसम्यक्त्वके साथ औदारिकमिश्रकाययोगी नहीं होते हैं, क्योंकि, देवगतिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्तिका अभाव है।

किन्तु औदारिकमिश्रकाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

औदारिकमिश्रकाययोगी सयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

वैक्रियिककाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ३७ ॥

एदं पि सुगमं ।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजदसम्मादिट्ठी ओघं ॥ ३८ ॥

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणसम्मादिट्ठीणं पारिणामिएण, असंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि ओघमिच्छादिट्ठिआदीहि साधम्मुवलंभा ।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ३९ ॥

कुदो ? चारित्तावरणचदुसंजलण-सत्तणोकसायाणमुदए संते वि पमादाणुविद्धसंजमुवलंभा । कधमेत्थ खओवसमो ? पत्तोदयएक्कारसचारित्तमोहणीयपयडिदेसघादिफद्दयाणमुवसमसण्णा, णिरवसेसेण चारित्तघायणसत्तीए तत्थुवसमुवलंभा । तेसिं चेव सव्वघादिफद्दयाणं खयसण्णा, णट्ठोदयभावत्तादो । तेहि दोहि वि उप्पण्णो संजमो खओ-

यह सूत्र भी सुगम है ।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और असंयतसम्यग्दृष्टि ये भाव ओघके समान हैं ॥ ३८ ॥

क्योंकि, वैक्रियिकमिश्रकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, तथा असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा ओघ मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है ।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ३९ ॥

क्योंकि, यथाख्यातचारित्रके आवरण करनेवाले चारों संज्वलन और सातों नोकषायोंके उदय होने पर भी प्रमादयुक्त संयम पाया जाता है ।

शंका—यहां पर क्षायोपशमिकभाव कैसे कहा ?

समाधान—आहारक और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें क्षायोपशमिकभाव होनेका कारण यह है कि उदयको प्राप्त चार संज्वलन और सात नोकषाय इन ग्यारह चारित्रमोहनीय प्रकृतियोंके देशघाती स्पर्धकोंकी उपशमसंज्ञा है, क्योंकि सम्पूर्णरूपसे चारित्रको घातनेकी शक्तिका यहां पर उपशम पाया जाता है । तथा उन्हीं ग्यारह [illegible] के [illegible] सर्वघाती [illegible] क्षयसंज्ञा है, क्योंकि यहां पर उनका उदय [illegible] और उपशम इन दोनोंसे उत्पन्न होनेवाला [illegible]

समिओ। अथवा एक्कारसकम्माणमुदयस्सेव खओवसमसण्णा। कुदो? चारित्तघायण सत्तीए अभावस्सेव तव्ववएसादो। तेण उप्पण्ण इदि खओवसमिओ पमादाणुविद्धसंजमो।

कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठी सासणसम्मादिट्ठी असंजद-सम्मादिट्ठी सजोगिकेवली ओघं ॥ ४० ॥

कुदो? मिच्छादिट्ठीणमोदइएण, सासणाणं पारिणामिएण, कम्मइयकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीणं ओवसमिय-खइय-खओवसमियभावेहि, सजोगिकेवलीणं खइएण भावेण ओघम्मि[1] गदगुणट्ठाणेहि साधम्मुवलंभा।

एवं जोगमग्गणा समत्ता।

वेदाणुवादेण इत्थिवेद-पुरिसवेद-णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठि-प्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं[2] ॥ ४१ ॥

सुगममेदं, एदस्सट्ठपरूवणाए विणा वि अत्थोवलद्धीदो।

संयम क्षायोपशमिक कहलाता है। अथवा, चारित्रमोहसम्बन्धी उक्त ग्यारह कर्मप्रकृतियोंके उदयकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है, क्योंकि, चारित्रके घातनकी शक्तिके अभावकी ही क्षयोपशमसंज्ञा है। इस प्रकारके क्षयोपशमसे उत्पन्न होनेवाला प्रमादयुक्त संयम क्षायोपशमिक है।

कार्मणकाययोगियोंमें मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि, असंयतसम्यग्दृष्टि और सयोगिकेवली ये भाव ओघके समान हैं ॥ ४० ॥

क्योंकि, कार्मणकाययोगी मिथ्यादृष्टियोंके औदयिकभावसे, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके पारिणामिकभावसे, असंयतसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक भावोंकी अपेक्षा, तथा सयोगिकेवलियोंके क्षायिकभावोंकी अपेक्षा ओघमें कहे गये गुणस्थानोंके भावोंके साथ समानता पाई जाती है।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदी, पुरुषवेदी और नपुंसकवेदियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४१ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, इसके अर्थकी प्ररूपणाके विना भी अर्थका ज्ञान हो जाता है।

---

१ प्रतिषु 'ओघं पि' इति पाठः। २ वेदानुवादेन स्त्रीपुंनपुंसकवेदानां ×× सामान्यवत्। स. सि. १, ८

अवगदवेदएसु अणियट्टिप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं ॥ ४२ ॥

एत्थ चोदगो भणदि- जोणि-मेहणादीहि समण्णिदं सरीरं वेदो, ण तस्स विणासो अत्थि, संजदाणं मरणप्पसंगा। ण भाववेदविणासो वि अत्थि, सरीरे अविणट्ठे तब्भावस्स विणासविरोहा। तदो णावगदवेदत्तं जुज्जदे इदि? एत्थ परिहारो उच्चदे- ण सरीरमित्थि पुरिसवेदो, णामकम्मजणिदस्स सरीरस्स मोहणीयत्तविरोहा। ण मोहणीयजणिदमवि सरीरं, जीवविवाइणो मोहणीयस्स पोग्गलविवाइत्तविरोहा। ण सरीरभावो वि वेदो, तस्स तत्तो पुधभूदस्स अणुवलंभा। परिसेसादो मोहणीयदव्वकम्मक्खंधो तज्जणिदजीवपरिणामो वा वेदो। तत्थ तज्जणिदजीवपरिणामस्स वा परिणामेण सह कम्मक्खंधस्स वा अभावेण अवगदवेदो होदि त्ति तेण णेस दोसो त्ति सिद्धं। सेसं सुगमं।

एवं वेदमग्गणा समत्ता।

अपगतवेदियोंमें अनिवृत्तिकरणसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ४२ ॥

शंका— यहांपर शंकाकार कहता है कि योनि और लिंग आदिसे संयुक्त शरीर वेद कहलाता है। सो अपगतवेदियोंके इस प्रकारके वेदका विनाश नहीं होता है, क्योंकि, यदि योनि, लिंग आदिसे समन्वित शरीरका विनाश माना जाय, तो अपगतवेदी संयतोंके मरणका प्रसंग प्राप्त होगा। इसी प्रकार अपगतवेदी जीवोंके भाववेदका विनाश भी नहीं है, क्योंकि, जब तक शरीरका विनाश नहीं होता, तब तक शरीरके धर्मका विनाश माननेमें विरोध आता है। इसलिए अपगतवेदता युक्तिसंगत नहीं है?

समाधान— अब यहां उपर्युक्त शंकाका परिहार कहते हैं- न तो शरीर, स्त्री या पुरुष वेद है, क्योंकि, नामकर्मसे उत्पन्न होनेवाले शरीरके मोहनीयपनेका विरोध है। और न शरीर मोहनीयकर्मसे ही उत्पन्न होता है, क्योंकि, जीवविपाकी मोहनीयकर्मके पुद्गलविपाकी होनेका विरोध है। न शरीरका धर्म ही वेद है, क्योंकि, शरीरसे पृथग्भूत वेद पाया नहीं जाता। पारिशेष न्यायसे मोहनीयके द्रव्यकर्मस्कंधको, अथवा मोहकर्मसे उत्पन्न होनेवाले जीवके परिणामको वेद कहते हैं। उनमें वेदजनित जीवके परिणामका, अथवा परिणामके साथ मोहकर्मस्कंधका अभाव होनेसे जीव अपगतवेदी होता है। इसलिए अपगतवेदता माननेमें उपर्युक्त कोई दोष नहीं आता है, यह सिद्ध हुआ।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई।

१ [illegible] १, ४

कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा ओघं ॥ ४३ ॥

सुगममेदं।

अकसाईसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ ४४ ॥

चोदओ भणदि— कसाओ णाम जीवगुणो, ण तस्स विणासो अत्थि, णाण-दंसणाणमिव। विणासे वा जीवस्स विणासेण होदव्वं, णाण-दंसणविणासमणत्र। तदो ण अकसायत्तं घडदे इदि? होदु णाण-दंसणाणं विणासम्हि जीवविणासो, तल्लक्खणत्तादो। ण कसाओ जीवस्स लक्खणं, कम्मजणिदस्स तल्लक्खणत्तविरोहादो। ण कसायाणं कम्मजणिदत्तमसिद्धं, कसायवड्डीए जीवलक्खणणाणहाणिअण्णहाणुववत्तीदो तस्स कम्मजणिदत्तसिद्धीदो। ण च गुणो गुणंतरविरोही, अण्णत्थ तहाणुवलंभा। सेसं सुगमं।

एवं कसायमग्गणा समत्ता।

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय उपशामक और क्षपक गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ४४ ॥

शंका— यहां शंकाकार कहता है कि कषाय नाम जीवके गुणका है। इसलिए उसका विनाश नहीं हो सकता, जिस प्रकार कि ज्ञान और दर्शन, इन दोनों जीवके गुणोंका विनाश नहीं होता है। यदि जीवके गुणोंका विनाश माना जाय, तो ज्ञान और दर्शनके विनाशके समान जीवका भी विनाश हो जाना चाहिए। इसलिए सूत्रमें कही गई अकषायता घटित नहीं होती है?

समाधान— ज्ञान और दर्शनके विनाश होनेपर जीवका विनाश भले ही हो जावे, क्योंकि वे जीवके लक्षण हैं। किन्तु कषाय तो जीवका लक्षण नहीं है, क्योंकि कर्मजनित कषायको जीवका लक्षण माननेमें विरोध आता है। और न कषायोंका कर्मसे उत्पन्न होना असिद्ध है, क्योंकि, कषायोंकी वृद्धि होनेपर जीवके लक्षणभूत ज्ञानकी हानि अन्यथा बन नहीं सकती है। इसलिए कषायका कर्मसे उत्पन्न होना सिद्ध है। तथा गुण गुणान्तरका विरोधी नहीं होता, क्योंकि अन्यत्र वैसा देखा नहीं जाता।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई।

१ [illegible]

२ [illegible]

दोहिं मि अक्कमेण अणुविद्धस्स सजदासंजदो व्व पत्तजच्चतरस्स णाणेसु अण्णाणेसु वा अत्थित्तविरोहा। सेस सुगम।

आभिणिवोहिय सुद ओधिणाणीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था ओघं ॥ ४६ ॥

सुगममेद, ओघादो भाव पडि भेदाभावा।

मणपज्जवणाणीसु पमत्तसजदप्पहुडि जाव खीणकसायवीदराग-छदुमत्था ओघ ॥ ४७ ॥

एद पि सुगम।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली ओघ ॥ ४८ ॥

कुदो? खइयभाव पडि भेदाभावा। सजोगो त्ति को भावो? अणादिपारिणामिओ भावो। णोवसमिओ, मोहणीए अणुवसंते वि जोगुवलभा। ण खइओ, अणप्पसरूवस्स कम्माण खएणुप्पत्तिविरोहा। ण घादिकम्मोदयजणिओ, णट्ठे वि घादिकम्मोदए केव-

---

होनेके कारण सयतासयतके समान भिन्नजातीयताको प्राप्त सम्यग्मिथ्यात्वका पाचों ज्ञानोंमें, अथवा तीनों अज्ञानोंमें अस्तित्व होनेका विरोध है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

आभिनिबोधिकज्ञानी, श्रुतज्ञानी और अवधिज्ञानियोंमें असयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ४६ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, ज्ञानमार्गणामें ओघसे भावकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है।

मन पर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसयतसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव ओघके समान है ॥ ४७ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली भाव ओघके समान है ॥ ४८ ॥

क्योंकि, क्षायिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है।

शंका—'सयोग' यह कौनसा भाव है?

समाधान—'सयोग' यह अनादि पारिणामिक भाव है। इसका कारण यह है कि यह योग न तो औपशमिक भाव है, क्योंकि, मोहनीयकर्मके उपशम नहीं होने पर भी योग पाया जाता है। न वह क्षायिक भाव है, क्योंकि, आत्मस्वरूपसे रहित योगकी कर्मोंके क्षयसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। योग घातिकर्मोदय जनित भी नहीं है,

---

१ ××× मतिश्रुतावधिमन पर्ययकेवलज्ञानिनां च सामान्यवत्। स सि १, ८

लिम्हि जोगुवलंभा। णो अघादिकम्मोदयजणिदो वि, संते वि अघादिकम्मोदए अजोगिम्हि जोगाणुवलंभा। ण सरीरणामकम्मोदयजणिदो वि, पोग्गलविवाइयाणं जीवपरिफद्दणहेउत्त-विरोहा। कम्मइयसरीरं ण पोग्गलविवाई, तदो पोग्गलाणं वण्ण-रस-गंध-फास-संठाण-गमणादीणमणुवलंभा[1]। तदुप्पाइदो जोगो होदु चे ण, कम्मइयसरीरं पि पोग्गलविवाई चेव, सव्वकम्माणमासयत्तादो। कम्मइओदयविणट्ठसमए चेव जोगविणासदंसणादो कम्मइयसरीरजणिदो जोगो चे ण, अघाइकम्मोदयविणासाणंतरं विणस्संतभवियत्तस्स पारिणामियस्स ओदइयत्तप्पसंगा। तदो सिद्धं जोगस्स पारिणामियत्तं। अथवा ओदइओ जोगो, सरीरणामकम्मोदयविणासाणंतरं जोगविणासुवलंभा। ण च भवियत्तेण विउवचारो, कम्मसंबंधविरोहिणो तस्स कम्मजणिदत्तविरोहा। सेसं सुगमं।

एवं णाणमग्गणा समत्ता।

क्योंकि, घातिकर्मोदयके नष्ट होने पर भी सयोगिकेवलीमें योगका सद्भाव पाया जाता है। न योग अघातिकर्मोदय जनित भी है, क्योंकि, अघातिकर्मोदयके रहने पर भी अयोगिकेवलीमें योग नहीं पाया जाता। योग शरीरनामकर्मोदय जनित भी नहीं है, क्योंकि, पुद्गलविपाकी प्रकृतियोंके जीव परिस्पन्दनका कारण होनेमें विरोध है।

शंका—कार्मणशरीर पुद्गलविपाकी नहीं है, क्योंकि, उससे पुद्गलोंके वर्ण, रस, गन्ध, स्पर्श और संस्थान आदिका आगमन आदि नहीं पाया जाता है। इसलिए योगको कार्मणशरीरसे उत्पन्न होनेवाला मान लेना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सर्व कर्मोंका आश्रय होनेसे कार्मणशरीर भी पुद्गलविपाकी ही है। इसका कारण यह है कि वह सब कर्मोंका आश्रय या आधार है।

शंका—कार्मणशरीरके उदय विनष्ट होनेके समयमें ही योगका विनाश देखा जाता है। इसलिए योग कार्मणशरीर जनित है, ऐसा मानना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यदि ऐसा माना जाय तो अघातिकर्मोदयके विनाश होनेके अनन्तर ही विनष्ट होनेवाले पारिणामिक भव्यत्वभावके भी औदयिकपनेका प्रसंग प्राप्त होगा।

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचनसे योगके पारिणामिकपना सिद्ध हुआ। अथवा, 'योग' यह औदयिकभाव है, क्योंकि, शरीरनामकर्मके उदयका विनाश होनेके पश्चात् ही योगका विनाश पाया जाता है। और, ऐसा माननेपर भव्यत्वभावके साथ व्यभिचार भी नहीं आता है, क्योंकि, कर्मसम्बन्धके विरोधी पारिणामिकभावकी कर्मसे उत्पत्ति माननेमें विरोध आता है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

---

१ निरुपभोगमन्त्यम्। त सू २, ४४। अन्ते भवमन्त्यम्। किं तत्? कार्मणम्। इन्द्रियप्रणालिकया शब्दादीनामुपलब्धिरुपभोगः। तदभावान्निरुपभोगम्। स सि २, ४४

संजमाणुवादेण संजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अजोगिकेवली ओघं[1] ॥ ४९ ॥

सुगममेदं ।

सामाइयछेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु पमत्तसंजदप्पहुडि जाव अणियट्टि त्ति ओघं ॥ ५० ॥

एदं पि सुगमं ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु पमत्त-अप्पमत्तसंजदा ओघं ॥ ५१ ॥

कुदो ? खओवसमियं भावं पडि विसेसाभावा । पमत्तापमत्तसंजदेसु अण्णे वि भावा संति, एत्थ ते किण्ण परूविदा ? ण, तेसिं पमत्तापमत्तसंजमत्ताभावा । पमत्तापमत्तसंजदाणं भावेसु पुच्छिदेसु ण हि सम्मत्तादिभावाणं परूवणा णाओववण्णोत्ति[2] ।

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइया उवसमा खवा ओघं ॥ ५२ ॥

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ४९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयतसे लेकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५० ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत ये भाव ओघके समान हैं ॥ ५१ ॥

क्योंकि, क्षायोपशमिक भावके प्रति दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है।

शंका—प्रमत्त और अप्रमत्त संयत जीवोंमें अन्य भाव भी होते हैं, यहांपर वे क्यों नहीं कहे ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वे भाव प्रमत्त और अप्रमत्त संयम होनेके कारण नहीं हैं। दूसरी बात यह है कि प्रमत्त और अप्रमत्तसंयतोंके भाव पूछनेपर सम्यक्त्व आदि भावोंकी प्ररूपणा करना न्याय संगत नहीं है।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक और क्षपक भाव ओघके समान हैं ॥ ५२ ॥

---

१ संयमानुवादेन सर्वेषां संयतानां ××× सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ प्रतिषु णाओववण्णो । इति पाठ ।

उवसामगाणमुवसमिओ भावो, खवगाणं खइओ भावो त्ति उत्तं होदि।

जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु चदुट्ठाणी ओघं ॥ ५३ ॥

सुगममेदं।

संजदासंजदा ओघं ॥ ५४ ॥

एदं पि सुगमं।

असंजदेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठि त्ति ओघं ॥ ५५ ॥

सुगममेदं, पुव्वं परूविदत्तादो।

एवं संजममग्गणा समत्ता।

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ ५६ ॥

उपशामकोंके औपशमिक भाव और क्षपकोंके क्षायिक भाव होता है, यह अर्थ सूत्रद्वारा कहा गया है।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें उपशान्तकषाय आदि चारों गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

संयतासंयत भाव ओघके समान है ॥ ५४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

असंयतोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५५ ॥

यह सूत्र सुगम है, क्योंकि, पहले प्ररूपण किया जा चुका है।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई।

दर्शनमार्गणाके अनुसार चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ५६ ॥

[illegible]

[illegible]

[illegible]

कुदो? मिच्छादिट्ठिप्पहुडि खीणकसायपज्जवसाणगुणट्ठाणाणं चक्खु-अचक्खु-
णविरहियाणमणुवलंभा।

ओहिदंसणी ओहिणाणिभंगो ॥ ५७ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ ५८ ॥

एदाणि दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता।

**लेस्साणुवादेण किण्हलेस्सिय-णीललेस्सिय-काउलेस्सिएसु चदु-
णी ओघं[1] ॥ ५९ ॥**

चदुण्हं ठाणाणं समाहारो चदुट्ठाणी। केण समाहारो? एगलेस्साए। सेसं सुगमं।

**तेउलेस्सिय-पम्मलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्त
जदा त्ति ओघं ॥ ६० ॥**

एदं सुगमं।

क्योंकि, मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषाय पर्यंत कोई गुणस्थान चक्षुदर्शन और
चक्षुदर्शनवाले जीवोंसे रहित नहीं पाया जाता है।

अवधिदर्शनी जीवोंके भाव अवधिज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५७ ॥

केवलदर्शनी जीवोंके भाव केवलज्ञानियोंके भावोंके समान हैं ॥ ५८ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई।

लेश्यामार्गणाके अनुवादसे कृष्णलेश्या, नीललेश्या और कापोतलेश्या वालोंमें
आदिके चार गुणस्थानवर्ती भाव ओघके समान हैं ॥ ५९ ॥

चार स्थानोंके समाहारको चतुःस्थानी कहते हैं।

शंका—चारों गुणस्थानोंका समाहार किस अपेक्षासे है?

समाधान—एक लेश्याकी अपेक्षासे है, अर्थात् आदिके चारों गुणस्थानोंमें एकसी
लेश्या पाई जाती है।

शेष सूत्रार्थ सुगम है।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्या वालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अप्रमत्तसंयत गुणस्थान
तकके भाव ओघके समान हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र सुगम है।

१ लेश्यानुवादेन षड्लेश्यानामलेश्यानां च सामान्यवत्। स. सि. १, ८

सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ६१ ॥

सुगममेदं ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ६२ ॥

कुदो ? एत्थतणगुणट्ठाणाणं ओघगुणट्ठाणेहिंतो भवियत्तं पडि भेदाभावा ।

अभवसिद्धिय त्ति को भावो, पारिणामिओ भावो[2] ॥ ६३ ॥

कुदो ? कम्माणमुदएण उवसमेण खएण खओवसमेण वा अभवियत्ताणुप्पत्तीदो । भवियत्तस्स वि पारिणामिओ चेय भावो, कम्माणमुदय-उवसम-खय-खओवसमेहि भवियत्ताणुप्पत्तीदो । गुणट्ठाणस्स भावमभणिय मग्गणट्ठाणभावं परूवेंतस्स कोभिप्पाओ ?

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धिकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, भव्यमार्गणासम्बन्धी गुणस्थानोंका ओघ गुणस्थानोंसे भव्यत्व नामक पारिणामिकभावके प्रति कोई भेद नहीं है ।

अभव्यसिद्धिक यह कौनसा भाव है ? पारिणामिक भाव है ॥ ६३ ॥

क्योंकि, कर्मोंके उदयसे, उपशमसे, क्षयसे, अथवा क्षयोपशमसे अभव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता है । इसी प्रकार भव्यत्व भी पारिणामिक भाव ही है, क्योंकि, कर्मोंके उदय, उपशम, क्षय और क्षयोपशमसे भव्यत्व भाव उत्पन्न नहीं होता ।

शंका—यहांपर गुणस्थानके भावको न कह कर मार्गणास्थानसम्बन्धी भावको प्ररूपण करते हुए आचार्यका क्या अभिप्राय है ?

---

१ भव्यानुवादेन भव्येषु मिथ्यादृष्ट्याद्ययोगकेवल्यन्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८

२ अभव्यानां पारिणामिको भावः । स. सि. १, ८

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघ ॥ ६४ ॥

सुगममेद ।

खइयसम्मादिट्ठीसु असजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खइओ भावो[1] ॥ ६५ ॥

कुदो ? दसणमोहणीयस्स णिम्मूलक्खएणुप्पण्णसम्मत्तादो ।

खइय सम्मत्त[2] ॥ ६६ ॥

खइयसम्मादिट्ठीसु सम्मत्त खइय चेव होदि त्ति अणुत्तसिद्धीदो णेद सुत्तमाढवेदव्व ? ण एस दोसो । कुदो ? ण ताव खइयसम्मादिट्ठी सण्णा खइयस्स सम्मत्तस्स

समाधान—गुणस्थानसम्बन्धी भाव तो विना कहे भी जाना जाता है । किन्तु अभव्यत्व (कौनसा भाव है यह) उपदेशकी अपेक्षा रखता है, क्योंकि, उसके स्वरूपका पहले प्ररूपण नहीं किया गया है । इसलिए यहांपर (गुणस्थानका भाव न कह कर) मार्गणासम्बन्धी भाव कहा है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टियोंमें असयतसम्यग्दृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक भाव ओघके समान हैं ॥ ६४ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ६५ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके निर्मूल क्षयसे क्षायिकसम्यक्त्व उत्पन्न होता है ।

उक्त जीवोंके क्षायिक सम्यक्त्व होता है ॥ ६६ ॥

शका—क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है, यह बात अनुक्त सिद्ध है, इसलिए इस सूत्रका आरम्भ नहीं करना चाहिए ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि यह सज्ञा क्षायिक

१ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेः क्षायिको भाव । स सि १, ८

२ क्षायिकं सम्यक्त्वम् । स सि १, ८

अत्थित्तं गमयदि, तदो भक्खरादिणामस्स अणणुअट्ठस्स वि उवलंभा। ण च अण्णं किंचि खइयसम्मत्तस्स अत्थित्तम्हि चिण्हमत्थि। तदो खइयसम्माइट्ठिस्स खइयं चेव सम्मत्तं होदि त्ति जाणाविदं। अवरं च ण सव्वे सिस्सा उप्पण्णा चेव, किंतु अणुप्पण्णा वि अत्थि। तेहि खइयसम्माइट्ठीणं किमुवसमसम्मत्तं, किं खइयसम्मत्तं, किं वेदगसम्मत्तं होदि त्ति पुच्छिदे एदस्स सुत्तस्स अवयारो जादो, खइयसम्माइट्ठीणं खइयं चेव सम्मत्तं होदि, ण सेससम्मत्ताणि त्ति जाणावणट्ठं अपुव्वकरणक्खवयाणं खइयभावाणं खवगचरित्तस्सेव दंसणमोहक्खवयाणं पि खइयभावाणं तस्संबंधेण वेदयसम्मत्तोदए संते वि सद्दहणसम्मत्तस्स अत्थित्तप्पसंगे तप्पडिसेहट्ठं वा।

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो ॥ ६७ ॥

सुगममेदं।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो ॥ ६८ ॥

सम्यक्त्वके अस्तित्वका ज्ञान नहीं कराती है। इसका कारण यह है कि लोकमें तगर, भास्कर आदि अनन्वर्थ (अन्वर्थशून्य या रूढ) नाम भी पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई चिन्ह क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका है नहीं। इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टिके क्षायिक सम्यक्त्व ही होता है, यह बात इस सूत्रसे ज्ञापित की गई है। दूसरी बात यह भी है कि सभी शिष्य व्युत्पन्न नहीं होते, किन्तु कुछ अव्युत्पन्न भी होते हैं। उनके द्वारा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्या उपशमसम्यक्त्व है, किंवा क्षायिकसम्यक्त्व है, किंवा वेदकसम्यक्त्व होता है, ऐसा पूछने पर क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक ही सम्यक्त्व होता है, शेष दो सम्यक्त्व नहीं होते हैं, इस बातके जतलानेके लिए, अथवा क्षायिकभाववाले अपूर्वकरण गुणस्थानवर्ती क्षपकोंके क्षायिक चारित्रके समान क्षायिकभाववाले भी दर्शनमोहक्षपकोंका आश्रय करते हुए उनके सम्बन्धसे वेदकसम्यक्त्वप्रकृतिके उदय होने पर भी क्षायिकसम्यक्त्वके अस्तित्वका प्रसंग प्राप्त होनेपर उसका प्रतिषेध करनेके लिए इस सूत्रका अवतार हुआ है।

किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ६७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ६८ ॥

[illegible]

[illegible]

कुदो? चारित्तावरणकम्मोदए संते वि जीवसहावचारित्तेगदेसस्स संजमासंजम-पमत्त अप्पमत्तसंजमस्स आविब्भावस्सुवलंभा।

खइयं सम्मत्तं ॥ ६९ ॥

सुगममेदं।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो, ओवसमिओ भावो ॥ ७० ॥

मोहणीयस्सुवसमेणुप्पण्णचरित्तत्तादो, मोहोवसमणहेदुचारित्तसमण्णिदत्तादो च।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७१ ॥

पारद्धदंसणमोहणीयक्खवणो कदकरणिज्जो वा उवसमसेढिं ण चडदि त्ति जाणावणट्ठमेदं सुत्तं भणिदं। सेसं सुगमं।

चदुण्हं खवा सजोगिकेवली अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥ ७२ ॥

क्योंकि, चारित्रावरणकर्मके उदय होने पर भी जीवके स्वभावभूत चारित्रके एक देशरूप संयमासंयम, प्रमत्तसंयम और अप्रमत्तसंयमका (उक्त जीवोंके क्रमशः) आविर्भाव पाया जाता है।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ६९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा भाव है? औपशमिक भाव है ॥ ७० ॥

क्योंकि, उपशान्तकषायके मोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ चारित्र पाया जानेसे और शेष तीन उपशामकोंके मोहोपशमके कारणभूत चारित्रसे समन्वित होनेसे औपशमिकभाव पाया जाता है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों उपशामकोंके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ७१ ॥

दर्शनमोहनीयकर्मके क्षपणको प्रारम्भ करनेवाला जीव अथवा कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव, उपशमश्रेणीपर नहीं चढ़ता है इस बातका ज्ञान करानेके लिए यह सूत्र कहा गया है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि चारों गुणस्थानोंके क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली यह कौनसा भाव है? क्षायिक भाव है ॥ ७२ ॥

१ क्षायिकं सम्यक्त्वम्। स. सि. १, ८.

२ चतुर्षूपशमकेष्वौपशमिको भावः। स. सि. १, ८.

३ क्षायिकं सम्यक्त्वम्। स. सि. १, ८. ४ [illegible] क्षायिको भावः। स. सि. १, ८.

कुदो ? मोहणीयस्स खवणहेदुअपुव्वसण्णिदचारित्तसमण्णिदत्तादो मोहक्खएणुप्पण्णचारित्तादो घादिक्खएणुप्पण्णणवकेवलल्द्धीहिंतो ।

खइयं सम्मत्तं ॥ ७३ ॥

सुगममेदं ।

वेदयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[1] ॥ ७४ ॥

सुगममेदं ।

खओवसमियं सम्मत्तं[2] ॥ ७५ ॥

ओघम्मि असंजदसम्मादिट्ठिस्स तिण्णि भावा सामण्णेण परूविदा, एदं सम्मत्तमोवसमियं खइयं खओवसमियं वेत्ति ण परूविदं। संपहि सम्मत्तमग्गणाए एदं सम्मत्तमोवसमियं खइयं खओवसमियं चेत्ति एदेहि सुत्तेहि जाणाविदं । सेसं सुगमं ।

क्योंकि, अपूर्वकरण आदि तीन क्षपकोंका मोहनीयकर्मके क्षपणके कारणभूत अपूर्वसंज्ञावाले चारित्रसे समन्वित होनेके कारण, क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थके मोहक्षयसे उत्पन्न हुआ चारित्र होनेके कारण, तथा सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके घातिया कर्मोंका क्षय हो जानेसे उत्पन्न नव केवललब्धियोंकी अपेक्षा क्षायिक भाव पाया जाता है।

चारों क्षपक, सयोगिकेवली और अयोगिकेवलीके सम्यग्दर्शन क्षायिक ही होता है ॥ ७३ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ७४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७५ ॥

ओघप्ररूपणामें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके सामान्यसे तीन भाव कहे हैं, किन्तु उसका यह सम्यग्दर्शन औपशमिक है, या क्षायिक है, किंवा क्षायोपशमिक है, यह प्रकट नहीं किया है। अब सम्यक्त्वमार्गणामें असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका यह सम्यग्दर्शन औपशमिकसम्यग्दृष्टियोंके औपशमिक होता है, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायिक होता है और वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक होता है, यह बात इन सूत्रोंसे ज्ञापन की गई है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

---

१ [illegible] २, ४

२ [illegible] २, ५

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[1] ॥ ७६ ॥

अवगयत्थमेदं ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[2] ॥ ७७ ॥

णादट्ठमेयं ।

खओवसमियं सम्मत्तं[3] ॥ ७८ ॥

कुदो ? दंसणमोहोदए संते वि जीवगुणीभूदसद्दहणस्स उप्पत्तीए उवलंभा ।

उवसमसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठि त्ति को भावो, उवसमिओ भावो[4] ॥ ७९ ॥

कुदो ? दंसणमोहुवसमणुप्पण्णसम्मत्तादो ।

उवसामियं सम्मत्तं[5] ॥ ८० ॥

किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टिका असंयतत्व औदयिक भावसे है ॥ ७६ ॥

इस सूत्रका अर्थ जाना हुआ है ।

वेदकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ७७ ॥

इस सूत्रका अर्थ ज्ञात है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन क्षायोपशमिक होता है ॥ ७८ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयके (भेदभूत सम्यक्त्वप्रकृतिके) उदय रहने पर भी जीवके गुणस्वरूप श्रद्धानकी उत्पत्ति पाई जाती है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ७९ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंका सम्यक्त्व दर्शनमोहनीयकर्मके उपशमसे उत्पन्न हुआ है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८० ॥

१ असंयतः पुनरौदयिकेन भावेन । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयतप्रमत्ताप्रमत्तसंयतानां क्षायोपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

३ क्षायोपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

४ औपशमिकसम्यग्दृष्टिषु असंयतसम्यग्दृष्टेरौपशमिको भावः । स. सि. १, ८.

५ औपशमिकं सम्यक्त्वम् । स. सि. १, ८.

ओदइएण भावेण पुणो असंजदो[१] ॥ ८१ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदा त्ति को भावो, खओवसमिओ भावो[२] ॥ ८२ ॥

सुगममेदं ।

उवसमियं सम्मत्तं[३] ॥ ८३ ॥

एदं पि सुगमं ।

चदुण्हमुवसमा त्ति को भावो, उवसमिओ भावो[४] ॥ ८४ ॥

उवसमियं सम्मत्तं[५] ॥ ८५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी ओघं[६] ॥ ८६ ॥

किन्तु उपशमसम्यक्त्वी असंयतसम्यग्दृष्टि जीवका असंयतत्व औदयिक भाव है ॥ ८१ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत यह कौनसा भाव है ? क्षायोपशमिक भाव है ॥ ८२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

अपूर्वकरण आदि चार गुणस्थानोंके उपशमसम्यग्दृष्टि उपशामक यह कौनसा भाव है ? औपशमिक भाव है ॥ ८४ ॥

उक्त जीवोंके सम्यग्दर्शन औपशमिक होता है ॥ ८५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सासादनसम्यग्दृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८६ ॥

१ [illegible] । स. सि. १, ८

२ [illegible] । स. सि. १, ८

३ [illegible] । स. सि. १, ८

४ [illegible] । स. सि. १, ८

५ [illegible] । स. सि. १, ८ ६ [illegible] । स. सि. १, ८

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसा-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ ८९ ॥

सुगममेदं ।

असण्णि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ ९० ॥

कुदो ? णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण असण्णित्तुप्पत्तीदो । असण्णि-गुणट्ठाणभावो किण्ण परूविदो ? ण, उवदेसमंतरेण तदवगमादो ।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव आपके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्यादृष्टि भाव आपके समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ ज्ञात है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ तक भाव आपके समान है ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

असंज्ञी यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

क्योंकि, नोइंद्रियावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंज्ञित्व भाव उत्पन्न होता है ।

शंका— यहांपर असंज्ञी जीवोंके गुणस्थानसम्बन्धी भाव क्यों नहीं बतलाए ?

समाधान— नहीं, क्योंकि उपदेशके विना ही वह ज्ञात हो जाता है ।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई ।

[illegible]

मिच्छादिट्ठी ओघं ॥ ८८ ॥

तिण्णि वि सुत्ताणि अवगयत्थाणि।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणक[illegible] वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ ८९ ॥

सुगममदं।

असण्णि त्ति को भावो, ओदइओ भावो ॥ ९० ॥

कुदो ? णोइंदियावरणस्स सव्वघादिफद्दयाणमुदएण असण्णित्तुप्पत्तीए। असण्णि[illegible] गुणट्ठाणभावो किण्ण परूविदो ? ण, उवदसमंतरेण तदवगमादो।

एवं सण्णिमग्गणा समत्ता।

सम्यग्मिथ्यादृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८७ ॥

मिथ्यादृष्टि भाव ओघके समान है ॥ ८८ ॥

इन तीनों ही सूत्रोंका अर्थ ज्ञात है।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर क्षीणकषायवीतराग छद्मस्थ तक भाव ओघके समान हैं ॥ ८९ ॥

यह सूत्र सुगम है।

असंज्ञी यह कौनसा भाव है ? औदयिक भाव है ॥ ९० ॥

क्योंकि नोइन्द्रियावरणकर्मके सर्वघाती स्पर्धकोंके उदयसे असंज्ञित्व भाव उत्पन्न होता है।

शंका— यहांपर असंज्ञी जीवोंके गुणस्थानसम्बन्धी भावको क्यों नहीं बतलाया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उपदेशके विना ही उसका ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार संज्ञीमार्गणा समाप्त हुई।

आहाराणुवादेण आहारएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सजोगिकेवलि त्ति ओघं[1] ॥ ९१ ॥

सुगममेदं ।

अणाहाराणं कम्मइयभंगो[2] ॥ ९२ ॥

एदं पि सुगमं । कम्मइयादो विसेसपदुप्पायणट्ठं उत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, अजोगिकेवलि त्ति को भावो, खइओ भावो ॥ ९३ ॥

सुगममेदं ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता)

एवं भावाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं[3] ।

आहारमार्गणाके अनुवादसे आहारकोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर सयोगिकेवली तक भाव ओघके समान हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

अनाहारक जीवोंके भाव कार्मणकाययोगियोंके समान हैं ॥ ९२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

कार्मणकाययोगियोंमें विशेषता प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं–

किन्तु विशेषता यह है कि कार्मणकाययोगी अयोगिकेवली यह कौनसा भाव है ? क्षायिक भाव है ॥ ९३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार भावानुगमनामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

---

१ आहारानुवादेन आहारकाणां × × सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ × × अनाहारकाणां च सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

३ भावः परिसमाप्तः । स. सि. १, ८.

अप्पाबहुगाणुगमो

सिरि भगवंत पुप्फदंत भूदबलि पणीदो

छक्खंडागमो

सिरि वीरसेणाइरिय विरइय धवला टीका समण्णिदो

तस्स

पढमखंडे जीवट्ठाणे

अप्पाबहुगाणुगमो

केवलणाणुज्जोइयलोयालोए जिणे णमंसित्ता ।
अप्पबहुआणिओअं जहोवएसं परूवेमो ॥

बहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो, ओघेण आदेसेण य ॥१॥

ाम ट्ठवणा-दव्व भावभेएण अप्पाबहुअं चउव्विहं। अप्पाबहुअसद्दो णामप्पा-
हादो एदस्स बहुत्तमप्पत्तं वा एदमिदि एयत्तज्झारोवेण ट्ठविदं ठवणप्पा
बहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण। अप्पाबहुअपाहुडजाणओ अणुवजुत्तो

ज्ञानके द्वारा लोक और अलोकको प्रकाशित करनेवाले श्री जिनेन्द्र देवोंको
: जिस प्रकारसे उपदेश प्राप्त हुआ है, उसके अनुसार अल्पबहुत्व अनुयोग
करते हैं ॥

हुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेश-

स्थापना द्रव्य और भावके भेदसे अल्पबहुत्व चार प्रकारका है। उनमेंसे
द नामअल्पबहुत्व है। यह इससे बहुत है, अथवा यह इससे अल्प है,
त्वके अध्यारोपसे स्थापना करना स्थापनाअल्पबहुत्व है। द्रव्यअल्प
और नोआगमके भेदसे दो प्रकारका है। जो अल्पबहुत्व विषयक प्राभृतको
परन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित है उसे आगमद्रव्य अल्पबहुत्व

बहुत्वमुपवर्ण्यते। तद् द्विविधं सामान्येन विशेषेण च। स सि १. ८

आगमदव्वप्पाबहुअं । णोआगमदव्वप्पाबहुअं तिविहं जाणुअसरीर-भविय तव्वदिरित्तभेएण । तत्थ जाणुअसरीरं भविय वट्टमाण समुज्झादमिदि तिविहमवि अवगयत्थं । भविय भविस्स-काले अप्पाबहुअपाहुडजाणओ । तव्वदिरित्तअप्पाबहुअं तिविहं सचित्तमचित्तं मिस्समिदि । जीवदव्वप्पाबहुअं सचित्तं । सेसदव्वप्पाबहुअमचित्तं । दोण्हं पि अप्पाबहुअं मिस्सं । भावप्पाबहुअं दुविहं आगम-णोआगमभेएण । अप्पाबहुअपाहुडजाणओ उवजुत्तो आगम-भावप्पाबहुअं । णाण दंसणाणुभाग-जोगादिविसयं णोआगमभावप्पाबहुअं ।

एदेसु अप्पाबहुएसु केण पयदं ? सचित्तदव्वप्पाबहुएण पयदं । किमप्पाबहुअं ? संखाधम्मो, एदम्हादो एदं तिगुणं चदुगुणमिदि बुद्धिगेज्झो । कस्सप्पाबहुअं ? जीव-दव्वस्स, धम्मिवदिरित्तसंखाधम्माणुवलंभा । केणप्पाबहुअं ? पारिणामिएण भावेण ।

कहते हैं । नोआगमद्रव्यअल्पबहुत्व ज्ञायकशरीर, भावी और तद्व्यतिरिक्तके भेदसे तीन प्रकारका है । उनमेंसे भावी, वर्तमान और अतीत, इन तीनों ही प्रकारके ज्ञायकशरीरका अर्थ जाना जा चुका है । जो भविष्यकालमें अल्पबहुत्व प्राभृतका जाननेवाला होगा, उसे भावी नोआगमद्रव्य अल्पबहुत्वनिक्षेप कहते हैं । तद्व्यतिरिक्त अल्पबहुत्व तीन प्रकारका है– सचित्त, अचित्त और मिश्र । जीवद्रव्य विषयक अल्पबहुत्व सचित्त है, शेष द्रव्य विषयक अल्पबहुत्व अचित्त है, और इन दोनोंका अल्पबहुत्व मिश्र है । आगम और नोआगमके भेदसे भाव अल्पबहुत्व दो प्रकारका है । जो अल्पबहुत्व प्राभृतका जानने-वाला है और वर्तमानमें उसके उपयोगसे युक्त है उसे आगमभाव अल्पबहुत्व कहते हैं । आत्माके ज्ञान और दर्शनको, तथा पुद्गलकर्मोंके अनुभाग और योगादिको विषय करने-वाला नोआगमभाव अल्पबहुत्व है ।

शंका—इन अल्पबहुत्वोंमेंसे प्रकृतमें किससे प्रयोजन है ?

समाधान—प्रकृतमें सचित्त द्रव्यके अल्पबहुत्वसे प्रयोजन है ।

(अब निर्देश, स्वामित्वादि प्रसिद्ध छह अनुयोगद्वारोंसे अल्पबहुत्वका निर्णय किया जाता है ।)

शंका—अल्पबहुत्व क्या है ?

समाधान—यह उससे तिगुणा है, अथवा चतुगुणा है, इस प्रकार बुद्धिके द्वारा ग्रहण करने योग्य संख्याके धर्मको अल्पबहुत्व कहते हैं ।

शंका—अल्पबहुत्व किसके होता है, अर्थात् अल्पबहुत्वका स्वामी कौन है ?

समाधान—जीवद्रव्यके अल्पबहुत्व होता है, अर्थात् जीवद्रव्य उसका स्वामी है, क्योंकि, धर्मीको छोड़कर संख्याधर्म पृथक् नहीं पाया जाता ।

शंका—अल्पबहुत्व किससे होता है, अर्थात् उसका साधन क्या है ?

समाधान—अल्पबहुत्व पारिणामिक भावसे होता है ।

कत्थप्पाबहुअं ? जीवदव्वे । केवचिरमप्पाबहुअं ? अणादि-अपज्जवसिदं । कुदो ? सव्वेसिं गुणट्ठाणाणमदेणेव पमाणेण सव्वकालमवट्ठाणादो । कइविहमप्पाबहुअं ? मग्गणभेयभिण्ण गुणट्ठाणमेत्तं ।

अप्पं च बहुअं च अप्पाबहुआणि । तेसिमणुगमो अप्पाबहुआणुगमो । तेण अप्पाबहुआणुगमेण णिद्देसो दुविहो होदि ओघो आदेसो त्ति । संगहिदवयणकलावो दव्वट्ठियणिबंधणो ओघो णाम । असंगहिदवयणकलाओ पुव्विल्लत्थंवयवणिबंधो पज्जवट्ठियणिबंधणो आदेसो णाम ।

ओघेण तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २ ॥

तिसु अद्धासु त्ति वयणं चत्तारि अद्धाओ पडिसेहट्ठं । उवसमा त्ति वयणं खवयादिपडिसेहफलं । पवेसणेणेत्ति वयणं संचयपडिसेहफलं । तुल्ला त्ति वयणेण विसरिसत्तपडिसेहो कदो । आदिमेसु तिसु गुणट्ठाणेसु उवसामया पवेसणेण तुल्ला सरिसा । कुदो ?

शंका—अल्पबहुत्व किसमें होता है, अर्थात् उसका अधिकरण क्या है ?

समाधान—जीवद्रव्यमें, अथात् जीवद्रव्य अल्पबहुत्वका अधिकरण है ।

शंका—अल्पबहुत्व कितने समय तक होता है ?

समाधान—अल्पबहुत्व अनादि और अनन्त है, क्योंकि, सभी गुणस्थानोंका इसी प्रमाणसे सर्वकाल अवस्थान रहता है ।

शंका—अल्पबहुत्व कितने प्रकारका है ?

समाधान—मार्गणाओंके भेदसे गुणस्थानोंके जितने भेद होते हैं, उतने प्रकारका अल्पबहुत्व होता है ।

अल्प और बहुत्वको अर्थात् हीनता और अधिकताको अल्पबहुत्व कहते हैं । उनका अनुगम अल्पबहुत्वानुगम है । उससे अर्थात् अल्पबहुत्वानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है, ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत है, और जो द्रव्यार्थिकनय निमित्तक है, वह ओघनिर्देश है । जिसमें सम्पूर्ण वचन-कलाप संगृहीत नहीं है, जो पूर्वोक्त अर्थावयव अर्थात् ओघानुगममें बतलाये गये भेदोंके आश्रित है और जो पर्यायार्थिकनय निमित्तक है वह आदेशनिर्देश है ।

ओघनिर्देशसे अपूर्वकरणादि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य हैं, तथा अन्य सब गुणस्थानोंके प्रमाणसे अल्प हैं ॥ २ ॥

'तीनों गुणस्थानोंमें' यह वचन चार उपशामक गुणस्थानोंके प्रतिषेध करनेके लिए दिया है । 'उपशामक' यह वचन क्षपकादिके प्रतिषेधके लिए दिया है । 'प्रवेशकी अपेक्षा' इस वचनका फल संचयका प्रतिषेध है । 'तुल्य' इस वचनसे विसदृशताका प्रतिषेध किया है । श्रेणीसम्बन्धी आदिके तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी

१ प्रतिषु पुव्विल्लत्था इति पाठः । मप्रतौ तु स्वीकृतपाठः ।

२ सामान्येन तावत् त्रय उपशमकाः सर्वतः स्तोकाः स्वगुणस्थानकालेषु प्रवेशेन तुल्यसंख्याः । स. सि. १, ८

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेय[1] ॥ ३ ॥

पुधसुत्तारंभो किमट्ठो ? उवसंतकसायस्स कसाउवसामगाण च पच्चासत्तीए अभावस्स संदसणफलो। जेसिं पच्चासत्ती अत्थि तेसिमेगजोगो, इदरेसिं भिण्णजोगो होदि त्ति एदेण जाणाविदं।

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ ४ ॥

कुदो ? उवसामगगुणट्ठाणमुक्कस्सेण पविस्समाणचउवण्णजीवेहिंतो खवगेगगुण

सौ चार (३०४) और क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सौ आठ (६०८) ही होते हैं। यदि सर्वजघन्य प्रमाणकी भी अपेक्षासे एक समयमें एक ही जीवका प्रवेश माना जाय, तो भी प्रत्येक गुणस्थानके प्रवेशकालके समय संख्यात अर्थात् उपशमश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक तीन सौ चार और क्षपकश्रेणीके प्रत्येक गुणस्थानमें अधिकसे अधिक छह सौ आठ ही होंगे। यहां यह स्मरण रखना चाहिए कि उपशम या क्षपकश्रेणीमें निरन्तर प्रवेश करनेका सर्वोत्कृष्ट काल आठ समय ही है। इससे ऊपर जितना भी प्रवेशकाल है, वह सब सान्तर ही है। इससे यह अर्थ निकलता है कि अपूर्वकरणादि गुणस्थानोंमें प्रवेशान्तर अर्थात् जीवोंके प्रवेश नहीं करनेका काल असंख्यात समयप्रमाण है। चूंकि, सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानसे अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है इसलिए उसके प्रवेशान्तरका उत्कृष्ट काल भी संख्यात गुणा ही होगा। इसी प्रकार चूंकि अनिवृत्तिकरणके कालसे अपूर्वकरणका काल संख्यात गुणा है, अतः उसके प्रवेशान्तरका काल भी संख्यातगुणा ही होगा। इसका यही निष्कर्ष निकलता है कि तीनों उपशामकोंके कालोंसे तीनोंके उत्कृष्ट प्रवेशान्तरका काल बहुत है, अर्थात् प्रवेश करनेके समय सदृश हैं, अतएव उनका संचय भी सदृश ही होता है।

उपर्युक्त जीव आगे कही जानेवाली गुणस्थानोंकी संख्याको 'देखकर अल्प हैं' ऐसा कहा है।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३ ॥

शंका—पृथक् सूत्रका प्रारम्भ किस लिए किया है ?

समाधान—उपशान्तकषायका और कषायके उपशम करनेवाले उपशामकोंकी परस्पर प्रत्यासत्तिका अभाव दिखाना इसका फल है। जिनकी प्रत्यासत्ति पाई जाती है उनका ही एक योग अर्थात् एक समास हो सकता है और दूसरोंका भिन्न योग होता है, यह बात इस सूत्रसे सूचित की गई है।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ ४ ॥

क्योंकि, उपशामकके गुणस्थानमें उत्कर्षसे प्रवेश करनेवाले चौपन जीवोंकी

१ उपशान्तकषायास्तावन्त एव। स. सि. १, ८.

२ ततः क्षपकाः संख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली अद्ध पडुच्च सखेज्जगुणा[1] ॥ ७ ॥

कुदो ? दुरूऊणछस्सदमेत्तजीवेहिंतो अट्ठलक्ख-अट्ठाणउदिसहस्स-दुरहियपंचसदमेत्तजीवाणं संखेज्जगुणत्तुवलंभा। हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिं छेत्तूण गुणगारो उप्पादेदव्वो।

अप्पमत्तसजदा अक्खवा अणुवसमा सखेज्जगुणा[2] ॥ ८ ॥

खवगुवसामगअप्पमत्तसंजदपडिसेहो किमट्ठं कीरदे ? ण, अप्पमत्तसामण्णेण तेसिं पि गहणप्पसंगा। सजोगिरासिणा बेकोडि-छण्णउदिलक्ख-णवणउदिसहस्स तिउत्तरसदमेत्तअप्पमत्तरासिम्हि भागे हिदे जं लद्धं सो गुणगारो होदि।

पमत्तसजदा सखेज्जगुणा[3] ॥ ९ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि। कुदो णव्वदे ? आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

सयोगिकेवली कालकी अपेक्षा सख्यातगुणित हैं ॥ ७ ॥

क्योंकि, दो कम छह सौ, अर्थात् पांच सौ अट्ठानवे मात्र जीवोंकी अपेक्षा आठ लाख, अट्ठानवे हजार पांच सौ दो सख्याप्रमाण जीवोंके सख्यातगुणितता पाई जाती है। यहां पर अधस्तनराशिसे उपरिम राशिको छेदकर (भाग देकर) गुणकार उत्पन्न करना चाहिए।

सयोगिकेवलियोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसयत जीव सख्यातगुणित हैं ॥ ८ ॥

शंका—यहांपर क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसयतोंका निषेध किस लिए किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'अप्रमत्त' इस सामान्य पदसे उनके भी ग्रहणका प्रसग आता है, इसलिए क्षपक और उपशामक अप्रमत्तसयतोंका निषेध किया गया है। सयोगिकेवलीकी राशिसे दो करोड़ छ्यानवे लाख निन्यानवे हजार एक सौ तीन सख्या प्रमाण अप्रमत्तसयतोंकी राशिमें भाग देनेपर जो लब्ध आवे, वह यहां पर गुणकार होता है।

अप्रमत्तसयतोंसे प्रमत्तसयत सख्यातगुणित हैं ॥ ९ ॥

गुणकार क्या है ? दो सख्या गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य-परम्पराके द्वारा आये हुए उपदेशसे जाना जाता है।

---

१ सयोगकेवलिन स्वकालेन समुदिताः सख्येयगुणाः। (८९८५०२)। स सि १, ८

२ अप्रमत्तसयता सख्येयगुणाः (२९६९९१०३)। स सि १, ८

३ प्रमत्तसयताः सख्येयगुणा (५९३९८२०६)। स सि १, ८

पुव्वुत्तअप्पमत्तरासिणा पंचकोडि-तिण्णउदलक्ख-अट्ठाणउइसहस्स छब्भहियदोसदमेत्तम्हि पमत्तरासिम्हि भागे हिदे जं भागलद्धं सो गुणगारो।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[1] ॥ १० ॥

कुदो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तत्तादो। माणुसखेत्तब्भंतरे चेव संजदासंजदा होंति, णो बहिद्धा, भोगभूमिम्हि संजमासंजमभावविरोहा। ण च माणुसखेत्तब्भंतरे असंखेज्जाणं संजदासंजदाणमत्थि संभवो, तेत्तियमेत्ताणमेत्थावट्ठाणविरोहा। तदो संखेज्जगुणेहि संजदासंजदेहि होदव्वमिदि ? ण, सयंपहपव्वदपरभागे असंखेज्जजोयणवित्थडे कम्मभूमिपडिभाए तिरिक्खाणमसंखेज्जाणं संजमासंजमगुणसहियाणमुवलंभा। को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। को पडिभागो ? अंतोमुहुत्तगुणिदपमत्तसंजदरासी पडिभागो।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त अप्रमत्तराशिसे पांच करोड़ तिरानवे लाख, अट्ठानवे हजार, दो सौ छह संख्याप्रमाण प्रमत्तसंयतराशिमें भाग देनेपर जो भाग लब्ध आवे, वह यहांपर गुणकार है।

प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ १० ॥

क्योंकि, वे पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

शंका—संयतासंयत मनुष्यक्षेत्रके भीतर ही होते हैं, बाहर नहीं, क्योंकि, भोगभूमिमें संयमासंयमके उत्पन्न होनेका विरोध है। तथा मनुष्यक्षेत्रके भीतर असंख्यात संयतासंयतोंका पाया जाना सम्भव नहीं है, क्योंकि, उतने संयतासंयतोंका यहां मनुष्यक्षेत्रके भीतर अवस्थान माननेमें विरोध आता है। इसलिए प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात योजन विस्तृत एवं कर्मभूमिके प्रतिभागरूप स्वयंप्रभ पर्वतके परभागमें संयमासंयम गुणसहित असंख्यात तिर्यंच पाये जाते हैं।

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? अन्तर्मुहूर्तसे प्रमत्तसंयतराशिको गुणित करनेपर जो लब्ध आवे, वह प्रतिभाग है।

संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११ ॥

---

१ संजदासंजदा असंखेज्जगुणा। स. सि. १, ८.

२ अ-प्रत्योः '...' इति पाठः।

३ सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः। स. सि. १, ८.

कुदो ? तिविहसम्मत्तट्ठिदसंजदासंजदेहिंतो एगुवसमसम्मत्तादो सासणगुणं पडिवज्जिय छसु आवलियासु संचिदजीवाणमसंखेज्जगुणत्तुवदेसादो। तं पि कधं णव्वदे ? एगसमयम्हि संजमासंजमं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो एक्कसमयम्हि चेव सासणगुणं पडिवज्जमाणजीवाणमसंखेज्जगुणत्तदंसणादो। तं पि कुदो ? अणंतसंसारछिंदणहेउसंजमासंजमलंभस्स अइदुल्लभत्तादो। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिम्हि भागे हिदे गुणगारो आगच्छदि, उवरिमरासिअवहारकालेण हेट्ठिमरासिअवहारकाले भागे हिदे गुणगारो होदि, उवरिमरासिअवहारकालगुणिदहेट्ठिमरासिणा पलिदोवमे भागे हिदे गुणगारो होदि। एवं तीहि पयारेहि गुणगारो समाणभज्जमाणरासीसु सव्वत्थ साहेदव्वो। णवरि हेट्ठिमरासिणा उवरिमरासिम्हि भागे हिदे गुणगारो आगच्छदि त्ति एदं समाणासमाणभज्जमाणरासीणं साहारणं, दोसु वि एदस्स पउत्तीए बाहाणुवलंभा।

क्योंकि, तीन प्रकारके सम्यक्त्वके साथ स्थित संयतासंयतोंकी अपेक्षा एक उपशमसम्यक्त्वसे सासादनगुणस्थानको प्राप्त होकर छह आवलियोंसे संचित जीव असंख्यातगुणित हैं, ऐसा उपदेश पाया जाता है।

शंका—यह भी कैसे जाना जाता है ?

समाधान—एक समयमें संयमासंयमको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे एक समयमें ही सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित देखे जाते हैं।

शंका—इसका भी कारण क्या है ?

समाधान—क्योंकि अनन्त संसारके विच्छेदका कारणभूत संयमासंयमका पाना अतिदुर्लभ है।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। अधस्तनराशिसे उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकारका प्रमाण आता है। अथवा उपरिमराशिके अपहारकालसे अधस्तनराशिके अपहारकालमें भाग देनेपर गुणकार होता है। अथवा उपरिमराशिके अपहारकालसे अधस्तनराशिको गुणित करके जो लब्ध आवे उसका पल्योपममें भाग देनेपर गुणकार आता है। इस इन तीन प्रकारोंसे समान भज्यमान राशियोंमें सर्वत्र गुणकार साधित कर लेना चाहिए। विशेषता यह है कि अधस्तनराशिका उपरिमराशिमें भाग देनेपर गुणकार आता है, यह नियम समान और असमान दोनों भज्यमान राशियोंमें साधारण है, क्योंकि उक्त दोनों राशियोंमें भी इस नियमकी प्रवृत्ति होनेमें बाधा नहीं पाई जाती है।

त्रिषु त ।। इति पाठ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[1] ॥ १२ ॥

एदस्सत्थो उच्चदे- सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धा अंतोमुहुत्तमेत्ता, सासणसम्मादिट्ठिअद्धा वि छावलियमेत्ता। किंतु सासणसम्मादिट्ठिअद्धादो सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धा संखेज्जगुणा। संखेज्जगुणद्धाए उवक्कमणकालो वि सासणद्धावक्कमणकालादो संखेज्जगुणो, उवक्कमणविरोहा विरहकालाणमुहयत्थ साधम्मादो। तेण दोगुणट्ठाणाणि पडिवज्जमाणरासी जदि वि सरिसो, तो वि सासणसम्मादिट्ठीहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा होंति। किंतु सासणगुणमुवसमसम्मादिट्ठिणो चेय पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तगुणं पुण वेदगुवसमसम्मादिट्ठिणो अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छादिट्ठिणो य पडिवज्जंति। तेण सासणं पडिवज्जमाणरासीदो[2] सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासी संखेज्जगुणो। तदो संखेज्जगुणायादो संखेज्जगुणउवक्कमणकालादो च सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो वेदगसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा, 'कारणाणुसारिणा कज्जेण होदव्वमिदि' णायादो। सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा किण्ण होंति त्ति उत्ते ण होंति, अणेयणिग्गमादो। जदि तेहि पडिवज्जमाणगुणट्ठाणमेक्कं[3] चेव होदि

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं- सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका काल अन्तर्मुहूर्तमात्र है और सासादनसम्यग्दृष्टिका काल भी छह आवलीप्रमाण है, किन्तु फिर भी सासादनसम्यग्दृष्टिके कालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल संख्यातगुणा है। संख्यातगुणित कालका उपक्रमणकाल भी सासादनके कालके उपक्रमणकालसे संख्यातगुणा है। अन्यथा उपक्रमणकालमें विरोध आ जायगा, क्योंकि, विरहकाल दोनों जगह समान है। इसलिए इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होनेवाली राशि यद्यपि समान है तो भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं। किन्तु सासादन गुणस्थानको उपशमसम्यग्दृष्टि ही प्राप्त होते हैं, परन्तु सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको वेदकसम्यग्दृष्टि, उपशमसम्यग्दृष्टि और मोहकर्मकी अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीव भी प्राप्त होते हैं। इसलिए सासादनगुणस्थानको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशि संख्यातगुणी है। अतः संख्यातगुणी आय होनेसे और संख्यातगुणा उपक्रमणकाल होनेसे सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं। उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, 'कारणके अनुसार कार्य होता है' ऐसा न्याय है। सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित क्यों नहीं होते हैं? ऐसा पूछने पर आचार्य उत्तर देते हैं कि नहीं होते हैं, क्योंकि, मिथ्यात्वसे आनेके मार्ग अनेक हैं। यदि वेदकसम्यग्दृष्टियोंके द्वारा प्राप्त किया

1 [illegible]

2 [illegible]   3 [illegible]

तो एस ण्णाओ घेत्तुं जुत्तो। किंतु वेदगसम्मादिट्ठिणो मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं च पडिवज्जंति, सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणेहिंतो मिच्छत्तं पडिवज्जमाणवेदगसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा, तेण पुव्वुत्तं ण घडदे इदि। ण, असंखेज्जगुणरासिवओ अण्णरासिमवेक्खिय होदि, तस्स अप्पणो आयाणुसरणसहावत्तादो। एवमेदं चेव होदि त्ति कधं णव्वदे? सासणेहिंतो सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा त्ति सुत्तण्णहाणुववत्तीदो णव्वदे।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३ ॥

को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। सम्मामिच्छादिट्ठिरासी अंतोमुहुत्तसंचिदो, असंजदसम्मादिट्ठिरासी पुण वेसागरोवमसंचिदो। सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धादो वेसागरोवमकालो पलिदोवमासंखेज्जदिभागगुणो। सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालादो वि असंजदसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालो[1] पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागगुणो, उवक्कमणकालस्स अद्धाणुसारित्तदंसणादो। तेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणगारेण होदव्वमिदि? ण, असंजदसम्मादिट्ठिरासिस्स असंखेज्जपलिदोवमप्पमाणप्पसंगा। ण

जानेवाला गुणस्थान एक ही हो, तो यह न्याय कहने योग्य है। किन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व, इन दोनों गुणस्थानोंको प्राप्त होते हैं। तथा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, इसलिए पूर्वोक्त कथन घटित नहीं होता है। दूसरी बात यह है कि असंख्यातगुणी राशिका व्यय अन्य राशिकी अपेक्षासे नहीं होता है, क्योंकि, वह अपने आयके अनुसार व्यय करनेके स्वभाववाला होता है।

शंका—यह इसी प्रकार होता है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं, यह सूत्र अन्यथा बन नहीं सकता है, इस अन्यथानुपपत्तिसे जाना जाता है कि सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३ ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—सम्यग्मिथ्यादृष्टि राशि अन्तर्मुहूर्तसंचित है और असंयतसम्यग्दृष्टि राशि दो सागरोपम संचित है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे दो सागरोपमकाल पल्योपमके असंख्यातवें भाग गुणितप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमणकालसे भी असंयतसम्यग्दृष्टिका उपक्रमणकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागगुणित है, क्योंकि, उपक्रमणकाल गुणस्थानकालके अनुसार देखा जाता है। इसलिए पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण गुणकार होना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, गुणकारको पल्योपमके असंख्यातवें भाग मानने पर असंयतसम्यग्दृष्टि राशिको असंख्यात पल्योपमप्रमाण होनेका प्रसंग प्राप्त होगा।

१ प्रतिषु 'आणु' इति पाठः। [illegible]

[illegible]

वा– 'एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' दव्वाणिओगद्दारसुत्तादो व्वदि जधा पलिदोवममंतोमुहुत्तेण खंडिदेयखंडमेत्ता सम्मामिच्छादिट्ठिणो होंति त्ति। णो एदं रासिं पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण गुणिदे असंखेज्जपलिदोवममेत्ता असंजदसम्मादिट्ठिरासी होदि। ण चेदं, एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति एदेण सुत्तेण सह विरोहा। कधं पुण आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणगारस्स सिद्धी ? उच्चदे– सम्मामिच्छादिट्ठिअद्धादो तप्पाओग्गअसंखेज्जगुणद्धाए संचिदो असंजदसम्मादिट्ठिरासी घेत्तव्वो, एदिस्से अद्धाए सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालादो असंखेज्जगुणउवक्कमणकालुवलंभा। एत्थ संचिद-असंजदसम्मादिट्ठिरासीए वि आवलियाए असंखेज्जदिभागेण गुणिदमेत्तो होदि। अथवा दोण्हं उवक्कमणकाला जदि वि सरिसा होंति तो वि सम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो असंजदसम्मादिट्ठी आवलियाए असंखेज्जभागगुणा। कुदो ? सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणरासीदो सम्मत्तं पडिवज्जमाणरासिस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागगुणत्तादो।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[1] ॥ १४ ॥

उसका स्पष्टीकरण इस प्रकार है– इन सासादनसम्यग्दृष्टि आदि जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है, इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है कि पल्योपमको अन्तर्मुहूर्तसे खंडित करने पर एक खंडप्रमाण सम्यग्मिथ्यादृष्टि होते हैं। पुनः इस राशिको पल्योपमके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर असंख्यात पल्योपमप्रमाण असंयतसम्यग्दृष्टिराशि होती है। परन्तु यह ठीक नहीं है, क्योंकि, 'इन गुणस्थानवर्ती जीवोंकी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस सूत्रके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है।

शंका—फिर आवलीके असंख्यातवें भागरूप गुणकारकी सिद्धि कैसे होती है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यादृष्टिके कालसे उसके योग्य असंख्यातगुणित कालमें संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि, इस कालका सम्यग्मिथ्यादृष्टिके उपक्रमणकालसे असंख्यातगुणा उपक्रमणकाल पाया जाता है। यहां पर संचित असंयतसम्यग्दृष्टि राशि भी आवलीके असंख्यातवें भागसे गुणितमात्र है। अथवा, दोनोंके उपक्रमणकाल यद्यपि सदृश होते हैं, तो भी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव आवलीके असंख्यातवें भागगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाली राशिसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि आवलीके असंख्यातवें भागगुणित है।

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४ ॥

१ [illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]

कुदो ? मिच्छादिट्ठीणमाणंतियादो । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? असंजदसम्मादिट्ठी पडिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १५ ॥

संजदासंजदादिट्ठाणपडिसेहट्ठं असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणवयणं । उवरिमुच्चमाणरासिं अवेक्ख सव्वत्थोवयणं । सेससम्मादिट्ठिपडिसेहट्ठमुवसमसम्मादिट्ठिवयणं ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६ ॥

उवसमसम्मत्तादो खइयसम्मत्तमइदुल्लहं, दंसणमोहणीयक्खवएण उक्कस्सेण छम्मासमंतरिय उक्कस्सेण अट्ठुत्तरसदमेत्ताणं चेव उप्पज्जमाणत्तादो । खइयसम्मत्तादो उवसमसम्मत्तमइसुलहं, सत्तरादिंदियाणि अंतरिय एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेसु तदुप्पत्तिदंसणादो । तदो खइयसम्मादिट्ठीहिंतो उवसमसम्मादिट्ठीहिं असंखेज्जगुणेहि होदव्वमिदि ? सच्चमेदं, किंतु संचयकालमाहप्पेण उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो खइय-

क्योंकि, मिथ्यादृष्टि अनन्त होते हैं ।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

शंका—प्रतिभाग क्या है ?

समाधान—असंयतसम्यग्दृष्टि राशिका प्रमाण प्रतिभाग है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५ ॥

संयतासंयत आदि गुणस्थानोंका निषेध करनेके लिये सूत्रमें 'असंयतसम्यग्दृष्टि स्थान' यह वचन दिया है । आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा 'सबसे कम' यह वचन दिया है । शेष सम्यग्दृष्टियोंका प्रतिषेध करनेके लिये 'उपशमसम्यग्दृष्टि' यह वचन दिया है ।

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६ ॥

शंका—उपशमसम्यक्त्वसे क्षायिकसम्यक्त्व अतिदुर्लभ है, क्योंकि, दर्शनमोहनीयके क्षयद्वारा उत्कृष्ट छह मासके अंतरालसे अधिकसे अधिक एकसौ आठ जीवोंकी ही उत्पत्ति होती है । परन्तु क्षायिकसम्यक्त्वसे उपशमसम्यक्त्व अतिसुलभ है, क्योंकि, सात रात दिनके अंतरालसे एक समयमें पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित जीवोंमें उपशमसम्यक्त्वकी उत्पत्ति देखी जाती है । इसलिये क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित होना चाहिए ?

समाधान—यह कहना सत्य है, किन्तु संचयकालके माहात्म्यसे उपशमसम्य

माइट्ठिणो असंखेज्जगुणा जादा। तं जहा– उवसमसम्मत्तद्धा उक्कस्सिया वि अंतो मुहुत्तमेत्ता चेव। खइयसम्मत्तद्धा पुण जहण्णिया अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सिया दोपुव्वकोडि अहियतेत्तीससागरोवममेत्ता। तत्थ मज्झिमकालो दिवड्ढपलिदोवममेत्तो। एत्थ अंतोमुहुत्तमंतरिय संखेज्जावक्कमणसमएसु घेप्पमाणेसु पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभाग उवक्कमणकालो लब्भइ। एदेण कालेण संचिदजीवा वि पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्ता होदूण आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तुवक्कमणकालेण समयं पडि उवक्कंत पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवेण संचिदउवसमसम्माइट्ठीहिंतो असंखेज्जगुणा होंति। ण सेसवियप्पा संभवंति, तेणसंखेज्जगुणसुत्तेण सह विरोहा।

एत्थ चोदओ भणदि– आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्ततरेण खइयसम्माइट्ठीणं सोहम्मे जइ संचओ कीरदि पवेसाणुसारिणिग्गमादो मणुसेसु असंखेज्जा खइयसम्माइट्ठिणो पावेंति। अह संखेज्जावलियंतरेण ट्ठिदिसंचओ कीरदि, तो संखेज्जावलियाहि पलिदोवमे खंडिदे एयखंडमेत्ता खइयसम्माइट्ठिणो पावेंति। ण च एवं, आवलियाए असंखेज्जदिभागमेत्तभागहारब्भुवगमादो। तदो दोहि वि पयारेहि दोसो चेव ढुक्कदि

…ष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हो जाते हैं। वह इस प्रकार है– उपशम सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल भी अन्तर्मुहूर्तमात्र ही है। परन्तु क्षायिकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल दो पूर्वकोटिसे अधिक तेतीस सागरोपमप्रमाण है। इनमें मध्यम काल डेढ पल्योपमप्रमाण है। यहां पर अन्तर्मुहूर्तकालको अन्तरित करके उपक्रमणके संख्यात समयोंके ग्रहण करने पर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकाल प्राप्त होता है। इस उपक्रमणकालके द्वारा संचित हुए जीव पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र हो करके भी आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालके द्वारा प्रत्येक समयमें प्राप्त होनेवाले पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीवोंसे संचित हुए उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा असंख्यातगुणित होते हैं। यहां शेष विकल्प संभव नहीं हैं, क्योंकि, उन विकल्पोंका असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें 'उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं' इस सूत्रके साथ विरोध आता है।

शंका—यहां पर शंकाकार कहता है कि आवलीके असंख्यातवें भागमात्र अन्तरसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका सौधर्म स्वर्गमें यदि संचय किया जाता है तो प्रवेशके अनुसार निर्गम होनेसे अर्थात् आयके अनुसार व्यय होनेसे मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव प्राप्त होते हैं। और यदि संख्यात आवलियोंके अन्तरालसे स्थितिका संचय करते हैं तो संख्यात आवलियोंसे पल्योपमके खंडित करने पर एक खंडमात्र क्षायिकसम्यग्दृष्टि प्राप्त होते हैं। परंतु ऐसा है नहीं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र भागहार स्वीकार किया गया है। इसलिए दोनों प्रकारोंसे भी दोष ही प्राप्त होता है ?

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १७ ॥

कुदो ? दंसणमोहणीयक्खएणुप्पण्णखइयसम्मत्तादो खओवसमियवेदगसम्मत्तस्स सुट्ठु सुलहत्तुवलंभा। को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कुदो ? ओघमसंजदसम्मादिट्ठिभागहारस्स आवलियाए असंखेज्जदिभागपमाणत्तादो।

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी॥ १८ ॥

कुदो ? अणुव्वयसहिदखइयसम्मादिट्ठीणमइदुल्लभत्तादो। ण च तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेण सह संजमासंजमो लब्भदि, तत्थ दंसणमोहणीयक्खवणाभावा। तं पि कुदो णव्वदे ? 'णियमा मणुसगदीए' इदि सुत्तादो[1]। जे वि पुव्वं बद्धतिरिक्खाउआ मणुसा तिरिक्खेसु खइयसम्मत्तेणुप्पज्जंति, तेसिं ण संजमासंजमो अत्थि, भोगभूमिं मोत्तूण अण्णत्थुप्पत्तीए असंभवादो। तेण खइयसम्मादिट्ठिणो संजदासंजदा संखेज्जा चेव,

---

असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीय कर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वका पाना अति सुलभ है।

शंका—गुणकार क्या है ?

समाधान—आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, सामान्यसे सौधर्मस्वर्गके असंयतसम्यग्दृष्टि देवोंका भागहार आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १८ ॥

क्योंकि, अणुव्रतसहित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका होना अत्यन्त दुर्लभ है। तथा तिर्यंचोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ संयमासंयम पाया नहीं जाता है, क्योंकि, तिर्यंचोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका अभाव है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'दर्शनमोहनीयकी क्षपण करनेवाले जीव नियमसे मनुष्यगतिमें होते हैं' इस सूत्रसे जाना जाता है।

तथा जिन्होंने पहले तिर्यंचायुका बंध कर लिया है ऐसे जो भी मनुष्य क्षायिकसम्यक्त्वके साथ तिर्यंचोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संयमासंयम नहीं होता है, क्योंकि, भोगभूमिको छोड़कर उनकी अन्यत्र उत्पत्ति असंभव है। इसलिए क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत और संख्यात ही होते हैं, क्योंकि, संयमासंयमके साथ क्षायिकसम्यक्त्व

---

१ [illegible] णियमा मणुसगदीए [illegible]
[illegible]

मणुसपज्जत्ते मोत्तूण अण्णत्थाभावा। अदो चेय भणिस्समाणासंखेज्जरासीहिंतो थोवा।

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १९ ॥

को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि। को पडिभागो? खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदमेत्तसंखेज्जरूवपडिभागो। कुदो? असंखेज्जावलियाहि पलिदोवमे खंडिदे तत्थ एयखंडमेत्ताणमुवसमसम्मत्तेण सह संजदा-संजदाणमुवलंभा।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २० ॥

को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एसो उवसमसम्मादिट्ठिउक्कस्स-संचयादो वेदगसम्मादिट्ठिउक्कस्ससंचयस्स सांतरस्स गुणगारो, अण्णहा पुण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो, उवसमसम्मादिट्ठिरासिस्स सांतरस्स कयाइ एग जीवस्स वि उवलंभा। वेदगसम्मादिट्ठिरासी पुण सव्वकालं पलिदोवमस्स असंखेज्जदि भागमेत्तो चेय, णिरंतरस्स समाणायव्वयस्स अण्णरूवावत्तिविरोहा।

पर्याप्त मनुष्योंको छोड़कर दूसरी गतिमें नहीं पाया जाता है। और इसीलिए संयता-संयत क्षायिकसम्यग्दृष्टि आगे कही जानेवाली असंख्यात राशियोंसे कम होते हैं।

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥ १९ ॥

गुणकार क्या है? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंकी जितनी संख्या है तत्प्रमाण संख्यातरूप प्रतिभाग है, क्योंकि, असंख्यात आवलियोंसे पल्योपमके खंडित करने पर उनमेंसे एक खंड मात्र उपशमसम्यक्त्वके साथ संयता-संयत जीव पाये जाते हैं।

संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २० ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। उपशमसम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट संचयसे वेदकसम्यग्दृष्टियोंके उत्कृष्ट सान्तर संचयका यह गुणकार है। अन्यथा पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार होता है, क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टिराशि सान्तर है, इसलिए कदाचित् एक जीवकी भी उपलब्धि होती है। परन्तु वेदकसम्यग्दृष्टि राशि सर्वकाल पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र ही रहती है, क्योंकि, जिस राशिका आय और व्यय समान है और जो अन्तर-रहित है उसका अन्यरूप माननेमें विरोध आता है।

कारणं, दव्वाहियत्तादो। वेदगसम्मादिट्ठी णत्थि, तेण सह उवसमसेडीआरोहणाभावा। उवसंतकसाएसु सम्मत्तप्पाबहुगं किण्ण परूविदं? ण एस दोसो, तिसु अद्धासु सम्मत्तप्पाबहुगे अवगदे तत्थ वि तदवगमादो। सुह गहणट्ठं चदुसु उवसामएसु त्ति किण्ण परूविदं? ण, 'एगजोगणिद्दिट्ठाणमेगदेसो णाणुवट्टदि' त्ति णायादो उवरि चदुण्हमणुउत्तिप्पसंगा। होदु चे ण, पडिजोगीणं चदुण्हमुवसामगाणमभावा।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५ ॥

कुदो? थोवायपदेसादो[1] संचलिदसंचयस्स[2] वि थोवत्तस्स णायसिद्धत्तादो।

क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका यहां द्रव्यप्रमाण अधिक पाया जाता है। उपशमश्रेणीमें वेदकसम्यग्दृष्टि जीव नहीं पाये जाते हैं, क्योंकि, वेदकसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीके आरोहणका अभाव है।

शंका—उपशान्तकषाय गुणस्थानवर्ती जीवोंमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, तीनों उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व ज्ञात हो जाने पर उपशान्तकषाय गुणस्थानमें भी उसका ज्ञान हो जाता है।

शंका—सुख अर्थात् सुगमतापूर्वक ज्ञान होनेके लिए 'चारों उपशामक गुणस्थानोंमें' ऐसा सूत्रमें क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, 'जिनका निर्देश एक समासके द्वारा किया जाता है उनमें एक देशकी अनुवृत्ति नहीं होती है' इस न्यायके अनुसार आगे कहे जानेवाले सूत्रोंमें चारों गुणस्थानोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग प्राप्त होगा।

शंका—यदि आगे चारों उपशामकोंकी अनुवृत्तिका प्रसंग आता है, तो आने दो, क्या दोष है?

समाधान—नहीं, क्योंकि, चारों उपशामकोंके प्रतियोगियोंका अभाव है। अर्थात् जिस प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंके भीतर उपशामक और उनके प्रतियोगी क्षपक पाये जाते हैं, उसी प्रकार चौथे उपशामक अर्थात् ग्यारहवें गुणस्थानमें उपशामकोंके प्रतियोगी क्षपक नहीं पाये जाते हैं।

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५ ॥

क्योंकि, अल्प आयवाला उपशम होनेसे संचित होनेवाली राशिके स्तोकपना अर्थात् कम होना न्यायसिद्ध है।

१ प्रतिषु [illegible] इति पाठः।　　　　२ [illegible]
३ [illegible] इति पाठः।　　　　४ [illegible]

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६ ॥

कुदो? संखेज्जगुणायादो संचउवलंभा। उवसम-खवगाणमेदमप्पाबहुगं पुव्वं परूविदमिदि एत्थ ण परूविदव्वं? ण, पुव्वमुवसामग-खवगपवेसगाणमप्पाबहुगकथणादो। तदो चेव संचयप्पाबहुगसिद्धीए होदीदि चे सच्चं होदि, जुत्तीदो। जुत्तिवादे अकुसलसिस्साणुग्गहट्ठमेदमप्पाबहुअं पुणो वि परूविदं। खवगसेडीए सम्मत्तप्पाबहुअं किण्ण परूविदं? ण, तत्थ खइयसम्मत्तं मोत्तूण अण्णसम्मत्ताभावा। तं कुदो णव्वदे? खवगुवसम-वेदगसम्मादिट्ठिदव्वादिपरूवणसुत्ताणुवलंभा। उवसमा सव्वा वि सदा उवसमसम्मत्त-खइयसम्मत्ताणं वाचया ण होंति त्ति भणंताणमभिप्पाएण खइयसम्मत्त

अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानवर्ती उपशामकोंमें तीनों गुणस्थानवर्ती क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६ ॥

क्योंकि, संख्यातगुणित आयसे क्षपकोंका संचय पाया जाता है।

शंका—उपशामक और क्षपकोंका यह अल्पबहुत्व पहले कह आए हैं, इसलिए यहां नहीं कहना चाहिए?

समाधान—नहीं, क्योंकि, पहले उपशामक और क्षपक जीवोंके प्रवेशकी अपेक्षा अल्पबहुत्व कहा है।

शंका—इसीसे संचयके अल्पबहुत्वकी सिद्धि हो जायगी (फिर उसे पृथक् क्यों कहा)?

समाधान—यह सत्य है कि युक्तिसे अल्पबहुत्वकी सिद्धि हो सकती है। किंतु जो शिष्य युक्तिवादमें निपुण नहीं हैं, उनके अनुग्रहके लिये यह अल्पबहुत्व पुनः भी कहा है।

शंका—क्षपकश्रेणीमें सम्यक्त्वका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा?

समाधान—नहीं, क्योंकि, क्षपकश्रेणीमें क्षायिकसम्यक्त्वको छोड़कर अन्य सम्यक्त्व नहीं पाया जाता है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—क्योंकि, क्षपकश्रेणीवाले जीवोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि और वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंके द्रव्य आदिके प्ररूपक सूत्र नहीं पाये जाते हैं। उपशामक और क्षपक, ये दोनों सदा उपशमसम्यक्त्व और क्षायिकसम्यक्त्वके वाचक नहीं हैं, ऐसा कहनेवाले आचार्योंके अभिप्रायसे

[illegible]

गुणहीणओघखइयसम्मादिट्ठीणं असंखेज्जदिभागमेत्तादो। ण वासपुधत्तंतरसुत्तेण सह विरोहो, सोहम्मीसाणकप्पं मोत्तूण अण्णत्थ ट्ठिदखइयसम्मादिट्ठीणं वासपुधत्तस्स विउलत्त-वाइणो¹ गहणादो। तं तहा घेप्पदि त्ति कुदो णव्वदे? ओघउवसमसम्मादिट्ठीहिंतो ओघखइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा त्ति अप्पाबहुअसुत्तादो।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३३ ॥

कुदो? खइयसम्मत्तादो खओवसमियस्स वेदगसम्मत्तस्स सुलहत्तुवलंभा। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कधमेदं णव्वदे? आइरियपरंपरागदुवदेसादो।

एवं पढमाए पुढवीए णेरइया ॥ ३४ ॥

जहा सामण्णणेरइयाणमप्पाबहुअं परूविदं, तहा पढमपुढवीणेरइयाणमप्पाबहुअं परूवेदव्वं, ओघणेरइयअप्पाबहुआलावादो पढमपुढवीणेरइयाणमप्पाबहुआलावस्स भेदाभावा।

जाव असंख्यातवें भाग ही होते हैं। इस कथनका वर्षपृथक्त्व अन्तर बतानेवाले सूत्रके साथ विरोध भी नहीं आता है, क्योंकि, सौधर्म और ऐशानकल्पको छोड़कर अन्यत्र स्थित क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अन्तरमें कहे गये वर्षपृथक्त्वके 'पृथक्त्व' शब्दको वैपुल्य-वाची ग्रहण किया गया है।

शंका—यहां पर पृथक्त्वका अर्थ वैपुल्यवाची ग्रहण किया गया है, यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—'ओघ उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे ओघ क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं' इस अल्पबहुत्वके प्रतिपादक सूत्रसे जाना जाता है।

नारकियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ३३ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा क्षायोपशमिक वेदकसम्यक्त्वकी प्राप्ति सुलभ है। गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—आचार्य परम्परासे आये हुए उपदेशके द्वारा जाना जाता है।

इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें नारकियोंका अल्पबहुत्व है ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार सामान्य नारकियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकियोंका अल्पबहुत्व कहना चाहिए, क्योंकि, सामान्य नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें पहली पृथिवीके नारकियोंके अल्पबहुत्वके कथनमें कोई भेद नहीं है। किन्तु

---

१ पुहुत्तसद्दो बहुत्तवाई। अ प प्रति

[illegible] ॥ २ ॥

विदियादिछण्हं पुढवीणं सासणसम्मादिट्ठिणो बुद्धीए पुध पुध ठविय सव्वत्थोवा त्ति उत्ता। कुदो? छण्हमप्पाबहुआणमेयत्तविरोहादो। सव्वेहिंतो थोवा सव्वत्थोवा। आदि अंतसु णेरइएसु णिद्दिट्ठेसु सेसमज्झिमणेरइया सव्वे णिद्दिट्ठा चेय, अण्णहा जावसद्दुच्चारणाणुववत्तीदो। जावसद्देण सत्तमपुढवीणेरइयाणं मज्जादत्ताए ठविदाए, विदियपुढवीणेरइयाणमादित्तमावादिद। आदी अंता च मज्झेण विणा ण होंति त्ति चदुण्हं पुढवीणेरइयाण मज्झिमत्तं पि जावसद्देणेव परूविदं। तदो पुध पुध पुढवीणमुच्चारणा ण कदा।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३६ ॥

विदियपुढवीआदिसत्तमपुढवीपज्जवसाणाणमुवरि पुध पुध छपुढवीसम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा, सासणसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालादो सम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमण-

पर्यायार्थिकनयका अवलम्बन करने पर कुछ विशेषता है, सो जानकर कहना चाहिए। (देखो भाग ३, पृ. १६२ इत्यादि।)

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३५ ॥

दूसरीको आदि लेकर छहों पृथिवियोंके सासादनसम्यग्दृष्टियोंको बुद्धिके द्वारा पृथक् पृथक् स्थापित करके प्रत्येक सबसे कम हैं, ऐसा अर्थ कहा गया है, क्योंकि, छहों अल्पबहुत्वोंको एक माननेमें विरोध आता है। सबसे थोड़ोंको सर्वस्तोक कहते हैं। आदिम और अन्तिम नारकियोंके निर्देश कर देने पर शेष मध्यम सभी नारकियोंका निर्देश हो ही जाता है, अन्यथा यावत् शब्दका उच्चारण नहीं बन सकता है। यावत् शब्दके द्वारा सातवीं पृथिवीके नारकियोंके मर्यादारूपसे स्थापित किये जानेपर दूसरी पृथिवीके नारकियोंके आदिपना अपने आप आ जाता है। आदि और अन्त मध्यके बिना नहीं होते हैं, इसलिए चार पृथिवियोंके नारकियोंके मध्यमपना भी यावत् शब्दके द्वारा ही प्ररूपित कर दिया गया। इसी कारण पृथक् पृथक् रूपसे पृथिवियोंका नाम निर्देशपूर्वक उच्चारण नहीं किया गया है।

नारकियोंमें दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३६ ॥

दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंके ऊपर पृथक् पृथक् छह पृथिवियोंके सम्यग्मिथ्यादृष्टि नारकी संख्यातगुणित हैं क्योंकि सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल युक्तिसे संख्यात-

१ आ-कप्रत्योः णेरइया इति पाठ । २ प्रतिषु ठविदा इति पाठ ।

कालस्स जुत्तीए संखेज्जगुणत्तुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३७ ॥

कुदो ? छप्पुढविसम्मामिच्छादिट्ठिउवक्कमणकालेहिंतो छप्पुढविअसंजदसम्मादिट्ठिउवक्कमणकालाणमसंखेज्जगुणत्तदंसणादो, एगसमएण सम्मामिच्छत्तमुवक्कमंतजीवेहिंतो एगसमएण वेदयसम्मत्तमुवक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो वा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? 'एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण कालेणेत्ति' सुत्तादो । असंखेज्जावलियाहि अंतोमुहुत्तस्स किण्ण विरुज्झदि त्ति उत्ते ण, ओघअसंजदसम्मादिट्ठिअवहारकालं मोत्तूण सेसगुणपडिवण्णाणमवहारकालस्स कज्जे कारणोवयारेण अंतोमुहुत्तसिद्धीदो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८ ॥

छण्हं पुढवीणमसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो सेढीबारस-दसम अट्ठम छट्ठ तइय विदियवग्ग-

---

गुणा पाया जाता है । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७ ॥

क्योंकि, छह पृथिवियोंसम्बन्धी सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंके उपक्रमणकालोंसे छह पृथिवीगत असंयतसम्यग्दृष्टियोंका उपक्रमणकाल असंख्यातगुणा देखा जाता है । अथवा, एक समयके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी अपेक्षा एक समयके द्वारा वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—'इन नारकियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है,' इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे जाना जाता है ।

शंका—अन्तर्मुहूर्तका अर्थ असंख्यात आवलियां लेनेसे उसका अन्तर्मुहूर्तताका विरोधका क्यों नहीं प्राप्त होता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ओघअसंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंके अवहारकालको छोड़कर शेष गुणस्थान प्रतिपन्न जीवोंके अवहारकालका कार्यमें कारणका उपचार करके उसकी अन्तर्मुहूर्तता सिद्ध हो जाती है ।

नारकियोंमें दूसरीसे सातवीं पृथिवी तक असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८ ॥

द्वितीयादि छहों पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे जगश्रेणीके बारहवें, दशवें,

मूलोवट्टिदसेडीमेत्तछप्पुढविमिच्छादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा होंति। को गुणगारो? सेडीए असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि सेडीपढमवग्गमूलाणि। को पडिभागो? असंखेज्जाणि सेडीबारसम दसम अट्ठम छट्ठ-तदिय विदियवग्गमूलाणि। कुदो? असंजदसम्मादिट्ठिरासिणा गुणिदत्तादो।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३९ ॥

सव्वेहि उच्चमाणट्ठाणेहिंतो थोवा त्ति सव्वत्थोवा। कुदो? आवलियाए असंखे ज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालेण संचिदत्तादो।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४० ॥

एत्थ पुव्वं व तीहि पयारेहि संचियसरूवेहि गुणगारो परूवेदव्वो। एत्थ खइयसम्मादिट्ठिणो ण परूविदा, हेट्ठिमछप्पुढवीसु तेसिमुववादाभावा, मणुसगइं मुच्चा अण्ण य दंसणमोहणीयखवणाभावादो च।

छठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे वर्गमूलसे भाजित जगश्रेणीप्रमाण छह पृथिवियोंके मिथ्यादृष्टि नारकी असंख्यातगुणित होते हैं। गुणकार क्या है? जगश्रेणीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? जगश्रेणीके बारहवें, दशवें, आठवें, छठवें, तीसरे और दूसरे असंख्यात वर्गमूलप्रमाण प्रतिभाग है, क्योंकि, ये सब असंयतसम्यग्दृष्टिराशिसे गुणित हैं।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३९ ॥

आगे कहे जानेवाले स्थानोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि थोड़े होते हैं, इसलिये वे सब स्तोक कहलाते हैं, क्योंकि, आवलीके असंख्यातवें भागमात्र उपक्रमणकालसे उनका संचय होता है।

नारकियोंमें द्वितीयादि छह पृथिवियोंके असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४० ॥

यहां पर पहलेके समान संचितस्वरूप अर्थात् मापके विधिभेदस्वरूप तीनों प्रकारोंसे गुणकारका प्ररूपण करना चाहिए (देखो पृ. २४९)। यहां क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका प्ररूपण नहीं किया है, क्योंकि, नीचेकी छह पृथिवियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंकी उत्पत्ति नहीं होती है और मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा नहीं होती है।

चउव्विहतिरिक्खसासणसम्मादिट्ठीहिंतो सग-सगसम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्जगुणा। कुदो? सासणसम्मत्तउवक्कमणकालादो सम्मामिच्छादिट्ठीणमुवक्कमणकालस्स संखेज्जगुणत्तुवलंभा। को गुणगारो? संखेज्जसमया।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ४४ ॥

चउव्विहतिरिक्खसम्मामिच्छादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव असंजदसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जगुणा। कुदो? सम्मामिच्छत्तमुवक्कमंतजीवेहिंतो सम्मत्तमुवक्कमंतजीवाणमसंखेज्जगुणत्तादो। को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। तं कुदो णव्वदे? 'पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण' सुत्तादो, आइरियपरंपरागदुवदेसादो वा।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥४५॥

चदुण्हं तिरिक्खाणमसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा असंखेज्जगुणा य। विप्पडिसिद्धमिदं। जदि अणंतगुणा, कधमसंखेज्जगुणत्तं? अह

चारों प्रकारके सासादनसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंसे अपने अपने सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंच संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सासादनसम्यग्दृष्टियोंके उपक्रमणकालसे सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंका उपक्रमणकाल आगम और युक्तिसे संख्यातगुणा पाया जाता है। गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४४ ॥

चारों प्रकारके सम्यग्मिथ्यादृष्टि तिर्यंचोंसे उनके ही असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव असंख्यातगुणित होते हैं। गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है?

समाधान—'इन जीवराशियोंके प्रमाणद्वारा अन्तर्मुहूर्त कालसे पल्योपम अपहृत होता है' इस द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रसे और आचार्य-परम्परासे आये हुए उपदेशसे जाना जाता है।

उक्त चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ४५ ॥

चारों प्रकारके असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंसे उनके ही मिथ्यादृष्टि तिर्यंच अनन्तगुणित हैं और असंख्यातगुणित भी हैं।

शंका—यह बात तो विप्रतिषिद्ध अर्थात् परस्पर विरोधी है। यदि अनन्त

असंखेज्जगुणा, कधमणंतगुणत्तं, दोण्हमक्कमेण एयत्थ पउत्तिविरोहा ? एत्थ परिहारो उच्चदे- 'जहा उद्देसो तहा णिद्देसो' त्ति णायादो 'तिरिक्खमिच्छाइट्ठी केवडिया अणंता, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठी असंखेज्जा' इदि सुत्तादो वा एवं संबंधो कीरदे- तिरिक्खमिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, सेसतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा त्ति, अण्णहा दोण्हमुच्चारणाए णिष्फलत्तप्पसंगा। को गुणगारो ? तिरिक्खमिच्छादिट्ठीणमभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि गुणगारो। को पडिभागो ? तिरिक्खअसंजदसम्मादिट्ठिरासी पडिभागो। सेसतिरिक्खतियमिच्छादिट्ठीणं गुणगारो पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ असंखेज्जसेडीपढमवग्गमूलमेत्ताओ। को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तपदरंगुलाणि वा पडिभागो। अधवा सग-सगदव्वाणमसंखेज्जदिभागो (गुणगारो)। को पडिभागो ? सग-सगअसंजदसम्मादिट्ठी पडिभागो।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ४६ ॥

अनन्तगुणत्व कैसे बन सकता है, क्योंकि, दोनोंकी एक साथ एक अर्थमें प्रवृत्ति होनेका विरोध है ?

समाधान—इस शंकाका परिहार करते हैं- 'उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है' इस न्यायसे, अथवा 'मिथ्यादृष्टि सामान्य तिर्यंच कितने हैं ? अनन्त हैं, शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच असंख्यात हैं' इस सूत्रसे इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए- मिथ्यादृष्टि सामान्यतिर्यंच अनन्तगुणित हैं और शेष तीन प्रकारके मिथ्यादृष्टि तिर्यंच असंख्यातगुणित हैं। यदि ऐसा न माना जायगा, तो दोनों पदोंकी उच्चारणाके विफलताका प्रसंग प्राप्त होगा।

यहांपर गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार है, जो सम्पूर्ण जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूल प्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि तिर्यंचराशि प्रतिभाग है। शेष तीन प्रकारके तिर्यंच मिथ्यादृष्टियोंका गुणकार जगप्रतरका असंख्यातवां भाग है, जो जगश्रेणीके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमित असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है। अथवा, पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमित प्रतरांगुल प्रतिभाग है। अथवा, अपने अपने द्रव्यका असंख्यातवां भाग गुणकार है। प्रतिभाग क्या है ? अपने अपने असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण प्रतिभाग है।

तिर्यंचोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ४६ ॥

त जहा- चउव्विहेसु तिरिक्खेसु भणिस्समाणसव्वसम्माइट्ठिदव्वादो उवसम सम्माइट्ठी थोवा, आवलियाए असखेज्जदिभागमेत्तउवक्कमणकालब्भतरे सचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ ४७ ॥

कुदो ? असखेज्जवस्साउगेसु पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागमेत्तकालेण सचिदत्तादो, अणादिणिहणसरूवेण उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो खइयसम्मादिट्ठीण आवलियाए असखेज्जदिभागगुणत्तेण अवट्ठाणादो वा । आवलियाए असखेज्जदिभागो गुणगारो त्ति कध णव्वदे ? आइरियपरपरागदुवदेसादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ ४८ ॥

कुदो ? दसणमोहणीयक्खवणुप्पण्णखइयसम्मत्ताण सम्मत्तुप्पत्तीदो पुव्वमेव बद्धतिरिक्खाउआण पउर सभवाभावा । ण य लोए सारदव्वाण दुल्लहत्तमप्पसिद्ध, अस्स-हत्थि-पत्थरादिसु साराण लोए दुल्लहत्तुवलभा ।

वह इस प्रकार है- चारों प्रकारके तिर्यंचोंमें आगे कहे जानेवाले सर्व सम्यग्दृष्टि योंके द्रव्यप्रमाणसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं, क्योंकि, आवलीके असख्यातवें भाग मात्र उपक्रमणकालके भीतर उनका सचय होता है ।

तिर्यंचोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं ॥ ४७ ॥

क्योंकि, असख्यात वर्षकी आयुवाले जीवोंमें पल्योपमके असख्यातवें भागमात्र कालके द्वारा सचित होनेसे, अथवा अनादिनिधनस्वरूपसे उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका आवलीके असख्यातवें भाग गुणितप्रमाणसे अवस्थान पाया जाता है ।

शका—यहा आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है, यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—आचार्य परम्परासे आए हुए उपदेशसे जाना जाता है ।

तिर्यंचोंमें असयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं ॥ ४८ ॥

क्योंकि जिन्होंने सम्यक्त्वकी उत्पत्तिसे पूर्व ही तिर्यंच आयुका बध कर लिया है ऐसे दर्शनमोहनीयके क्षयसे उत्पन्न हुए क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रचुरतासे होना सभव नहीं है । और लोकमें सार पदार्थोंकी दुर्लभता अप्रसिद्ध भी नहीं है, क्योंकि, अश्व, हस्ती और पाषाणादिकोंमें सार पदार्थोंकी सर्वत्र दुर्लभता पाई जाती है ।

सजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्माइट्ठी ॥ ४९ ॥

कुदो ? देसव्वयाणुविद्धुवसमसम्मत्तस्स दुल्लहत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । एदम्हादो गुणगारादो णव्व समयं पडि तदुवचयादो असंखेज्जगुणत्तेणुवचिदा त्ति असंखेज्जगुणत्तं । एत्थ खइय सम्माइट्ठीणमप्पाबहुअं किण्ण परूविदं ? ण, तिरिक्खेसु असंखेज्जवस्साउएसु चेय खइय सम्मादिट्ठीणमुववादुवलंभा । पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु सम्मत्तप्पाबहुअविसेसपदु प्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि विसेसो, पंचिंदियतिरिक्खजोणिणीसु असंजदसम्मादिट्ठि सजदासजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ५१ ॥

सुगममेदं ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ५२ ॥

तिर्यंचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ४९ ॥

क्योंकि, देशव्रतसहित उपशमसम्यक्त्वका होना दुर्लभ है ।

तिर्यंचोंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जी असंख्यातगुणित हैं ॥ ५० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इस गुणकार यह जाना जाता है कि प्रतिसमय उनका उपचय होनेसे वे असंख्यातगुणित संचित हो जाते हैं, इसलिए उनके प्रमाणके असंख्यातगुणितता बन जाती है ।

शंका—यहां संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंचोंका अल्पबहुत्व क्यों नहीं कहा ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, असंख्यात वर्षकी आयुवाले भोगभूमिया तिर्यंचों ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद पाया जाता है ।

अब पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें सम्यक्त्वके अल्पबहुत्वसम्बन्धी विशेष प्रतिपादन करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ५१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ५२ ॥

मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त मणुसिणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ ५३ ॥

तिसु वि मणुसेसु तिण्णि वि उवसामया पवेसणेण अण्णोण्णमवेक्खिय तुल्ला सरिसा, चउवण्णमेत्तादो। ते च्चेय थोवा, उवरिमगुणट्ठाणजीवावेक्खाए।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ ५४ ॥

कुदो ? हेट्ठिमगुणट्ठाणे पडिवण्णजीवाणं चेय उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थपज्जाएण परिणामुवलंभा। संचयस्स अप्पाबहुअं किण्ण परूविदं ? ण, पवेसप्पाबहुएण चेय तदवगमादो। जदो संचओ णाम पवेसाहीणो, तदो पवेसप्पाबहुएण सरिसो संचयप्पाबहुओ त्ति पुध ण उत्तो।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवांभाग गुणकार है। यहां पंचेन्द्रियतिर्यंच योनिमतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, सब [illegible] तिर्यंचोंमें सम्यग्दृष्टि जीवोंका उपपाद नहीं होता है, तथा मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें दर्शनमोहनीयकर्मकी क्षपणाका भी अभाव है।

मनुष्यगतिमें मनुष्य, मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ५३ ॥

सूत्रोक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीनों ही [illegible] प्रवेशकी परस्परकी अपेक्षा तुल्य अर्थात् सदृश हैं क्योंकि, एक समयमें [illegible] चौपन जीवोंका प्रवेश पाया जाता है। तथा, ये जीव ही उपरिम गुणस्थान[illegible] अपेक्षा अल्प हैं।

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव प्रवेशसे पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५४ ॥

क्योंकि, अधस्तन गुणस्थानोंको प्राप्त हुए जीवोंका ही [illegible] छद्मस्थरूप पर्यायसे परिणमन पाया जाता है।

शंका—यहां उपशामकोंके संचयका अल्पबहुत्व क्यों नहीं [illegible] ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, प्रवेशसम्बन्धी अल्पबहुत्व[illegible] जाता है। चूंकि संचय प्रवेशके आधीन होता है, [illegible] संचयका अल्पबहुत्व सदृश है, अतएव उसे पृथक् नहीं [illegible]।

१ मनुष्यगतौ मनुष्याणामुपशमकादि[illegible] [illegible]

अ प्रतौ पवेसहीणो आ-कप्रत्योः पवेसाहिणो [illegible]।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ५५ ॥

कुदो ? अट्ठुत्तरसदमेत्तत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ५६ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्ति
चेव ॥ ५७ ॥

कुदो ? खीणकसायपज्जाएण परिणदाणं चेय उवरिगुणट्ठाणुवक्कमुवलंभा ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ५८ ॥

मणुस मणुसपज्जत्तएसु ओघसजोगिरासिं ठविय हेट्ठिमरासिणा ओवट्टिय गुणगा
उप्पादेदव्वो । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जसजोगिजीवे ठविय अट्ठुत्तरसद मु
तप्पाओग्गसंखेज्जखीणकसाएहि ओवट्टिय गुणगारो उप्पादेदव्वो ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्या
गुणित हैं ॥ ५५ ॥

क्योंकि, क्षपकसम्बन्धी एक गुणस्थानमें एक साथ प्रवेश करनेवाले जीवोंक
प्रमाण एक सौ आठ है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ह
हैं ॥ ५६ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों भी प्रवेश
तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ५७ ॥

क्योंकि, क्षीणकषायरूप पर्यायसे परिणत जीवोंका ही आगेके गुणस्थान
उपक्रमण (गमन) पाया जाता है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणि
हैं ॥ ५८ ॥

सामान्य मनुष्य और पर्याप्त मनुष्योंमेंसे ओघ सयोगिकेवलीराशिको स्थापि
करके और इसे अधस्तनराशिसे भाजित करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए । किन्
मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात सयोगिकेवली जीवोंको स्थापित करके एक सौ आ
संख्याको छोड़कर उनके योग्य संख्यात क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थोंके प्रमाणसे भाजि
करके गुणकार उत्पन्न करना चाहिए ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्ताणं ओघम्हि उत्त-अप्पमत्तरासी चेव होदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जमेत्तो होदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा[1] संखेज्जगुणा[2] ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ता त्ति घेत्तव्वा, वट्टमाणकाले एत्तिया त्ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्माइट्ठी संखेज्जगुणा[3] ॥ ६२ ॥

कुदो ? तत्तो संखेज्जगुणकोडिमेत्तत्तादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघप्ररूपणामें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्य पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात भाग मात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥

मनुष्य सामान्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्यनियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य सामान्य और मनुष्य पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिषु 'संजदा' इति पाठः ।   २ तत्र संखेज्जगुणा संयतासंयताः । स. सि. १, ८

अप्पमत्तसजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ५९ ॥

मणुस मणुसपज्जत्ताणं ओघम्हि उत्त-अप्पमत्तरासी चेव होदि । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जमेत्तो होदि । सेसं सुगमं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६० ॥

एदं पि सुगमं ।

संजदासंजदा संखेज्जगुणा ॥ ६१ ॥

मणुस-मणुसपज्जत्तएसु संजदासंजदा संखेज्जकोडिमेत्ता । मणुसिणीसु पुण तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्ता त्ति घेत्तव्वा, वट्टमाणकाले एत्तिया त्ति उवदेसाभावा । सेसं सुगमं ।

सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ६२ ॥

कुदो ? तत्तो संखेज्जगुणकोडिमेत्तचादो । मणुसिणीसु तदो संखेज्जगुणा, तप्पाओग्गसंखेज्जरूवमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सयोगिकेवलीसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्त संयत संख्यातगुणित हैं ॥ ५९ ॥

ओघप्ररूपणामें कही हुई अप्रमत्तसंयतोंकी राशि ही मनुष्य-सामान्य और मनुष्य पर्याप्तक अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण है । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात भाग मात्र राशि होती है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत संख्यातगुणित हैं ॥ ६१ ॥

मनुष्य सामान्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें संयतासंयत जीव संख्यात कोटिप्रमाण होते हैं । किन्तु मनुष्यनियोंमें उनके योग्य संख्यात रूपमात्र होते हैं, ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि, वे इतने ही होते हैं, इस प्रकारका वर्तमान कालमें उपदेश नहीं पाया जाता । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६२ ॥

क्योंकि, वे संयतासंयतोंके प्रमाणसे संख्यातगुणित कोटिमात्र होते हैं । मनुष्यनियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव मनुष्य सामान्य और मनुष्य पर्याप्तक सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण उनके योग्य संख्यात रूपमात्र है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

१ प्रतिषु सजदा इति पाठः । २ तदः संख्येयगुणाः संयतासंयताः । स. सि. १, ८
३ सासादनसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[1] ॥ ६३ ॥

एदं पि सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा[2] ॥ ६४ ॥

कुदो ? सत्तकोडिसयमेत्तत्तादो । सेसं सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा[3] ॥६५

असंखेज्ज-संखेज्जगुणाणमेगत्थ समवाभावा एवं संबंधो कीरदे– मणुसमिच्छा-दिट्ठी असंखेज्जगुणा । कुदो ? सेडीए असंखेज्जदिभागपरिमाणत्तादो । मणुसपज्ज मणुसिणी मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा, संखेज्जरूवपरिमाणत्तादो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ६६

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यात-गुणित हैं ॥ ६३ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६४ ॥

क्योंकि, असंयतसम्यग्दृष्टि मनुष्योंका प्रमाण सात सौ कोटिमात्र है । शेष सूत्र सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं, और मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६५ ॥

असंख्यातगुणित और संख्यातगुणित आयोंका एक अर्थमें होना संभव नहीं इसलिए इस प्रकार संबंध करना चाहिए– असंयतसम्यग्दृष्टि सामान्य मनुष्यों मिथ्यादृष्टि सामान्य मनुष्य असंख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण जगश्रेणी असंख्यातवें भाग है । तथा मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनी मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात रूपमात्र ही पाया जाता है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सब कम हैं ॥ ६६ ॥

---

१ सम्यग्मिथ्यादृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

२ असंयतसम्यग्दृष्टयः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

३ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

... अच्छंति । तं सत्तमं पडिवज्जंता पाएण महव्वयाइं चेव पडिवज्जंति, ण देसव्वयाइं ति उत्तं होदि ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७० ॥

खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदेहिंतो उवसमसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणं बहूणमुवलंभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ७१ ॥

कुदो ? बहुवायत्तादो, संचयकालस्स बहुत्तादो वा, उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय वेदगसम्मत्तस्स सुलहत्तादो वा ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमे क्षायिकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६७ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ६८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ६९ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मका क्षय करनेवाले और देशसंयममें वर्तमान बहुत जीवोंका अभाव है । दर्शनमोहनीयका क्षय करनेवाले मनुष्य प्रायः असंयमी होकर रहते हैं । वे संयमको प्राप्त होते हुए प्रायः महाव्रतोंको ही धारण करते हैं, अणुव्रतोंको नहीं, यह अर्थ कहा गया है ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७० ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि संयतासंयत मनुष्य बहुत पाये जाते हैं ।

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ७१ ॥

क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंकी अपेक्षा वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी आय अधिक है, अथवा संचयकाल बहुत है, अथवा उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करते हुए अर्थात् उसकी अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वका पाना सुलभ है ।

अप्पसत्थवेदोदएण[1] दसणमोहणीय खवेंतजीवेहिंतो अप्पसत्थवे
दसणमोहणीय उवसमेंतजीवाण मणुसेसु संखेज्जगुणाणमुवलभा ।

वेदगसम्मादिट्ठी ससेज्जगुणा ॥ ७७ ॥

सुगममद ।

एव तिसु अद्धासु ॥ ७८ ॥

एदस्सत्थो– मणुस-मणुसपज्जत्तएसु णिरुद्धेसु तिसु अद्धासु उवसमस
थोवा, थोवकारणत्तादो। खइयसम्मादिट्ठी सखेज्जगुणा, बहुकारणादो। मणुसिणी
खइयसम्मादिट्ठी थोवा, उवसमसम्मादिट्ठी सखेज्जगुणा। एत्थ पुव्वुत्तमेव
उवसामग-खवगाण सचयस्स अप्पाबहुअपरूवणट्ठमुत्तरसुत्त भणदि–

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ७९ ॥

थोवपवेसादो ।

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयका क्षपण करनेवाले जीवों
अप्रशस्त वेदके उदयके साथ ही दर्शनमोहनीयका उपशम करनेवाले जीव मनुष्यों
सख्यातगुणित पाये जाते हैं।

असयतसम्यग्दृष्टि आदि चार गुणस्थानवर्ती मनुष्यनियोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे
वेदकसम्यग्दृष्टि सख्यातगुणित हैं ॥ ७७ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इसी प्रकार तीनों प्रकारके मनुष्योंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें
सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ७८ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– मनुष्य सामान्य और मनुष्य-पर्याप्तकोंसे निरुद्ध
अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव अल्प होते हैं,
क्योंकि उनके अल्प होनेका कारण पाया जाता है। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव
सख्यातगुणित होते हैं क्योंकि उनके बहुत होनेका कारण पाया जाता है। किन्तु
मनुष्यनियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव अल्प हैं और उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव
सख्यातगुणित हैं। यहा सख्यातगुणित होनेका कारण पूर्वोक्त ही है (देखो सूत्र न ८)।
उपशामक और क्षपकोंके सचयका अल्पबहुत्व प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र
कहते हैं–

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ७९ ॥

क्योंकि इनका प्रवेश अल्प होता है।

1 प्रतिषु 'अप्पसत्थवेदोदएण' इति पाठः ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ ८० ॥

बहुप्पवेसादो ।

देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[1] ॥ ८१ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ८२ ॥

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८३ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगोज्झाणि, बहुसो परूविदत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८४ ॥

को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जपदरंगुलाणि वा पडिभागो । सेसं सुगमं ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ८५ ॥

सुगोज्झमिदं सुत्तं ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८६ ॥

तीनों प्रकारके मनुष्योंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ८० ॥

क्योंकि, इनका प्रवेश बहुत होता है ।

देवगतिमें देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८१ ॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ८२ ॥

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ८३ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगोध्य अर्थात् सरलतासे समझने योग्य हैं, क्योंकि, इनका बहुत बार प्ररूपण किया जा चुका है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८४ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, अथवा असंख्यात प्रतरांगुल प्रतिभाग है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ८५ ॥

यह सूत्र सुगोध्य है ।

देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८६ ॥

---

१ देवगदी देवानां नारकवत् । स. सि. १, ८

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ८७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाणकप्पवासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो ॥ ८८ ॥

एदेसिमिदि एत्थ अज्झाहारो कायव्वो, अण्णहा संबंधाभावा । खइयसम्मादिट्ठीणमभाव पडि सत्तमपुढवीए सत्तमाए पुढवीए भंगो एदेसिं होदि । अत्थदो पुण विसेसो अत्थि, तं भणिस्सामो- सव्वत्थोवा भवणवासियसासणसम्मादिट्ठी । सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा । असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? जगपदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । सेडिपमाणाओ ? घणंगुलपढमवग्गमूलस्स असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? असंजदसम्मादिट्ठिरासी पडिभागो ।

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। शेष सूत्रार्थ सुबोध्य (सुगम) है।

उनोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ ८७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

देवोंमें भवनवासी, वानव्यन्तर, ज्योतिष्क देव और देवियां, तथा सौधर्म ईशान कल्पवासिनी देवियां, इनका अल्पबहुत्व सातवीं पृथिवीके अल्पबहुत्वके समान है ॥८८॥

इस सूत्रमें 'इनका' इस पदका अध्याहार करना चाहिए, अन्यथा प्रकृतमें इसका सम्बन्ध नहीं बनता है। क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके अभावकी अपेक्षा समानता पाई जानेसे इन सूत्रोक्त देव देवियोंका सातवी पृथिवीके समान अल्पबहुत्व है। किन्तु अर्थकी अपेक्षा कुछ विशेषता है, उसे कहते हैं- भवनवासी सासादनसम्यग्दृष्टि देव आगे कही जानेवाली राशियोंकी अपेक्षा सबसे कम हैं। उनसे भवनवासी सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं। उनसे भवनवासी असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं। गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। उनसे भवनवासी मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुणित हैं। गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है। वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? घनांगुलके प्रथम वर्गमूलके असंख्यातवें भागमात्र हैं। प्रतिभाग क्या है ? असंयतसम्यग्दृष्टि जीवराशि प्रतिभाग है।

दिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । वेदगसमादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? सव्वत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो त्ति । सेसं सुगमं ।

आणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ ९० ॥

सुगममेदं सुत्तं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९१ ॥

एदं पि सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कधमेदं णव्वदे ? दव्वाणिओगद्दारसुत्तादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९३ ॥

कहे गये कल्पोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं। इनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं। इनसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यात गुणित हैं। गुणकार क्या है ? सर्वत्र आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

आनत प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रैवेयक विमानों तक विमानवासी देवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९० ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त विमानोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९१ ॥

यह सूत्र भी सुगम है।

उक्त विमानोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—द्रव्यानुयोगद्वारसूत्रसे जाना जाता है कि उक्त कल्पोंमें मिथ्यादृष्टि देवोंका गुणकार आवलीका असंख्यातवां भाग है।

उक्त विमानोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९३ ॥

कुदो ? मणुसेहिंतो आणदादिसु उप्पज्जमाणमिच्छादिट्ठी पेक्खिदूण तत्थुप्पज्ज-माणसम्मादिट्ठीण संखेज्जगुणत्तादो । देवेसु सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जमाणजीवाणं किण्ण पहाणत्तं ? ण, तेसिं मूलरासिस्स असंखेज्जदिभागत्तादो । को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९४ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तकालसंचिदत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९५ ॥

कुदो ? संखेज्जसागरोवमकालेण संचिदत्तादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । संचयकालपडिभागेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो गुणगारो किण्ण उच्चदे ? ण, एगसमएण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तजीवाणं उवसमसम्मत्तं पडिवज्जमाणाणमुवलंभा ।

क्योंकि, मनुष्योंसे आनत आदि विमानोंमें उत्पन्न होनेवाले मिथ्यादृष्टियोंकी अपेक्षा वहांपर उत्पन्न होनेवाले सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित होते हैं।

शंका—देवलोकमें सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंकी प्रधानता क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव मूलराशिके असंख्यातवें भागमात्र होते हैं।

उक्त विमानोंमें सम्यग्दृष्टियोंका गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

आनत प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रैवेयक तक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि देव सबसे कम हैं ॥ ९४ ॥

क्योंकि, वे केवल अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा संचित होते हैं।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९५ ॥

क्योंकि, वे संख्यात सागरोपम कालके द्वारा संचित होते हैं। गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका—संचयकालरूप प्रतिभाग होनेकी अपेक्षा पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार क्यों नहीं कहा है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, एक समयके द्वारा पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होते हुए पाये जाते हैं।

वेदगसम्मादिट्ठी सखेज्जगुणा ॥ ९६ ॥

कुदो ? तत्थुप्पज्जमाणखइयसम्मादिट्ठीहिंतो सखेज्जगुणवेदगसम्मादिट्ठीणं तत्थुप्पत्तिदंसणादो ।

अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ९७ ॥

कुदो ? उवसमसेडीचडणोयरणकिरियावावदुवसमसम्मत्तसहिदसंखेज्जसंजदाणमेत्थुप्पण्णाणमंतोमुहुत्तसंचिदाणमुवलंभा ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ९८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो । को पडिभागो ? संखेज्जुवसमसम्मादिट्ठिजीवा पडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ९९ ॥

कुदो ? खइयसम्मत्तेणुप्पज्जमाणसंजदेहिंतो वेदगसम्मत्तेणुप्पज्जमाणसंजदाणं संखेज्ज-

उक्त विमानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९६ ॥

क्योंकि, उन आनतादि कल्पवासी देवोंमें उत्पन्न होनेवाले क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित वेदकसम्यग्दृष्टियोंकी वहां उत्पत्ति देखी जाती है ।

नव अनुदिशोंसे आदि लेकर अपराजित नामक अनुत्तरविमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ ९७ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीपर आरोहण और अवतरणरूप क्रियामें लगे हुए, अर्थात् चढ़ते और उतरते हुए मरकर उपशमसम्यक्त्वसहित वहां उत्पन्न हुए और अन्तर्मुहूर्त कालके द्वारा संचित हुए संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि संयत पाये जाते हैं ।

उक्त विमानोंमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव असंख्यातगुणित हैं ॥ ९८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है । प्रतिभाग क्या है ? संख्यात उपशमसम्यग्दृष्टि जीव प्रतिभाग है ।

उक्त विमानोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ ९९ ॥

क्योंकि, क्षायिकसम्यक्त्वके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयतोंकी

गुणत्तादो । त पि कध णव्वदे ? कारणाणुसारिकज्जदंसणादो मणुसेसु खइयसम्माइट्ठी सजदा थोवा, वेदगसम्माइट्ठी सजदा संखेज्जगुणा, तेण तेहितो देवेसुप्पज्जमाणसज वि तप्पडिभागिया चेवेत्ति घेत्तव्वं । एत्थ सम्मत्तप्पाबहुअं चेव, सेसगुणट्ठाणाभावा कधमेदं णव्वदे ? एदम्हादो चेव सुत्तादो ।

सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्व त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १०० ॥

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १०१ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १०२ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि । सव्वट्ठसिद्धिम्हि तेत्तीससागरोवमट्ठिदि असंखेज्जजीवरासी किण्ण होदि ? ण, तत्थ पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तरम

अपेक्षा वेदकसम्यक्त्वके साथ मरण कर यहां उत्पन्न होनेवाले संयत संख्यातगुणित होते हैं ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि, 'कारणके अनुसार कार्य देखा जाता है,' इस न्यायके अनुसार मनुष्योंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयत अल्प होते हैं, उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि संयत संख्यातगुणित होते हैं। इसलिए उनसे देवोंमें उत्पन्न होनेवाले संयत भी तत्प्रतिभागी ही होते हैं, यह अर्थ ग्रहण करना चाहिए। इन कल्पोंमें यही सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है, क्योंकि, यहां शेष गुणस्थानोंका अभाव है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—इस सूत्रसे ही जाना जाता है कि अनुदिश आदि विमानोंमें केवल एक असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होता है, शेष गुणस्थान नहीं होते हैं ।

सर्वार्थसिद्धि विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ १०० ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०१ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि देव संख्यातगुणित हैं ॥ १०२ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

शंका—तेतीस सागरोपमकी आयुस्थितिवाले सर्वार्थसिद्धिविमानमें असंख्यात जीवराशि क्यों नहीं होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, वहांपर पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र अन्तर है, इसलिए वहां असंख्यात जीवराशिका होना असम्भव है ।

तदसंभवा । जदि एवं, तो आणदादिदेवेसु वासपुधत्ततरेसु संखेज्जावलिओवट्टिदपलिदोवममेत्ता जीवा किण्ण होंति ? ण, तत्थतणमिच्छादिट्ठिआदीणमवहारकालस्स असंखेज्जावलियत्तं फिट्टिदूण संखेज्जावलियमेत्तअवहारकालप्पसंगा । होदु चे ण, ' आणद-पाणद जाव णवगेवज्जविमाणवासियदेवेसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेण । अणुदिसादि जाव अवराइदविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठी दव्वपमाणेण केवडिया, पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो । एदेहि पलिदोवममवहिरदि अंतोमुहुत्तेणेत्ति' एदेण दव्वसुत्तेण जुत्तीए सिद्धअसंखेज्जावलियभागहारगब्भेण सह विरोहा ।

एवं गदिमग्गणा समत्ता ।

शंका—यदि ऐसा है तो वर्षपृथक्त्वके अन्तरसे युक्त आनतादि कल्पवासी देवोंमें संख्यात आवलियोंसे भाजित पल्योपमप्रमाण जीव क्यों नहीं होते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा माननेपर वहांके मिथ्यादृष्टि आदिकोंके अवहारकालके असंख्यात आवलीपना न रहकर संख्यात आवलीमात्र अवहारकाल प्राप्त होनेका प्रसंग आ जायगा ।

शंका—यदि मिथ्यादृष्टि आदि जीवोंके अवहारकाल संख्यात आवलीप्रमाण प्राप्त होते हैं, तो होने दो ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, ऐसा मानने पर ' आनत प्राणत कल्पसे लेकर नवग्रैवेयक विमानवासी देवोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान तक जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है । नव अनुदिशोंसे लेकर अपराजितनामक अनुत्तर विमान तक विमानवासी देवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि जीव द्रव्यप्रमाणकी अपेक्षा कितने हैं ? पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इन जीवराशियोंके द्वारा अन्तर्मुहूर्तकालसे पल्योपम अपहृत होता है ' । इस प्रकार युक्तिसे सिद्ध असंख्यात आवलीप्रमाण भागहार जिनके गर्भमें है, ऐसे इन द्रव्यानुयोगद्वारके सूत्रोंके साथ पूर्वोक्त कथनका विरोध आता है ।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई ।

दव्वाणु ७१-७२ (भा ३ पृ २८१-२८२)

सत्थाण-सव्वपरत्थाणअप्पाबहुआणि एत्थ किण्ण परूविदाणि? ण, परत्थाणादो चेव तेसिं दोण्हमवगमा।

एवं इंदियमग्गणा समत्ता।

कायाणुवादेण तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ १०४ ॥

एदस्सत्थो– एगगुणट्ठाण सेसकाएसु अप्पाबहुअं णत्थि त्ति जाणावणट्ठं तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तग्गहणं कदं। एदेसु दोसु वि अप्पाबहुअं जधा ओघम्मि कदं, तधा कादव्वं, विसेसाभावा। णवरि सग-सगअसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो मिच्छादिट्ठीणं अणंतगुणत्ते पत्ते तप्पडिसेहट्ठमसंखेज्जगुणा त्ति उत्तं, तसकाइय-तसकाइयपज्जत्ताणमाणंतियाभावादो। को गुणगारो? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदि-

शंका— स्वस्थान अल्पबहुत्व और सर्वपरस्थान अल्पबहुत्व यहांपर क्यों नहीं कहे?

समाधान— नहीं, क्योंकि, परस्थान अल्पबहुत्वसे ही उन दोनों प्रकारके अल्पबहुत्वोंका ज्ञान हो जाता है।

इस प्रकार इन्द्रियमार्गणा समाप्त हुई।

कायमार्गणाके अनुवादसे त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है। केवल विशेषता यह है कि असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १०४ ॥

इस सूत्रका अर्थ कहते हैं– एकमात्र मिथ्यादृष्टि गुणस्थानवाले शेष स्थावरकायिक और त्रसकायिक लब्ध्यपर्याप्तकोंमें अल्पबहुत्व नहीं पाया जाता है, यह ज्ञान करानेके लिए सूत्रमें त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक पदका ग्रहण किया है। जिस प्रकार ओघप्ररूपणामें अल्पबहुत्व कह आए हैं, उसी प्रकार त्रसकायिक और त्रसकायिक-पर्याप्तक, इन दोनोंमें भी अल्पबहुत्वका कथन करना चाहिए, क्योंकि, ओघ अल्पबहुत्वसे इनके अल्पबहुत्वमें कोई विशेषता नहीं है। केवल अपने अपने असंयत सम्यग्दृष्टियोंके प्रमाणसे मिथ्यादृष्टियोंके प्रमाणके अनन्तगुणत्व प्राप्त होनेपर उसके प्रतिषेध करनेके लिए असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, ऐसा कहा है, क्योंकि, त्रसकायिक और त्रसकायिक पर्याप्तक जीवोंका प्रमाण अनन्त नहीं है। गुणकार क्या है? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके अस-

१ कायानुवादेन स्थावरकायेषु गुणस्थानभेदाभावादल्पबहुत्वाभावः। कायं प्रत्युच्यते। सर्वतस्तेजस्कायिका अल्पाः। ततो बहवः पृथिवीकायिकाः। ततोऽप्कायिकाः। ततो वातकायिकाः। सर्वतोऽनन्तगुणा वनस्पतयः। त्रसकायिकानां पञ्चेन्द्रियवत्। स. सि. १, ८.

भागमेत्ताओ। को पडिभागो? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि। सेसं सुगमं।

एवं कायमग्गणा समत्ता।

जोगाणुवादेण पंचमणजोगि-पंचवचिजोगि-कायजोगि-ओरालियकायजोगीसु तीसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १०५ ॥

एदेहि उत्तसव्वजोगेहि सह उवसमसेढिं चडंताणं उक्कस्सेण चउवण्णत्तमत्थि त्ति तुल्लत्तं परूविदं। उवरिमगुणट्ठाणजीवेहिंतो ऊणा त्ति थोवा त्ति परूविदा। एदेसिं बारसण्हमप्पाबहुआणं तिसु अद्धासु ट्ठिदउवसमगा मूलपदं जादा।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तेत्तिया चेव ॥ १०६ ॥

सुगममेदं।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १०७ ॥

अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो।

ख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

इस प्रकार कायमार्गणा समाप्त हुई।

योगमार्गणाके अनुवादसे पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा परस्पर तुल्य और अल्प हैं ॥ १०५ ॥

इन सूत्रोक्त सब योगोंके साथ उपशमश्रेणी पर चढ़नेवाले उपशामक जीवोंकी संख्या उत्कर्षसे चौपन होती है, इसलिए उनकी तुल्यता कहा है। तथा उपरिम अर्थात् क्षपकश्रेणीसम्बन्धी गुणस्थानवर्ती जीवोंसे कम होते हैं, इसलिए उन्हें अल्प कहा है। इस प्रकार पांचों मनोयोगी, पांचों वचनयोगी, काययोगी और औदारिककाययोगी, इन बारह अल्पबहुत्वोंका प्रमाण लानेके लिए अपूर्वकरण आदि तीनों गुणस्थानोंमें स्थित उपशामक मूलपद अर्थात् अल्पबहुत्वके आधार हुए।

उक्त बारह योगवाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०६ ॥

यह सूत्र सुगम है।

उक्त बारह योगवाले उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १०७ ॥

क्योंकि, क्षपकोंकी संख्याका प्रमाण एक सौ आठ है।

---

१ योगानुवादेन वाङ्मानसयोगिनां पञ्चेन्द्रियवत्। काययोगिनां सामान्यवत्। स. सि. १, ८

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १०८ ॥

सुगममेद।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ १०९ ॥

एदं पि सुगमं। जत्थ जोगेसु सजोगिगुणट्ठाणं संभवदि, तेसिं चेवेदमप्पाबहुअं घेत्तव्वं।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ११० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया। जहा ओघम्हि संखेज्जसमयसाहणं कदं, तहा एत्थ वि कायव्वं।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १११ ॥

एत्थ वि जहा ओघम्हि गुणगारो साहिदो तहा साहेदव्वो। णवरि अप्पिदजोगजीवरासिपमाणं णादूण अप्पाबहुअं कायव्वं।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ११२ ॥

उक्त बारह योगवाले क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १०८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

सयोगिकेवली जीव प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही है ॥ १०९ ॥

यह सूत्र भी सुगम है। किन्तु उपर्युक्त बारह योगोंमेंसे जिन योगोंमें सयोगिकेवली गुणस्थान सम्भव है, उन योगोंका ही यह अल्पबहुत्व ग्रहण करना चाहिए।

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ११० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है। जिस प्रकार ओघमें संख्यात समयरूप गुणकारका साधन किया है, उसी प्रकार यहांपर भी करना चाहिए।

सयोगिकेवलीसे उपर्युक्त बारह योगवाले अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १११ ॥

जिस प्रकारसे ओघमें गुणकार सिद्ध किया है उसी प्रकारसे यहांपर भी सिद्ध करना चाहिए। केवल विशेषता यह है कि विवक्षित योगवाली जीवराशिके प्रमाणको जानकर अल्पबहुत्व करना चाहिए।

उक्त बारह योगवाले अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११२ ॥

सुगममेदं।

सजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ११३ ॥

को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागस्स संखेज्जदिभागो। सेसं सुगमं।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११४ ॥

को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। कारणं जाणिदूण वत्तव्वं।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ११५ ॥

को गुणगारो? संखेज्जसमया। एत्थ वि कारणं णिहालिय वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ११६ ॥

को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। जोगद्धाणं समासं कादूण तेण सामण्णरासिमोवट्टिय अप्पिदजोगद्धाए गुणिदे इच्छिद इच्छिदरासीओ होंति। एदेण पयारेण सव्वत्थ दव्वपमाणमुप्पाइय अप्पाबहुअं वत्तव्वं।

यह सूत्र सुगम है।

उक्त बारह योगवाले प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥११३॥

गुणकार क्या है? पल्योपमके असंख्यातवें भागका संख्यातवां भाग गुणकार है। शेष सूत्रार्थ सुगम है।

उक्त बारह योगवाले संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११४ ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है। इसका कारण जानकर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ २४९)।

उक्त बारह योगवाले सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ११५ ॥

गुणकार क्या है? संख्यात समय गुणकार है। यहा पर भी इसका कारण स्मरण कर कहना चाहिए (देखो इसी भागका पृ २५०)।

उक्त बारह योगवाले सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ११६ ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवा भाग गुणकार है। योगसम्बन्धी कालोंका समास (योग) करके उससे सामान्यराशिको भाजित कर पुन विवक्षित योगके कालसे गुणा करनेपर इच्छित इच्छित योगवाले जीवोंकी राशिया हो जाती हैं। इस प्रकारसे सर्वत्र द्रव्यप्रमाणको उत्पन्न करके उनका अल्पबहुत्व कहना चाहिए।

//

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी अणंत...

एत्थ एवं संबंधो कायव्वो । तं जहा- पंचमणजोगि पंचवचिजो... दिट्ठीहिंतो तेसिं चेव जोगाणं मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुण... असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ । केत्तियमेत्ताओ ? सेडीए अ... मेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि ... कायजोगि ओरालियकायजोगिअसंजदसम्मादिट्ठीहिंतो तेसिं चेव जोगाणं ... अणंतगुणा । को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहिं अणंतगुणो, सिद्धेहि ति... अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि त्ति ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्तापमत्तसंजदट्ठाणे ...प्पाबहुअमोघं ॥ ११८ ॥

एदेसिं गुणट्ठाणाणं जधा ओघम्हि सम्मत्तप्पाबहुअं उत्तं, तधा ... अणूणाहियं वत्तव्वं ।

उक्त बारह योगवाले असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे (पांचों मनोयोगी, पांचों व... योगी) मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं, और (काययोगी तथा औदा... काययोगी) मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ११७ ॥

यहांपर इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिए । जैसे- पांचों मनोयोगी और पांच... वचनयोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं... गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है जो असंख्यात जगश्रेणी... प्रमाण है । वे जगश्रेणियां कितनी हैं ? जगश्रेणीके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । प्रतिभाग... क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है । ... काययोगी और औदारिककाययोगी असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे उन्हीं योगोंके मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं । गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उक्त बारह योगवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि संयतासंयत प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ११८ ॥

इन सूत्रोक्त चारों गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार यहांपर भी हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात् तत्प्रमाण ही अल्पबहुत्व कहना चाहिए ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ ११९ ॥

सुगममेदं ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १२० ॥

एदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १२१ ॥

अप्पिदजोगउवसामगेहिंतो अप्पिदजोगाणं खवा संखेज्जगुणा । एत्थ पक्खेवसंखेवेण मूलरासिमोवट्टिय अप्पिदपक्खेवेण गुणिय इच्छिदरासिपमाणमुप्पाएदव्वं ।

ओरालियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ १२२ ॥

कवाडे चडणोयरणकिरियावावदचालीसजीवमेत्तत्तादो थोवा जादा ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२३ ॥

कुदो ? देव-णेरइय-मणुस्सेहिंतो आगंतूण तिरिक्ख-मणुस्सेसुप्पण्णाणं असंजदसम्मादिट्ठीणमोरालियमिस्सम्हि सजोगिकेवलीहिंतो संखेज्जगुणाणमुवलंभा ।

इसी प्रकार उक्त बारह योगवाले जीवोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ११९ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

उक्त बारह योगवाले जीवोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १२० ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

उक्त बारह योगवाले उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२१ ॥

विवक्षित योगवाले उपशामकोंसे विवक्षित योगवाले क्षपक जीव संख्यातगुणित होते हैं । यहांपर प्रक्षेपसंक्षेपके द्वारा मूलराशिको भाजित करके विवक्षित प्रक्षेपराशिसे गुणा करके इच्छित राशिका प्रमाण उत्पन्न कर लेना चाहिए (देखो द्रव्यप्र. भाग ३ पृ. ८८-९०) ।

औदारिकमिश्रकाययोगी जीवोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हैं ॥ १२२ ॥

क्योंकि, कपाटसमुद्घातके समय आरोहण और अवतरण क्रियामें संलग्न चालीस जीवोंके अस्तित्वसे औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली सबसे कम हो जाते हैं ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १२३ ॥

क्योंकि, देव, नारकी और मनुष्योंसे आकर तिर्यंच और मनुष्योंमें उत्पन्न हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीव औदारिकमिश्रकाययोगमें सयोगिकेवली जिनोंसे संख्यातगुणित पाये जाते हैं ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १२४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १२५ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १२६ ॥

दंसणमोहणीयक्खएणुप्पण्णसद्दहणाण जीवाणमइदुल्लभत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १२७ ॥

खओवसमियसम्मत्ताण जीवाणं बहूणमुवलंभा । को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

वेउव्वियकायजोगीसु देवगदिभंगो ॥ १२८ ॥

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १२४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १२५ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सब जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२६ ॥

क्योंकि, दर्शनमोहनीयकर्मके क्षयसे उत्पन्न हुए श्रद्धानवाले जीवोंका होना अतिदुर्लभ है ।

औदारिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ १२७ ॥

क्योंकि क्षायोपशमिक सम्यक्त्ववाले जीव बहुत पाये जाते हैं । गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

वैक्रियिककाययोगियोंमें (संभव गुणस्थानवर्ती जीवोंका) अल्पबहुत्व देवगतिके समान है ॥ १२८ ॥

जधा देवगदिम्हि अप्पाबहुअं उत्तं, तधा वेउव्वियकायजोगीसु वत्तव्वं। तं जधा- सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी। सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा। असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा। मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा। असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी। खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा। वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।

वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी ॥ १२९ ॥

कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३० ॥

को गुणगारो? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। एत्थ कारणं सभालिय वत्तव्वं।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३१ ॥

को गुणगारो? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। को पडिभागो? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि।

जिस प्रकार देवगतिमें जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार वैक्रियिककाययोगियोंमें कहना चाहिए। जैसे- वैक्रियिककाययोगी सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं। उनसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें वैक्रियिककाययोगी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं। उनसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं। उनसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १२९ ॥

इसका कारण पूर्वके समान कहना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३० ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है। यहांपर कारण संभालकर कहना चाहिए।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३१ ॥

गुणकार क्या है? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है। वे जगश्रेणियां भी जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं। प्रतिभाग क्या है? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है।

...संखेज्जगुणअसंजदसम्मादिट्ठिआदिगुणट्ठाणेहिंतो सचयसभव...

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३४ ॥

तिरिक्खेहिंतो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तवेदगसम्मादिट्ठिजीवाणं दे... उववादसंभवादो। को गुणगारो? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदो... वमपढमवग्गमूलाणि।

आहारकायजोगि-आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदट्ठाणे... सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १३५ ॥

सुगममेदं।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १३२ ॥

क्योंकि उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें मरे हुए जीवोंका प्रमाण अत्यन्त अल्प होता है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३३ ॥

क्योंकि उपशमश्रेणीमें मरे हुए उपशामकोंसे संख्यातगुणित असंयतसम्यग्दृष्टि ...र गुणस्थानोंकी अपेक्षा क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका संचय संभव है।

वैक्रियिकमिश्रकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे ...सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १३४ ॥

क्योंकि तिर्यंचोंसे पल्योपमके असंख्यातवें भागमात्र वेदकसम्यग्दृष्टि जीवोंका देवोंमें उत्पन्न होना संभव है। गुणकार क्या है? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १३५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १३६ ॥

एदं पि सुगमं। उवसमसम्मादिट्ठीणमेत्थ संभवाभावा तेसिमप्पाबहुगं ण कं
किमट्ठं उवसमसम्मत्तेण आहाररिद्धी ण उप्पज्जदि ? उवसमसम्मत्तकालम्हि अ
तदुप्पत्तीए संभवाभावा। ण उवसमसेडिम्हि उवसमसम्मत्तेण आहाररिद्धीओ ल
तत्थ पमादाभावा। ण च तत्तो ओइण्णाणं आहाररिद्धी उवलब्भइ, जत्तियमेत्तेण क
आहाररिद्धी उप्पज्जइ, उवसमसम्मत्तस्स तत्तियमेत्तकालमवट्ठाणाभावा।

कम्मइयकायजोगीसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ १३७ ॥

कुदो ? पदर-लोगपूरणेसु उक्कस्सेण सट्ठिमेत्तसजोगिकेवलीणमुवलंभा।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १३८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमप
वग्गमूलाणि।

आहारककाययोगी और आहारकमिश्रकाययोगियोंमें प्रमत्तसंयत गुणस्थ
क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १३६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है। इन दोनों योगोंमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका ह
सम्भव नहीं है, इसलिए उनका अल्पबहुत्व नहीं कहा है।

शंका—उपशमसम्यक्त्वके साथ आहारकऋद्धि क्यों नहीं उत्पन्न होती है ?

समाधान—क्योंकि, अत्यन्त अल्प उपशमसम्यक्त्वके कालमें आहारकऋद्धि
उत्पन्न होना सम्भव नहीं है। न उपशमसम्यक्त्वके साथ उपशमश्रेणीमें आहारकऋद्धि प
जाती है, क्योंकि, वहांपर प्रमादका अभाव है। न उपशमश्रेणीसे उतरे हुए जीवोंके भी उ
शमसम्यक्त्वके साथ आहारकऋद्धि पाई जाती है, क्योंकि, जितने कालके द्वारा आहार
ऋद्धि उत्पन्न होती है, उपशमसम्यक्त्वका उतने काल तक अवस्थान नहीं रहता है।

कार्मणकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ १३७ ॥

क्योंकि, प्रतर और लोकपूरणसमुद्घातमें अधिकसे अधिक केवल साठ सयो
केवली जिन पाये जाते हैं।

कार्मणकाययोगियोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्या
गुणित हैं ॥ १३८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपम
असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

...सम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ १४...

कुदो ? उवसमसेडिम्हि उवसमसम्मत्तेण मदसजदाण संखेज्जत्तादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १४२ ॥

पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागमेत्तखइयसम्मादिट्ठीहिंतो असंखेज्जजीवा विग्ग...
किण्ण करेंति त्ति उत्ते उच्चदे— ण ताव दो खइयसम्मादिट्ठिणो असंखेज्जा अक्कमे...
मरंति, मणुसेसु असंखेज्जखइयसम्मादिट्ठिप्पसंगा । ण च मणुसेसु असंखेज्जा मरंति, ...

कार्मणकाययोगियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ १३९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । यहांपर इसका कारण जानकर कहना चाहिए । (देखो इसी भागका पृ. २५१ और तृतीय भागका पृ. ४७१)

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १४० ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा गुणकार है जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १४१ ॥

क्योंकि उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यक्त्वके साथ मरे हुए संयतोंका प्रमाण संख्यात ही होता है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४२ ॥

शंका—पल्योपमके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे असंख्यात जीव विग्रह क्यों नहीं करते हैं ?

समाधान—इसी आशंकापर आचार्य कहते हैं कि न तो असंख्यात क्षायिक सम्यग्दृष्टि देव एक साथ मरते हैं, अन्यथा मनुष्योंमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके होनेका प्रसंग आ जायगा । न मनुष्योंमें ही असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव मरते हैं,

तत्थासंखेज्जाणं सम्मादिट्ठीणमभावा । ण तिरिक्खा असंखेज्जा मारणंतिय करंति, आयाणुसारिवयत्तादो । तेण विग्गहगदीए खइयसम्मादिट्ठिणो संखेज्जा चेव होंता वि उवसमसम्मादिट्ठीहिंतो संखेज्जगुणा, उवसमसम्मादिट्ठिकारणादो खइयसम्मादिट्ठिकारणस्स संखेज्जगुणत्तादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । को पडिभागो ? खइयसम्मादिट्ठिरासिगुणिदअसंखेज्जावलियाओ ।

एवं जोगमग्गणा समत्ता ।

वेदाणुवादेण इत्थिवेदएसु दोसु वि अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १४४ ॥

क्योंकि, उनमें असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंका अभाव है । न असंख्यात क्षायिकसम्यग्दृष्टि तिर्यंच ही मारणान्तिकसमुद्घात करते हैं, क्योंकि, उनमें आयके अनुसार व्यय होता है । इसलिए विग्रहगतिमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यात ही होते हैं । संख्यात होते हुए भी वे उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे संख्यातगुणित होते हैं, क्योंकि, उपशमसम्यग्दृष्टियोंके (आयके) कारणसे क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके (आयका) कारण संख्यातगुणा है ।

विशेषार्थ—कार्मणकाययोगमें पाये जानेवाले उपशमसम्यग्दृष्टि जीव तो केवल उपशमश्रेणीसे मरकर ही आते हैं, किन्तु क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणीके अतिरिक्त असंयतसम्यग्दृष्टि आदि गुणस्थानोंसे मरकर भी कार्मणकाययोगमें पाये जाते हैं । अतः उनका संख्यातगुणित पाया जाना स्वतः सिद्ध है ।

कार्मणकाययोगियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४३ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिसे गुणित असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है ।

इस प्रकार योगमार्गणा समाप्त हुई ।

वेदमार्गणाके अनुवादसे स्त्रीवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों ही गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १४४ ॥

---

१ वेदानुवादेन स्त्रीपुंवेदानां पञ्चदिवत् । स. सि. १, ८

दसपरिमाणत्तादो'।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १४५ ॥

वीसपरिमाणत्तादो'।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १४६ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १४७ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १४८ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि। को पडिभागो ? संखेज्जरूवगुणिदअसंखेज्जावलियाओ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १४९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो। किं कारणं ? [illegible]

क्योंकि, क्षीणकी उपशामक जीवोंका प्रमाण दस है।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४५ ॥

क्योंकि उनका परिमाण बीस है।

स्त्रीवेदियोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४६ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

स्त्रीवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १४७ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४८ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है ? संख्यात रूपोंसे गुणित असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है।

स्त्रीवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १४९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

शंका — इसका कारण क्या है ?

समाधान — क्योंकि, अशुभ सासादनगुणस्थानके [illegible]

[illegible]

सुलहत्तादो ।

सम्मामिच्छाइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५० ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । किं कारणं ? सासणायादो संखेज्जगुणाय संभवादो ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५१ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । किं कारणं ? सम्मामिच्छादिट्ठि आयं पेक्खिदूण असंखेज्जगुणायत्तादो ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५२ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५३ ॥

स्त्रीवेदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । इसका कारण यह है कि सासादनसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकी आयसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी संख्यातगुणित आय सम्भव है, अर्थात् दूसरे गुणस्थानमें जितने जीव आते हैं, उनसे संख्यातगुणित जीव तीसरे गुणस्थानमें आते हैं ।

स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । इसका कारण यह है कि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवोंकी आयको देखते हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवोंकी असंख्यातगुणी आय होती है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५२ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५३ ॥

...यवादी । ...

उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढ वग्गमूलाणि । को पडिभागो ? असंखेज्जावलियपडिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १५५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत्त अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १५६ ॥

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५७ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १५८ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ १५९ ॥

क्योंकि, स्त्रीवेदियोंमें संख्यात रूपमात्र ही क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५४ ॥

गुणकार क्या है? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है। प्रतिभाग क्या है? असंख्यात आवलियां प्रतिभाग है।

स्त्रीवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १५५ ॥

गुणकार क्या है? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

स्त्रीवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ १५६ ॥

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५७ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १५८ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं।

इसी प्रकार अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदियोंका अल्पबहुत्व है ॥ १५९ ॥

सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा, इच्चेएण सामण्णा।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १६० ॥

एदं सुत्तं पुणरुत्तं किण्ण होदि ? ण, एत्थ पवेसमएहि अहियाराभावा। संचएण एत्थ अहियारो, ण सो पुव्वं परूविदो। तेण ण पुणरुत्तत्तमिदि।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६१ ॥

सुगममेदं।

पुरिसवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १६२ ॥

चउवण्णपमाणत्तादो।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १६३ ॥

अट्ठुत्तरसदमेत्तत्तादो।

क्योंकि, इन दोनों गुणस्थानोंमें स्त्रीवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, और उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उनसे संख्यातगुणित होते हैं, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १६० ॥

शंका—यह सूत्र पुनरुक्त क्यों नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, यहां पर प्रवेशकी अपेक्षा इस सूत्रका अधिकार नहीं है, किन्तु संचयकी अपेक्षा यहांपर अधिकार है और यह संचय पहले प्ररूपण नहीं किया गया है। इसलिये यहांपर कहे गये सूत्रके पुनरुक्तता नहीं है।

स्त्रीवेदियोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १६२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है।

पुरुषवेदियोंमें उक्त दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६३ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है।

१ गो. जी. ६२९. २ गो. जी. ६२९. पुरिसाणं अट्ठसयं एगसमयओ सिज्झे। प्रव. द्वा. ५१.

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १६४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १६५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ १६६ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १६७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १६८ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । सेसं सुगमं ।

पुरुषवेदियोंमें दोनों गुणस्थानोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ १६४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

पुरुषवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६५ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

पुरुषवेदियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

पुरुषवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १६७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

पुरुषवेदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १६८ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

असजदसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ १६९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

मिच्छादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ १७० ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असखेज्जाओ सेडीओ सेडि असंखेज्जदिभागमेत्ताओ।

असजदसम्मादिट्ठि-सजदासजद-पमत्त-अप्पमत्तसजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ १७१ ॥

एदेसिं जधा ओघम्हि सम्मत्तप्पाबहुअं उत्तं तधा वत्तव्वं।

एवं दोसु अद्धासु ॥ १७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी, खइयसम्मादिट्ठी सखेज्जगुणा, इच्चेदेहि साधम्मादो

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १७३ ॥

पुरुषवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असयतसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं ॥ १६९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है।

पुरुषवेदियोंमें असयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं ॥ १७० ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असख्यातवा भाग गुणकार है, जो जगश्रेणीके असख्यातवें भागमात्र असख्यात जगश्रेणीप्रमाण है।

पुरुषवेदियोंमें असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १७१ ॥

इन गुणस्थानोंका जिस प्रकार ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहापर कहना चाहिए।

इसी प्रकार पुरुषवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १७२ ॥

क्योंकि उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं और क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव उनसे सख्यातगुणित हैं, इस प्रकार ओघके साथ समानता पाई जाती है।

पुरुषवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १७४ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

णउंसयवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १७५ ॥

कुदो ? पचपरिमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १७६ ॥

कुदो ? दसपरिमाणत्तादो ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ १७७ ॥

कुदो ? संचयरासिपडिग्गहादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ १७८ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७४ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १७५ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण पांच है ।

नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव प्रवेशकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १७६ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण दश है ।

नपुंसकवेदियोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७७ ॥

क्योंकि, उनकी संचयराशिका ग्रहण किया गया है ।

नपुंसकवेदियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १७८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

१ नपुंसकवेदानां × × सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ [illegible] दस चेव णवुंसा दहु । [illegible]

सजदासजदा असंखेज्जगुणा ॥ १७९ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १८० ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । कारणं चिंतिय वत्तव्वं ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ १८२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ १८३ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढम-वग्गमूलाणि ।

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १७९ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

नपुंसकवेदियोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १८० ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

नपुंसकवेदियोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । इसका कारण विचारकर कहना चाहिए (देखो भाग ३ पृ. ४१८ इत्यादि) ।

नपुंसकवेदियोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ १८२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

नपुंसकवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ १८३ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा गुणकार है, जो सब जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

असंजदसम्मादिट्ठि संजदासंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघ… ॥ १८४ ॥

असंजदसम्मादिट्ठीण ताव उच्चदे– सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी । खइय सम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? पढमपुढवीखइयसम्मादिट्ठीण पहाणत्तब्भुवगमादो । वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

संजदासंजदाण सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी । कुदो ? मणुसपज्जत्तणउंसयवेदे मोत्तूण तेसिमण्णत्थाभावा । उवसमसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? पलिदो वमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि । वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

पमत्त अपमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ १८५ ॥

नपुंसकवेदियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि और संयतासंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्व सम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ १८४ ॥

इनमेंसे पहले असंयतसम्यग्दृष्टि नपुंसकवेदी जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं– नपुंसकवेदी उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं । उनसे नपुंसकवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि यहांपर प्रथम पृथिवीके क्षायिकसम्यग्दृष्टि नारकी जीवोंकी प्रधानता स्वीकार की गई है । नपुंसकवेदी क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे नपुंसकवेदी वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

संयतासंयत नपुंसकवेदी जीवोंका अल्पबहुत्व कहते हैं– नपुंसकवेदी संयता…यत क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, क्योंकि मनुष्य पर्याप्तक नपुंसकवेदी …जीवोंको छोड़कर उनका अन्यत्र अभाव है । नपुंसकवेदी संयतासंयत क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे …शमसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां …गुणकार है जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है । नपुंसकवेदी संयता…त उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं । गुणकार क्या … आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि …सबसे कम हैं ॥ १८५ ॥

कुदो ? अप्पसत्थवेदोदएण बहूणं दंसणमोहणीयक्खवगाणमभावा ।

उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८६ ॥

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ १८७ ॥

सुगमाणि दो वि सुत्ताणि ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ १८८ ॥

जधा पमत्तापमत्ताणं सम्मत्तप्पाबहुअं परूविदं, तधा दोसु अद्धासु सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी, उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा त्ति परूवेयव्वं ।

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ १८९ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९० ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

क्योंकि, अप्रशस्त वेदके उदयके साथ दर्शनमोहनीयके क्षपण करनेवाले बहुत जीवोंका अभाव है।

नपुंसकवेदियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८६ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १८७ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इसी प्रकार नपुंसकवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ १८८ ॥

जिस प्रकारसे नपुंसकवेदी प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार अपूर्वकरण आदि दो गुणस्थानोंमें 'क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं, उनसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं' इस प्रकार प्ररूपण करना चाहिए।

नपुंसकवेदियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ १८९ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १९० ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

अवगदवेदएसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ १९१ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९२ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९३ ॥

कुदो ? अट्ठुत्तरसदपमाणत्तादो[2] ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ १९४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ १९५ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ १९६ ॥

एदं पि सुगमं ।

एवं वेदमग्गणा समत्ता ।

अपगतवेदियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९१ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९२ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

अपगतवेदियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ १९३ ॥

क्योंकि इनका प्रमाण एक सौ आठ है ।

अपगतवेदियोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ १९५ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ १९६ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

इस प्रकार वेदमार्गणा समाप्त हुई ।

१ ×× अवहारो व सामान्यवत् । प्र. खि १, ४ २ गो. जी. १२१

कसायाणुवादेण कोधकसाइ माणकसाइ मायकसाइ लोभकसाईसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसेसाहिया ॥ १९९ ॥

दोउवसामयपवेसएहिंतो संखेज्जगुणे[1] दोगुणट्ठाणपवेसयखवए पक्खिदूण कध सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खवएसु पविसतजीवे पेक्खिदूण तेसि सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंताण चउवण्णपरिमाणाण

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लोभकषायियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवोंमें क्षपकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवाले क्षपकोंको देखकर अर्थात् उनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधिक कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकषायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवेश करनेवाले जीवोंको देखते हुए लोभकषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें प्रवेश करनेवाले और चौपन संख्यारूप परिमाणवाले उन लोभकषायी जीवोंके विशेष

१ कषायानुवादेन क्रोधमानमायाकषायाणां पुंवत् । ××× लोभकषायाणां द्वयोरुपशमकयोस्तुल्या संख्या । क्षपकाः संख्येयगुणाः । सूक्ष्मसाम्परायशुद्धचुपशमसंयताः विशेषाधिकाः । सूक्ष्मसाम्परायक्षपकाः संख्येयगुणाः । कषायाणां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

२ प्रतिषु 'संखेज्जगुणा' इति पाठः ।

विसेसाहियत्ताविरोहा । कुदो ? लोभकसाईसु त्ति विसेसणादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उवसामगेहिंतो खवगाण दुगुणत्तुवलंभा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि । चदुकसायअप्पमत्तसंजदाणमत्थ संदिट्ठी २ । ३ । ४ । ७ । पमत्तसंजदाण संदिट्ठी ४ । ६ । ८ । १४ ।

अधिक होनेमें कोई विरोध नहीं है । विरोध न होनेका कारण यह है कि सूत्रमें 'लोभकषायी जीवोंमें ' ऐसा विशेषणपद दिया गया है ।

लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ २०० ॥

क्योंकि, उपशामकोंसे क्षपक जीवोंका प्रमाण दुगुणा पाया जाता है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं॥२०२॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है । यहां चारों कषायवाले अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण या अल्पबहुत्व बतलानेवाली अंकसंदृष्टि इस प्रकार है– २ । ३ । ४ । ७ । तथा चारों कषायवाले प्रमत्तसंयतोंकी अंकसंदृष्टि ४ । ६ । ८ और १४ है ।

विशेषार्थ— यहां पर चतुष्कषायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतोंके प्रमाणका ज्ञान करानेके लिये जो अंकसंदृष्टि बतलाई गई है उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य तिर्यंचोंमें मानकषायका काल सबसे कम है उससे क्रोध माया और लोभकषायका काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक होता है । (देखो भाग ३ पृ ४८)। तदनुसार यहां पर अप्रमत्तसंयत और प्रमत्तसंयतोंका अंकसंदृष्टि द्वारा प्रमाण बतलाया गया है कि मानकषायवाले अप्रमत्तसंयत सबसे कम हैं जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (२) दो बतलाया गया है । इनसे क्रोधकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (३) तीन बतलाया गया है । इनसे मायाकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (४) चार बतलाया गया है । इनसे लोभकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (७) सात बतलाया गया है । चूंकि अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दुगुणा माना गया है अतएव यहां अंकसंदृष्टिमें भी उनका प्रमाण क्रमशः दूना ४, ६, ८ और १४ बतलाया गया है । ये अंकसंख्या काल्पनिक हैं और उसका अभिप्राय स्थूल रूपसे चारों कषायोंका

कसायाणुवादेण कोधकसाइ माणकसाइ-मायकसाइ-लोभकसा... दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ १९७ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ १९८ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

णवरि विसेसा, लोभकसाईसु सुहुमसांपराइय-उवसमा विसे... हिया ॥ १९९ ॥

दोउवसामयपवेसएहिंतो संखेज्जगुणे[1] दोगुणट्ठाणपवेसयक्खवए पेक्ख... कध सुहुमसांपराइयउवसामया विसेसाहिया ? ण एस दोसो, लोभकसाएण खव... पविसंतजीवे पेक्खिदूण तेणेव सुहुमसांपराइयउवसामएसु पविसंताण चउवण्णपरिमा...

कषायमार्गणाके अनुवादसे क्रोधकषायी, मानकषायी, मायाकषायी और लो... कषायियोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जी... प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ १९७ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

चारों कषायवाले जीवोंमें उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ १९८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

केवल विशेषता यह है कि लोभकषायी जीवोंमें क्षपकोंसे सूक्ष्मसाम्परायि... उपशामक विशेष अधिक हैं ॥ १९९ ॥

शंका—अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दो उपशामक गुणस्थानोंमें प्रवे... करनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणित प्रमाणवाले इन्हीं दो गुणस्थानोंमें प्रवेश करनेवा... क्षपकोंको देखकर अर्थात् इनकी अपेक्षासे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक विशेष अधि... कैसे हो सकते हैं ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं, क्योंकि, लोभकषायके उदयसे क्षपकोंमें प्रवे... करनेवाले जीवोंको देखते हुए लोभकषायके उदयसे सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंमें... प्रवेश करनेवाले और संख्यातरूप परिणामवाले इन लोभकषायी जीवोंके विश...

[illegible]

विसेसाहियत्ताविरोहा । कुदो ? लोभकसाईसु त्ति विसेसणादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २०० ॥

उवसामगेहिंतो खवगाणं दुगुणत्तुवलंभा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २०१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २०२ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि । चदुकसायअप्पमत्तसंजदाणमेत्थ संदिट्ठी २ । ३ । ४ । ७ । पमत्तसंजदाणं संदिट्ठी ४ । ६ । ८ । १४ ।

अधिक होनेमें कोई विरोध नहीं है। विरोध न होनेका कारण यह है कि सूत्रमें 'लोभ कषायी जीवोंमें' ऐसा विशेषणपद दिया गया है।

लोभकषायी जीवोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामकोंसे सूक्ष्मसाम्परायिक क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ २०० ॥

क्योंकि, उपशामकोंसे क्षपक जीवोंका प्रमाण दुगुणा पाया जाता है।

चारों कषायवाले जीवोंमें क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २०१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

चारों कषायवाले जीवोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥२०२॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है। यहां चारों कषायवाले अप्रमत्तसंयतोंका प्रमाण या अल्पबहुत्व बतलानेवाली अंकसंदृष्टि इस प्रकार है– २।३।४।७। तथा चारों कषायवाले प्रमत्तसंयतोंकी अंकसंदृष्टि ४।६।८ और १४ है।

विशेषार्थ—यहां पर चतु कषायी अप्रमत्त और प्रमत्त संयतोंके प्रमाणका ज्ञान करानेके लिए जो अंकसंदृष्टि बतलाई गई है उसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य तिर्यंचोंमें मानकषायका काल सबसे कम है उससे क्रोध, माया और लोभकषायका काल उत्तरोत्तर विशेष अधिक होता है। (देखो भाग ३, पृ ४२१)। तदनुसार यहां पर अप्रमत्तसंयत और प्रमत्तसंयतोंका अंकसंदृष्टि द्वारा प्रमाण बतलाया गया है कि मानकषायवाले अप्रमत्तसंयत सबसे कम है, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (२) दो बतलाया गया है। इनसे क्रोधकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (३) तीन बतलाया गया है। इनसे मायाकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (४) चार बतलाया गया है। इनसे लोभकषायवाले अप्रमत्तसंयत विशेष अधिक होते हैं, जिनका प्रमाण अंकसंदृष्टिमें (७) सात बतलाया गया है। चूंकि अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयतोंका प्रमाण दुगुणा माना गया है, इसलिए यहां अंकसंदृष्टिमें भी उनका प्रमाण क्रमशः दूना ४, ६, ८ और १४ बतलाया गया है। यह अंकसंख्या काल्पनिक है, और उसका अभिप्राय स्थूल रूपसे चारों कषायोंका

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[1] ॥ २०३ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २०४ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २०५ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २०६ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[2] ॥ २०७ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

परस्पर आपेक्षिक प्रमाण बतलाना मात्र है। इसी हानाधिकताके लिए देखो भाग ३, पृ ४३४ आदि।

चारों कषायवाले जीवोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत असंख्यातगुणित हैं ॥२०३॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

चारों कषायवाले जीवोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २०४ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

चारों कषायवाले जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ २०५ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

चारों कषायवाले जीवोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि असंख्यातगुणित हैं ॥ २०६ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है।

चारों कषायवाले जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि अनन्तगुणित हैं ॥ २०७ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणा और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणा प्रमाण गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

---

१ प्रतिषु 'असंजदसंजदा असंखेज्जगुणा' इति पाठः ।

अकसाईसु सव्वत्थोवा उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ॥२१२॥

चउवण्णपरिमाणत्तादो[1]।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था संखेज्जगुणा ॥ २१३ ॥

अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो[1]।

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २१४ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २१५ ॥

कुदो ? अणूणाधियओघरासित्तादो ।

एवं कसायमग्गणा समत्ता ।

णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि सुदअण्णाणि विभंगण्णाणीसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[2] ॥ २१६ ॥

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ सबसे कम हैं ॥ २१२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है।

अकषायी जीवोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ संख्यातगुणित हैं ॥ २१३ ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है।

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २१४ ॥

यह सूत्र सुगम है।

अकषायी जीवोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥२१५॥

क्योंकि, उनका प्रमाण ओघराशिसे न कम है, न अधिक है।

इस प्रकार कषायमार्गणा समाप्त हुई।

ज्ञानमार्गणाके अनुवादसे मत्यज्ञानी, श्रुताज्ञानी और विभंगज्ञानी जीवोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि सबसे कम हैं ॥ २१६ ॥

---

१ गो जी ६२९

२ ज्ञानानुवादेन मत्यज्ञानि श्रुताज्ञानिषु सर्वतः स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टयः । स सि १, ८

एदं पि सुगमं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २२० ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २२१ ॥

सुगममेदं ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २२२ ॥

कुदो ? अणूणाहियओघरासित्तादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २२३ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ २२४ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षपकोंसे क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २२१ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण ओघराशिसे न कम है, न अधिक है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २२३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

मति, श्रुत और अवधिज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २२४ ॥

१ चत्वारः क्षपकाः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.
२ अप्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.
३ प्रमत्तसंयताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.
४ संयतासंयताः (अ.) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

मणपज्जवणाणीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ २३० ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३१ ॥

खवा संखेज्जगुणा[1] ॥ २३२ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २३३ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा[1] ॥ २३४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमयाणि।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ २३५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२३६॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २३० ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३१ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३२ ॥

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २३३ ॥

ये सूत्र सुगम हैं।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥२३५॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २३६ ॥

१ मनःपर्ययज्ञानिषु [illegible] । स. सि. १, ८. [illegible]
[illegible] । स. सि. १, ८. [illegible]
२ [illegible] । स. सि.
३ [illegible] । स. सि. १, ८

उवसमसेडीदो ओदिण्णाणं उवसमसेडिं चढमाणाणं वा उवसमसम्मत्तेण थो जीवाणमुवलंभा।

खइयसम्माइट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३७ ॥

खइयसम्मत्तेण मणपज्जवणाणिमुणिवराणं बहुआणमुवलंभा।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २३८ ॥

सुगमं।

एवं तिसु अद्धासु ॥ २३९ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २४० ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४१ ॥

एदाणि तिण्णि सुत्ताणि सुगमाणि, बहुसो परूविदत्तादो।

केवलणाणीसु सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ २४२ ॥

क्योंकि, उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले, अथवा उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले मनःपर्ययज्ञानी थोड़े जीव उपशमसम्यक्त्वके साथ पाये जाते हैं।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३७ ॥

क्योंकि, उक्त गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वके साथ बहुतसे मनःपर्ययज्ञानी मुनिवर पाये जाते हैं।

मनःपर्ययज्ञानियोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २३८ ॥

यह सूत्र सुगम है।

इसी प्रकार मनःपर्ययज्ञानियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन उपशामक गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २३९ ॥

मनःपर्ययज्ञानियोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २४० ॥

उपशामक जीवोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४१ ॥

ये तीनों सूत्र सुगम हैं, क्योंकि, ये बहुत बार प्ररूपण किए जा चुके हैं।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा दोनों ही तुल्य और तावन्मात्र ही हैं ॥ २४२ ॥

[illegible]

तुल्ला तत्तिया सद्दा हेउ हेउमतभावेण जोजेयव्वा । तं कधं ? जेण तुल्ला, तेण तत्तिया त्ति । केत्तिया ते ? अट्ठुत्तरसयमेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा[1] **॥ २४३ ॥**

पुव्वकोडिकालम्हि संचयं गदा सजोगिकेवलिणो एगसमयपवेसगेहिंतो संखेज्जगुणा, संखेज्जगुणेण कालेण मिलिदत्तादो ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और तावन्मात्र, ये दोनों शब्द हेतु हेतुमद्भावसे सम्बन्धित करना चाहिए।

शंका—यह कैसे ?

समाधान—चूंकि, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इसलिए वे तावन्मात्र अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण हैं।

शंका—वे कितने हैं ?

समाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४३ ॥

पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सयोगिकेवली एक समयमें प्रवेश करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, वे संख्यातगुणित कालसे संचित हुए हैं।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौवन है।

संयतोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥

यह सूत्र सुगम है।

संयतोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २४६ ॥

---

१ [illegible]

तुल्ला तत्तिया सद्दा हेउ हेउमतभावेण जोजेयव्वा । तं कथं ? जेण तुल्ला तत्तिया त्ति । केत्तिया ते ? अट्ठुत्तरसयमेत्ता ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा[1] ॥ २४३ ॥

पुव्वकोडिकालम्हि संचयं गदा सजोगिकेवलिणो एगसमयपवेसगेहिंतो संखेज्जगुणा, संखेज्जगुणेण कालेण मिलिदत्तादो ।

एवं णाणमग्गणा समत्ता ।

संजमाणुवादेण संजदेसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा ॥ २४४ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४५ ॥

सुगममेदं ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २४६ ॥

तुल्य और उतने मात्र, ये दोनों शब्द हेतु हेतुमद्भावसे साधित करना च...

शंका—यह कैसे ?

समाधान—चूंकि, सयोगिकेवली और अयोगिकेवली परस्पर तुल्य हैं, इ...
वे सात सात अर्थात् पूर्वोक्त प्रमाण हैं ।

शंका—वे कितने हैं ?

समाधान—वे एक सौ आठ संख्याप्रमाण हैं ।

केवलज्ञानियोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥२...

पूर्वकोटीप्रमाण कालमें संचयको प्राप्त हुए सयोगिकेवली एक समयमें प्रवेश करनेवालोंकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं, क्योंकि, वे संख्यातगुणित कालसे संचित हुए हैं ।

इस प्रकार ज्ञानमार्गणा समाप्त हुई ।

संयममार्गणाके अनुवादसे संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २४४ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौवन है ।

संयतोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४५ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥२४...

को गुणगारो? दोण्णि रूवाणि। किं कारणं? जेण णाण-वेदादिसव्ववियप्पेसु उवसमसेडिं चडंतजीवेहिंतो खवगसेडिं चडंतजीवा दुगुणा त्ति आइरिओवदेसादो। एगसमएण तित्थयरा छ खवगसेडिं चडंति। दस पत्तेयबुद्धा चडंति, बोहियबुद्धा अट्ठुत्तरसयमेत्ता, सग्गच्चुआ तत्तिया चेव। उक्कस्सोगाहणाए दोण्णि खवगसेडिं चडंति, जहण्णोगाहणाए चत्तारि, मज्झिमोगाहणाए अट्ठ। पुरिसवेदेण अट्ठुत्तरसयमेत्ता, णउंसयवेदेण दस, इत्थिवेदेण वीस। एदेसिमद्धमेत्ता उवसमसेडिं चडंति त्ति घेत्तव्वं।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ २४७ ॥

केत्तिया? अट्ठुत्तरसयमेत्ता। कुदो? संजमसामण्णविवक्खादो।

गुणकार क्या है? दो रूप गुणकार है।

शंका—क्षपकोंका गुणकार दो होनेका कारण क्या है?

समाधान—चूंकि, ज्ञान, वेद आदि सर्व विकल्पोंमें उपशमश्रेणीपर चढ़नेवाले जीवोंसे क्षपकश्रेणीपर चढ़नेवाले जीव दुगुणे होते हैं, इस प्रकार आचार्योंका उपदेश पाया जाता है।

एक समयमें एक साथ छह तीर्थंकर क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। दश प्रत्येकबुद्ध, एक सौ आठ बोधितबुद्ध और स्वर्गसे च्युत होकर आए हुए उतने ही जीव अर्थात् एक सौ आठ जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। उत्कृष्ट अवगाहनावाले दो जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। जघन्य अवगाहनावाले चार और ठीक मध्यम अवगाहनावाले आठ जीव एक साथ क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। पुरुषवेदके उदयके साथ एक सौ आठ, नपुंसकवेदके उदयसे दश और स्त्रीवेदके उदयसे बीस जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ते हैं। इन उपर्युक्त जीवोंके आधे प्रमाण जीव उपशमश्रेणीपर चढ़ते हैं ऐसा अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

संयतोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४७ ॥

शंका—क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ कितने होते हैं?

समाधान—एक सौ आठ होते हैं, क्योंकि यहांपर संयम-सामान्यकी विवक्षा की गई है।

१ [illegible]

२ [illegible]

कुदो ? पुव्वकोडिसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ २५५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २६० ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५४ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है) ।

इसी प्रकार संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २५८ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५९ ॥

क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६० ॥

१ संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या । ततः संख्येयगुणा क्षपकाः । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला त
चेव ॥ २४८ ॥

सुगमेदं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ २४९ ॥

कुदो ? एगसमयादो संचयकालसमूहस्स संखेज्जगुणत्तुवलंभा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २५०

को गुणगारो ? संखेज्जसमया । एत्थ ओघकारणं चिंतिय वत्तव्वं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ २५१ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२५

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५३ ॥

संयतोंमें सयोगिकेवली और अयोगिकेवली जिन ये दोनों ही प्रवेशकी अ
तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ २४८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

संयतोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ २४९ ॥
क्योंकि, एक समयकी अपेक्षा संचयकालका समूह संख्यातगुणा पाया जाता

संयतोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत
संख्यातगुणित हैं ॥ २५० ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है । यहांपर राशिके ओघके स
होनेका कारण चिन्तवन कर कहना चाहिए । इसका कारण यह है कि दोनों स्थानों
संयम सामान्य ही विवक्षित है (देखो सूत्र नं. ८) ।

संयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि
सबसे कम हैं ॥ २५२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि
क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५३ ॥

कुदो ? पुव्वकोडिसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २५४ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ २५५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २५६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सामाइयच्छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजदेसु दोसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ २५८ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २५९ ॥

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ २६० ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

संयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५४ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है) ।

इसी प्रकार संयतोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २५५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ २५६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ २५८ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २५९ ॥

क्षपकोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६० ॥

[1] संयमानुवादेन सामायिकच्छेदोपस्थापनशुद्धिसंयतेषु द्वयोरुपशमकयोस्तुल्यसंख्या । ... तत संख्येयगुणा क्षपका । स. सि. १, ८.

२ अप्रमत्ता संख्येयगुणा । स. सि. १, ८.

पमत्तसजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ २६१ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२६२॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६३ ॥

पुव्वकोडिसंचयादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २६४ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

एवं दोसु अद्धासु ॥ २६५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ २६६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ २६७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६१ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २६२ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६३ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल पूर्वकोटी वर्ष है ।

सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २६४ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है)।

इसी प्रकार उक्त जीवोंके अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण, इन दोनों गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ २६५ ॥

उक्त जीवोंमें उपशामक सबसे कम हैं ॥ २६६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक संख्यातगुणित हैं ॥ २६७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

---

१ [illegible] । [illegible] १, ८

परिहारसुद्धिसंजदेसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा' ॥ २६८ ॥

सुगममेदं ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा' ॥ २६९ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥२७०॥

कुदो ? खइयसम्मत्तस्स पउर संभवाभावा ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ २७१ ॥

कुदो ? खओवसमियसम्मत्तस्स पउरं संभवादो । एत्थ उवसमसम्मत्तं णत्थि, प वासेण विणा परिहारसुद्धिसंजमस्स संभवाभावा । ण च तेत्तियकालमुवसमसम्मत्तस्सावट्ठाणमत्थि, जेण परिहारसुद्धिसंजमेण उवसमसम्मत्तस्सुवलद्धी होज्ज ? ण च परिहारसुद्धिसंजमछड्डतस्स उवसमसेडीचडणट्ठं दंसणमोहणीयस्सुवसामण्णं पि संभवइ, जेणुवसमसेडिम्हि दोण्हं पि संजोगो होज्ज ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ २६८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत संख्यातगुणित हैं ॥ २६९ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७० ॥

क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव नहीं है ।

परिहारशुद्धिसंयतोंमें प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ २७१ ॥

क्योंकि क्षायोपशमिकसम्यक्त्वका प्रचुरतासे होना संभव है । यहां परिहारशुद्धिसंयतोंमें उपशमसम्यक्त्व नहीं होता है, क्योंकि तीस वर्षके विना परिहारशुद्धिसंयमका होना संभव नहीं है । और न उतने काल तक उपशमसम्यक्त्वका अवस्थान रहता है, जिससे कि परिहारशुद्धिसंयमके साथ उपशमसम्यक्त्वकी उपलब्धि हो सके । दूसरी बात यह है कि परिहारशुद्धिसंयमको नहीं छोड़नेवाले जीवके उपशमश्रेणीपर चढ़नेके लिए दर्शनमोहनीयकर्मका उपशमन होना भी संभव नहीं है, जिससे कि उपशमश्रेणीमें उपशमसम्यक्त्व और परिहारशुद्धिसंयम इन दोनोंका भी संयोग हो सके ।

परिहारसुद्धिसंजदेसु अप्रमत्त य प्रमत्त संखेज्जगुणा इ वि १ ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा
॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७४

जधा अकसाईणमप्पाबहुगं उत्तं तधा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाणं वि
मिदि उत्तं होदि ।

संजदासंजदेसु अप्पाबहुअं णत्थि ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पाबहुअं उच्चदे । तं जहा–

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७६

कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक जी
हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्या
हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें अल्पबहुत्व अकषायी जीवोंके समान है ॥

जिस प्रकार अकषायी जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार य
विहारशुद्धिसंयतोंका भी अल्पबहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संयतासंयत जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संयतासंयत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहांपर स
सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है–

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७६

क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

१ [illegible] । स. सि. १, ८

२ [illegible] । स. सि.

३ [illegible] । स. सि. १, ८

४ [illegible] । स. सि. १, ८

उवसमसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ २७७ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो, असखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

वेदगसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ २७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कारण जाणिदूण वत्तव्व ।

असजदेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी[1] ॥ २७९ ॥

कुदो ? छावलियसचयादो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी सखेज्जगुणा[2] ॥ २८० ॥

कुदो ? सखेज्जावलियसचयादो ।

असजदसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा[3] ॥ २८१ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

सयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे उपशमसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं ॥ २७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असख्यातवा भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

सयतासयत गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि असख्यातगुणित हैं ॥ २७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है । इसका कारण जानकर कहना चाहिए । (देखो सूत्र न २०) ।

असयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७९ ॥

क्योंकि उनका सचयकाल छह आवलीमात्र है ।

असयतोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सख्यातगुणित हैं ॥ २८० ॥

क्योंकि उनका सचयकाल सख्यात आवलीप्रमाण है ।

असयतोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असयतसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं ॥ २८१ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असख्यातवा भाग गुणकार है क्योंकि यह स्वाभाविक है ।

१ असयतेषु सर्वत स्तोका सासादनसम्यग्दृष्टय । स सि १

२ सम्यग्मिथ्यादृष्टय सख्येयगुणा । स सि १ ८

३ असयतसम्यग्दृष्टयोऽसख्येयगुणा । स सि १ ८

सुहुमसांपराइयसुद्धिसंजदेसु सुहुमसांपराइयउवसमा
॥ २७२ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा ॥ २७३ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

जधाक्खादविहारसुद्धिसंजदेसु अकसाइभंगो ॥ २७४

जधा अकसाईणमप्पाबहुगं उत्तं तधा जहाक्खादविहारसुद्धिसंजदाण
मिदि उत्तं होदि ।

संजदासंजदेसु अप्पाबहुअं णत्थि ॥ २७५ ॥

एयपदत्तादो । एत्थ सम्मत्तप्पाबहुअं उच्चदे । तं जहा–

संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ॥ २७

कुदो ? संखेज्जपमाणत्तादो ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें सूक्ष्मसाम्परायिक उपशामक
हैं ॥ २७२ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

सूक्ष्मसाम्परायिकशुद्धिसंयतोंमें उपशामकोंसे क्षपक जीव सं
हैं ॥ २७३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

यथाख्यातविहारशुद्धिसंयतोंमें अल्पबहुत्व अकषायी जीवोंके समान है

जिस प्रकार अकषायी जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार
विहारशुद्धिसंयतोंका भी अल्पबहुत्व करना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

संयतासंयत जीवोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ २७५ ॥

क्योंकि, संयतासंयत जीवोंके एक ही गुणस्थान होता है । यहांपर
सम्बन्धी अल्पबहुत्व कहते हैं । वह इस प्रकार है–

संयतासंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २७

क्योंकि, उनका प्रमाण संख्यात ही है ।

१ [illegible] । ष. खं. १, ८

२ [illegible] । [illegible]
२१ । [illegible] । ष. खं. १, ८

दंसणाणुवादेण चक्खुदंसणि-अचक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठिप
जाव खीणकसायवीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ २८६ ॥

जधा ओघम्हि एदेसिमप्पाबहुगं परूविदं तधा एत्थ वि परूवेदव्वं, विसेसाभा
विसेसपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

णवरि चक्खुदंसणीसु मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८७ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए
असंखेज्जदिभागमेत्ताओ। कुदो ? साभावियादो।

ओधिदंसणी ओधिणाणिभंगो ॥ २८८ ॥

केवलदंसणी केवलणाणिभंगो ॥ २८९ ॥

दो वि सुत्ताणि सुगमाणि।

एवं दंसणमग्गणा समत्ता।

दर्शनमार्गणाके अनुवादसे चक्षुदर्शनी और अचक्षुदर्शनी जीवोंमें मिथ्यादृष्टिस
लेकर क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ २८६ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानवर्ती जीवोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार
यहांपर भी कहना चाहिए, क्योंकि, दोनोंमें कोई विशेषता नहीं है। अब चक्षुदर्शनी
जीवोंमें सम्भव विशेषताके प्ररूपण करनेके लिए उत्तर सूत्र कहते हैं—

विशेषता यह है कि चक्षुदर्शनी जीवोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि
संख्यातगुणित हैं ॥ २८७ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है जो असंख्यात
श्रेणिप्रमाण है। वे जगश्रेणियां भी जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र हैं। इसका
कारण क्या है ? ऐसा स्वभावसे है।

अवधिदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ २८८ ॥

केवलदर्शनी जीवोंका अल्पबहुत्व केवलज्ञानियोंके समान है ॥ २८९ ॥

ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं।

इस प्रकार दर्शनमार्गणा समाप्त हुई।

१ दर्शनानुवादेन चक्षु ... [illegible]
२ प्रतिषु ... [illegible]

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ २८२ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि । कुदो ? साभावियादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥२८३॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८४ ॥

कुदो ? सागरोवमसंचयादो । को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २८५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? साभावियादो ।

एवं संजममग्गणा समत्ता ।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ २८२ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित और सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ २८३ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८४ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल सागरोपम है । गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

असंयतोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ २८५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यह स्वाभाविक है ।

इस प्रकार संयममार्गणा समाप्त हुई ।

---

१ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स. सि. १, ८

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३०४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । सेसं सुगमं ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०६ ॥

को गुणगारो ? पदरस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाओ सेडीओ, सेडीए असंखेज्जदिभागमेत्ताओ । को पडिभागो ? घणंगुलस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पदरंगुलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ ३०७ ॥

जधा ओघम्हि अप्पाबहुअमेदेसिं उत्तं सम्मत्तं पडि, तधा एत्थ सम्मत्तप्पाबहुअं वत्तव्वमिदि वुत्तं होइ ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है । शेष सूत्रार्थ सुगम है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०६ ॥

गुणकार क्या है ? जगप्रतरका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है, जो जगश्रेणीके असंख्यातवें भागमात्र असंख्यात जगश्रेणीप्रमाण है । प्रतिभाग क्या है ? घनांगुलका असंख्यातवां भाग प्रतिभाग है, जो असंख्यात प्रतरांगुलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३०७ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहना चाहिए, यह अर्थ कहा गया है ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ २९९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

तेउलेस्सिय पम्मलेस्सिएसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा ॥ ३०० ॥

कुदो ? संखेज्जपरिमाणत्तादो ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ ३०१ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३०२ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३०३ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो । कुदो ? सोहम्मीसाण-सणक्कुमार-माहिंदरासिपरिग्गहादो ।

कापोतलेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदक-सम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित है ॥ २९९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३०० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण संख्यात है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३०१ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यात-गुणित हैं ॥ ३०२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

तेजोलेश्या और पद्मलेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३०३ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है, क्योंकि, यहां पर सौधर्म ईशान और सनत्कुमार माहेन्द्र कल्पसम्बन्धी देवराशिको ग्रहण किया गया है ।

१ तत्र पद्मलेश्याना सर्वत स्तोका अप्रमत्ता । स सि १, ८

२ प्रमत्ताः संख्येयगुणा । स सि १, ८ ३ एवमितरेषां पंचेन्द्रियवत् । स सि १, ८

सुक्कलेस्सिएसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ ३०८ ॥

सुगममेदं ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३०९ ॥

कुदो ? चउवण्णपमाणत्तादो ।

खवा संखेज्जगुणा[2] ॥ ३१० ॥

अट्ठुत्तरसदपरिमाणत्तादो ।

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३११ ॥

सुगममेदं ।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३१२ ॥

एदं पि सुगमं ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा[3] ॥ ३१३ ॥

शुक्ललेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३०८ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३०९ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण चौपन है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१० ॥

क्योंकि, उनका परिमाण एक सौ आठ है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३११ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सयोगिकेवली प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३१२ ॥

यह सूत्र भी सुगम है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सयोगिकेवली संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३१३ ॥

१ शुक्ललेश्यानां सर्वतः स्तोका उपशमकाः । स. सि. १, ८

२ क्षपकाः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८   ३ सयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

को गुणगारो ? ओघसिद्धो ।

अप्पमत्तसजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३१४ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

पमत्तसजदा संखेज्जगुणा ॥ ३१५ ॥

को गुणगारो ? दोण्णि रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा ॥ ३१६ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३१७ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३१८ ॥

गुणकार क्या है ? ओघमें बतलाया गया गुणकार ही यहांपर गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१४ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥३१५॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥३१६॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें संयतासंयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१७ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३१८ ॥

१ [illegible]
२ [illegible]
३ [illegible]
[illegible]
४ [illegible]

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३१९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२० ॥

आरणच्चुदरासिस्स पहाणत्तपरियप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहांपर आरण अच्युतकल्पसम्बन्धी देवराशिकी प्रधानता विवक्षित है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है) ।

---

१ मिथ्यादृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः (?) । स. सि. १, ८.

संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुगमोघं ॥ ३२४ ॥

जधा एदेसिमोघम्हि सम्मत्तप्पाबहुगं वुत्तं, तहा वत्तव्वं ।

एवं तिसु अद्धासु ॥ ३२५ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३२६ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३२७ ॥

एदाणि तिण्णि वि सुत्ताणि सुगमाणि ।

एवं लेस्सामग्गणा समत्ता ।

भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छाइट्ठी जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ॥ ३२८ ॥

एत्थ ओघअप्पाबहुअं अणूणाहियं वत्तव्वं ।

शुक्ललेश्यावालोंमें संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२४ ॥

जिस प्रकार इन गुणस्थानोंका ओघमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी कहना चाहिए ।

इसी प्रकार शुक्ललेश्यावालोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व है ॥ ३२५ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३२६ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२७ ॥

ये तीनों ही सूत्र सुगम हैं ।

इस प्रकार लेश्यामार्गणा समाप्त हुई ।

भव्यमार्गणाके अनुवादसे भव्यसिद्धोंमें मिथ्यादृष्टिसे लेकर अयोगिकेवली गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३२८ ॥

यहांपर ओघसम्बन्धी अल्पबहुत्व हीनता और अधिकतासे रहित अर्थात् वत्यमाण ही कहना चाहिए ।

को गुणगारो ? संखेज्जा समया ।

मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३१९ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२० ॥

आरणच्चुदरासिस्स पहाणत्तपरिवप्पणादो ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३२१ ॥

कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचयादो ।

खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३२२ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३२३ ॥

खओवसमियसम्मत्तादो ।

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३१९ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३२० ॥

क्योंकि, यहांपर आरण अच्युतकल्पसम्बन्धी राशिकी प्रधानता विवक्षित है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३२१ ॥

क्योंकि, उनका संचयकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३२२ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

शुक्ललेश्यावालोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि संख्यातगुणित हैं ॥ ३२३ ॥

क्योंकि, वेदकसम्यग्दृष्टियोंके क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता है (जिसकी प्राप्ति सुलभ है)।

---

१ [illegible] । [illegible] १, ८

२ [illegible] । [illegible] १, ८

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३३३ ॥

खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३३४ ॥

सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला तत्तिया चेव ॥ ३३५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ॥ ३३६ ॥

गुणगारो ओघसिद्धो, खइयसम्मत्तविरहिदसजोगीणमभावा ।

अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणुवसमा संखेज्जगुणा ॥ ३३७ ॥

को गुणगारो ? तप्पाओग्गसंखेज्जरूवाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ॥ ३३८ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३३ ॥

क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३४ ॥

सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दोनों ही प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३५ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

सयोगिकेवली जिन संचयकालकी अपेक्षा संख्यातगुणित हैं ॥ ३३६ ॥

यहांपर गुणकार ओघसिद्ध है, क्योंकि क्षायिकसम्यक्त्वसे रहित सयोगिकेवली नहीं पाये जाते हैं ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३७ ॥

गुणकार क्या है ? अप्रमत्तसंयतोंके योग्य संख्यातरूप गुणकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३८ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

अभवसिद्धिएसु अप्पाबहुअं णत्थि[1] ॥ ३२९ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एवं भवियमग्गणा समत्ता ।

सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु ओधिणाणिभंगो ॥ ३३० ॥

जधा ओधिणाणीणमप्पाबहुगं परूविदं, तधा एत्थ परूवेदव्वं । णवरि सजोगि अजोगिपदाणि वि एत्थ अत्थि, सम्मत्तसामण्णे अहियारादो ।

खइयसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[2] ॥ ३३१ ॥

तप्पाओग्गसंखेज्जपमाणत्तादो ।

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव[3] ॥ ३३२ ॥

सुगममेदं ।

अभव्यसिद्धोंमें अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३२९ ॥

क्योंकि, उनके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है ।

इस प्रकार भव्यमार्गणा समाप्त हुई ।

सम्यक्त्वमार्गणाके अनुवादसे सम्यग्दृष्टि जीवोंमें अल्पबहुत्व अवधिज्ञानियोंके समान है ॥ ३३० ॥

जिस प्रकार ज्ञानमार्गणामें अवधिज्ञानियोंका अल्पबहुत्व कहा है, उसी प्रकार यहांपर भी कहना चाहिए । केवल विशेषता यह है कि सयोगिकेवली और अयोगिकेवली, ये दो गुणस्थानपद यहांपर होते हैं, क्योंकि, यहांपर सम्यक्त्वसामान्यका अधिकार है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३३१ ॥

क्योंकि, उनका तत्प्रायोग्य संख्यात प्रमाण है ।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३३२ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

---

१ अभव्यानां नास्त्यल्पबहुत्वम् । स. सि. १, ८.

२ सम्यक्त्वानुवादेन क्षायिकसम्यग्दृष्टिषु चतुः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । स. सि. १, ८.

३ इतरेषां प्रमत्तान्तानां सामान्यवत् । स. सि. १, ८.

संजदासंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ ३३९ ॥

मणुसगदिं मोत्तूण अण्णत्थ खइयसम्मादिट्ठिसंजदासंजदाणमभावा।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३४० ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम वग्गमूलाणि।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे खइय सम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४१ ॥

एदस्स अहिप्पाओ- जेण खइयसम्मत्तस्स एदेसु गुणट्ठाणेसु भेदो णत्थि, तेण णत्थि सम्मत्तप्पाबहुगं, एयपयत्तादो। एसो अत्थो एदेण परूविदो होदि।

वेदगसम्मादिट्ठीसु सव्वत्थोवा अप्पमत्तसंजदा[3] ॥ ३४२ ॥

कुदो ? तप्पाओग्गसंखेज्जपमाणत्तादो।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३३९ ॥

क्योंकि, मनुष्यगतिको छोड़कर अन्य गतियोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयत जीवोंका अभाव है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४० ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है।

क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें क्षायिकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४१ ॥

इस सूत्रका अभिप्राय यह है कि इन असंयतसम्यग्दृष्टि आदि चारों गुणस्थानोंमें क्षायिकसम्यक्त्वकी अपेक्षा कोई भेद नहीं है, इसलिए उनमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व नहीं है, क्योंकि, इन सबमें क्षायिकसम्यक्त्वका एक पद ही विवक्षित है। यह अर्थ इस सूत्रके द्वारा प्रकाशित किया गया है।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयत जीव सबसे कम हैं ॥ ३४२ ॥

क्योंकि, इनका तत्प्रायोग्य संख्यातका प्रमाण है।

---

१ [illegible]

२ [illegible]

३ [illegible]

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[1] ॥ ३४३ ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३४४ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढम-वग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[3] ॥ ३४५ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे वेदगसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३४६ ॥

एत्थ भेदसद्दो अप्पाबहुअपज्जाओ घेत्तव्वो, गद्दाणमणेयत्थत्तादो । वेदगसम्मत्तस्स भेदो अप्पाबहुअं णत्थि त्ति उत्तं होदि ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४३ ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४४ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३४५ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें वेदकसम्यक्त्वका भेद नहीं है ॥ ३४६ ॥

यहांपर भेद शब्द अल्पबहुत्वका पर्यायवाचक ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि शब्दोंके अनेक अर्थ होते हैं । इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह अर्थ कहा गया है कि इन गुणस्थानोंमें वेदकसम्यक्त्वका भेद अर्थात् अल्पबहुत्व नहीं है ।

---

१ प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ संयतासंयता असंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

उवसमसम्मादिट्ठीसु तिसु अद्धासु उवसमा पवेसणेण तुल्ला थोवा[1] ॥ ३४७ ॥

उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३४८ ॥

अप्पमत्तसंजदा अणुवसमा संखेज्जगुणा[2] ॥ ३४९ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा[3] ॥ ३५० ॥

को गुणगारो ? दो रूवाणि ।

संजदासंजदा असंखेज्जगुणा[4] ॥ ३५१ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[5] ॥ ३५२ ॥

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें उपशामक जीव प्रवेशकी अपेक्षा तुल्य और अल्प हैं ॥ ३४७ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३४८ ॥

उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे अनुपशामक अप्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३४९ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें अप्रमत्तसंयतोंसे प्रमत्तसंयत जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३५० ॥

गुणकार क्या है ? दो रूप गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें प्रमत्तसंयतोंसे संयतासंयत जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५१ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें संयतासंयतोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३५२ ॥

---

१ औपशमिकसम्यग्दृष्टीनां सर्वतः स्तोकाश्चत्वार उपशमकाः । स. सि. १, ८

२ अप्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८ ३ प्रमत्ताः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

४ संयतासंयताः (अ) संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

५ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे उवसमसम्मत्तस्स भेदो णत्थि ॥ ३५३ ॥

सुगममेदं ।

सासणसम्मादिट्ठि-सम्मा(मिच्छादिट्ठि) मिच्छादिट्ठीणं णत्थि अप्पाबहुअं ॥ ३५४ ॥

कुदो ? एगपदत्तादो ।

एवं सम्मत्तमग्गणा समत्ता ।

सण्णियाणुवादेण सण्णीसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव खीणकसाय-वीदरागछदुमत्था त्ति ओघं ॥ ३५५ ॥

जधा ओघम्हि अप्पाबहुगं परूविदं तधा एत्थ परूवेदव्वं, सण्णित्तं पडि उह यत्थ भेदाभावा । विसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणदि–

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्त संयत गुणस्थानमें उपशमसम्यक्त्वका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५३ ॥

यह सूत्र सुगम है ।

सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका अल्पबहुत्व नहीं है ॥ ३५४ ॥

क्योंकि तीनों प्रकारके जीवोंके एक गुणस्थानरूप ही पद है ।

इस प्रकार सम्यक्त्वमार्गणा समाप्त हुई ।

संज्ञिमार्गणाके अनुवादसे संज्ञियोंमें मिथ्यादृष्टि गुणस्थानसे लेकर क्षीणकषाय-वीतरागछद्मस्थ गुणस्थान तक जीवोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३५५ ॥

जिस प्रकार ओघमें इन गुणस्थानोंका अल्पबहुत्व कहा है उसी प्रकार यहां पर भी प्ररूपण करना चाहिए, क्योंकि [illegible] नहीं है । अब संज्ञियोंमें [illegible] प्रतिपादनके लिए [illegible] सूत्र कहते हैं

[illegible]

[illegible]

सवा सखेज्जगुणा ॥ ३६० ॥

अट्टुत्तरसदपमाणत्तादो।
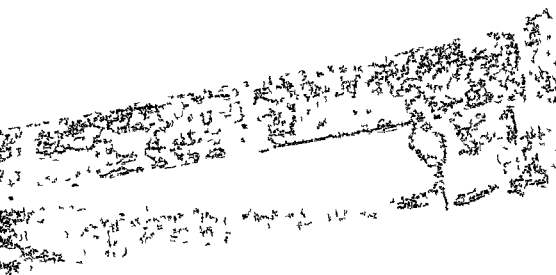
खीणकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ॥ ३६१ ॥

सुगममद।

सजोगिकेवली पवेसणेण तत्तिया चेव ॥ ३६२ ॥

सजोगिकेवली अद्ध पडुच्च सखेज्जगुणा ॥ ३६३ ॥

अप्पमत्तसजदा अक्खवा अणुवसमा सखेज्जगुणा ॥ ३६४ ॥

पमत्तसजदा सखेज्जगुणा ॥ ३६५ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि।

सजदासजदा असखेज्जगुणा ॥ ३६६ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असखेज्जदिभागो।

सासणसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ ३६७ ॥

सम्मामिच्छादिट्ठी सखेज्जगुणा ॥ ३६८ ॥

आहारकोंमें उपशान्तकषायवीतरागछद्मस्थोंसे क्षपक जीव सख्यातगुणित है ॥ ३६० ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण एक सौ आठ है।

आहारकोंमें क्षीणकषायवीतरागछद्मस्थ जीव पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६१ ॥

यह सूत्र सुगम है।

आहारकोंमें सयोगिकेवली जिन प्रवेशकी अपेक्षा पूर्वोक्त प्रमाण ही हैं ॥ ३६२ ॥

सयोगिकेवली जिन सचयकालकी अपेक्षा सख्यातगुणित हैं ॥ ३६३ ॥

सयोगिकेवली जिनोंसे अक्षपक और अनुपशामक अप्रमत्तसयत जीव सख्यातगुणित हैं ॥ ३६४ ॥

अप्रमत्तसयतोंसे प्रमत्तसयत जीव सख्यातगुणित हैं ॥ ३६५ ॥

ये सूत्र सुगम है।

आहारकोंमें प्रमत्तसयतोंसे सयतासयत जीव असख्यातगुणित हैं ॥ ३६६ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असख्यातवां भाग गुणकार है।

आहारकोंमें सयतासयतोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित हैं॥३६७॥

सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सख्यातगुणित हैं ॥ ३६८ ॥

८]

असजदसम्मादिट्ठी असखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असजदसम्मादिट्ठि-सजदासजद पमत्त-अपमत्तसजदट्ठाणे सम्मत्त प्पाबहुअमोघ ॥ ३७१ ॥

एव तिसु अद्धासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा सखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सट्ठिपमाणत्तादो ।

अजोगिकेवली सखेज्जगुणा[1] ॥ ३७६ ॥

कुदो ? छुरूऊणछस्सदपमाणत्तादो ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असयतसम्यग्दृष्टि जीव असख्यातगुणित है ॥ ३६९ ॥

असयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७० ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

आहारकोंमें असयतसम्यग्दृष्टि, सयतासयत, प्रमत्तसयत और अप्रमत्तसयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३७३ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव सख्यातगुणित हैं ॥ ३७४ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

अनाहारकोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ ३७५ ॥

क्योंकि उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकोंमें अयोगिकेवली जिन सख्यातगुणित हैं ॥ ३७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण दो कम छह सौ अर्थात् पाच सौ अट्ठानवे (५९८) है ।

---

१ अनाहारकाणा सर्व स्तोका सयोगकेवलिन । स सि १, ८

२ अयोगकेवलिन सख्येयगुणा । स सि १, ८

सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[1] ॥ ३७७ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा[2] ॥ ३७८ ॥

को गुणगारो ? आवलियाए असंखेज्जदिभागो ।

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा[3] ॥ ३७९ ॥

को गुणगारो ? अभवसिद्धिएहि अणंतगुणो, सिद्धेहि वि अणंतगुणो, अणंताणि सव्वजीवरासिपढमवग्गमूलाणि ।

असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ॥ ३८० ॥

कुदो ? संखेज्जजीवपमाणत्तादो ।

अनाहारकोंमें अयोगिकेवली जिनोंसे सासादनसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३७७ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोंमें सासादनसम्यग्दृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३७८ ॥

गुणकार क्या है ? आवलीका असंख्यातवां भाग गुणकार है ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७९ ॥

गुणकार क्या है ? अभव्यसिद्धोंसे अनन्तगुणित, सिद्धोंसे भी अनन्तगुणित राशि गुणकार है, जो सर्व जीवराशिके अनन्त प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सबसे कम हैं ॥ ३८० ॥

क्योंकि, अनाहारक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवोंका प्रमाण संख्यात है ।

१ सासादनसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

२ असंयतसम्यग्दृष्टयोऽसंख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

३ मिथ्यादृष्टयोऽनन्तगुणाः । स. सि. १, ८.

असजदसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३६९ ॥

मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा ॥ ३७० ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

असजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद पमत्त-अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघं ॥ ३७१ ॥

एवं तिसु अद्धासु ॥ ३७२ ॥

सव्वत्थोवा उवसमा ॥ ३७३ ॥

खवा संखेज्जगुणा ॥ ३७४ ॥

एदाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ॥ ३७५ ॥

कुदो ? सट्ठिपमाणत्तादो ।

अजोगिकेवली संखेज्जगुणा[1] ॥ ३७६ ॥

कुदो ? दुरूऊणछस्सदपमाणत्तादो ।

सम्यग्मिथ्यादृष्टियोंसे असंयतसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३६९ ॥

असंयतसम्यग्दृष्टियोंसे मिथ्यादृष्टि जीव अनन्तगुणित हैं ॥ ३७० ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

आहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि, संयतासंयत, प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७१ ॥

इसी प्रकार अपूर्वकरण आदि तीन गुणस्थानोंमें सम्यक्त्वसम्बन्धी अल्पबहुत्व ओघके समान है ॥ ३७२ ॥

उक्त गुणस्थानोंमें उपशामक जीव सबसे कम हैं ॥ ३७३ ॥

उपशामकोंसे क्षपक जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३७४ ॥

ये सूत्र सुगम हैं ।

अनाहारकोंमें सयोगिकेवली जिन सबसे कम हैं ॥ ३७५ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण साठ है ।

अनाहारकोंमें अयोगिकेवली जिन संख्यातगुणित हैं ॥ ३७६ ॥

क्योंकि, उनका प्रमाण दो कम छह सौ अर्थात् पांच सौ अट्ठानवे (५९८) है ।

---

१ अनाहारकाणां [illegible] । स. सि. १, ८.

२ अयोगकेवलिनः संख्येयगुणाः । स. सि. १, ८.

परिशिष्ट

खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ॥ ३८१ ॥

को गुणगारो ? संखेज्जसमया ।

वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा ॥ ३८२ ॥

को गुणगारो ? पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, असंखेज्जाणि पलिदोवमस्स पढमवग्गमूलाणि ।

(एवं आहारमग्गणा समत्ता ।)

एवमप्पाबहुगाणुगमो त्ति समत्तमणिओगद्दारं ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें उपशमसम्यग्दृष्टियोंसे क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव संख्यातगुणित हैं ॥ ३८१ ॥

गुणकार क्या है ? संख्यात समय गुणकार है ।

अनाहारकोंमें असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंसे वेदकसम्यग्दृष्टि जीव असंख्यातगुणित हैं ॥ ३८२ ॥

गुणकार क्या है ? पल्योपमका असंख्यातवां भाग गुणकार है, जो पल्योपमके असंख्यात प्रथम वर्गमूलप्रमाण है ।

(इस प्रकार आहारमार्गणा समाप्त हुई ।)

इस प्रकार अल्पबहुत्वानुगम नामक अनुयोगद्वार समाप्त हुआ ।

परिशिष्ट

होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।

४३ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ३८

४४ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं। ३९

४५ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। ,, ४०

४६ असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजद त्ति मूलोघं ॥ [?]

४६ असंजदसम्मादिट्ठिप्पमत्त कदाचिर कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं। ४१

४७ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। ४२

४८ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। ,,

४९ संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं। ४३

५० एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

५१ उक्कस्सेण पुव्वकोडिपुधत्तं। ,, ४४

५२ पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्ताणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। ४५

५३ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं।

५४ उक्कस्सेण अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं। ,

५५ गदं गदिं पडुच्च अंतरं।

५६ गुणं पडुच्च उभयदो वि अंतरं, णिरंतरं।

५७ मणुसगदीए मणुस मणुसपज्ज[त्त] मणुसिणीसु मिच्छादिट्ठीणम[ंतरं] केवचिरं कालादो होदि, णाण[ाजीवं] पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।

५८ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

५९ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि।

६० सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं। ,,

६१ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो। ४८

६२ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं। ,,

६३ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। ,, ४९

६४ असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं। ५०

६५ एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

६६ उक्कस्सेण तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। ,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	जीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	७९
१३७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण खुद्दाभवग्गहणं ।	८०
१३८	उक्कस्सेण अड्ढाइज्जपोग्गलपरियट्टं ।	,,
१३९	तसकाइय-तसकाइयपज्जत्तएसु मिच्छादिट्ठी ओघं ।	,,
१४०	सासणसम्मादिट्ठि सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	,,
१४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	८१
१४२	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ।	,,
१४३	असंजदसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	८२
१४४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	८३
१४५	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ।	
१४६	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	
१४७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	
१४८	उक्कस्सेण बे सागरोवमसहस्साणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि, बे सागरोवमसहस्साणि देसूणाणि ।	
१४९	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं ।	८६
१५०	सजोगिकेवली ओघं ।	,,
१५१	तसकाइयअपज्जत्ताणं पंचिंदियअपज्जत्तभंगो ।	,,
१५२	एदं कायं पडुच्च अंतरं । गुणं पडुच्च उभयदो वि णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१५३	जोगाणुवादेण पंचमणजोगि पंचवचिजोगीसु कायजोगि ओरालियकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि असंजदसम्मादिट्ठि-संजदासंजद-पमत्त—अप्पमत्तसंजद-सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	८७
१५४	सासणसम्मादिट्ठि सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	
१५५	उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।	८८
१५६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	णिरंतरं ।	८८
१५७	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	,,
१५८	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	८९
१५९	चदुण्हं खवाणमोघं ।	,,
१६०	ओरालियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१६१	सासणसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	,,
१६२	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	९०
१६३	असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१६४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
१६५	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१६६	सजोगिकेवलीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९१
१६७	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
१६८	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१६९	वेउव्वियकायजोगीसु चदुण्णं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	णीणं मणजोगिभंगो ।	९१
१७०	वेउव्वियमिस्सकायजोगीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
१७१	उक्कस्सेण बारस मुहुत्तं ।	९२
१७२	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१७३	सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	,,
१७४	आहारकायजोगीसु आहारमिस्सकायजोगीसु पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	९३
१७५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
१७६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
१७७	कम्मइयकायजोगीसु मिच्छादिट्ठि-सासणसम्मादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठि सजोगिकेवलीणं ओरालियमिस्सभंगो ।	,,
१७८	वेदाणुवादेण इत्थिवेदेसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं ।	९४
१७९	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	,,
१८०	उक्कस्सेण पणवण्ण पलिदोवमाणि देसूणाणि ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१०५
२०५	उक्कस्सेण वास पुधत्तं।	१०६
२०६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	”
२०७	णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीण-मंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१०६
२०८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१०७
२०९	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरो-वमाणि देसूणाणि।	”
२१०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामिदो त्ति मूलोघं।	”
२११	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१०९
२१२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	”
२१३	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	”
२१४	अवगदवेदएसु अणियट्टिउव-सम-सुहुमउवसमाणमंतरं केव-चिरं कालादो होदि, णाणा-जीवं पडुच्च जहण्णेण एग-समयं।	”
२१५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	”
२१६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	११०
२१७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।	११०
२१८	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था-णमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	”
२१९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	”
२२०	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं।	१११
२२१	अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।	”
२२२	सजोगिकेवली ओघं।	”
२२३	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोह-कसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा त्ति मणजोगिभंगो।	”
२२४	अकसाईसु उवसंतकसायवीद-रागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	११३
२२५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	”
२२६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	”
२२७	खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं।	”
२२८	सजोगिकेवली ओघं।	”
२२९	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि-सुदअण्णाणि—विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
	पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१०५
२०५	उक्कस्सेण वासं सादिरेयं ।	१०६
२०६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
२०७	णउंसयवेदएसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१०६
२०८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	१०७
२०९	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि ।	,,
२१०	सासणसम्मादिट्ठिप्पहुडि जाव अणियट्टिउवसामिदो त्ति मूलोघं ।	,,
२११	दोण्हं खवाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१०९
२१२	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
२१३	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
२१४	अवगदवेदएसु अणियट्टिउवसम-सुहुमउवसमाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
२१५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
२१६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	११०
२१७	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	११०
२१८	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	,,
२१९	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
२२०	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं ।	१११
२२१	अणियट्टिखवा सुहुमखवा खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ।	,,
२२२	सजोगिकेवली ओघं ।	,,
२२३	कसायाणुवादेण कोधकसाइ-माणकसाइ-मायकसाइ-लोहकसाईसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव सुहुमसांपराइयउवसमा खवा त्ति मणजोगिभंगो ।	,,
२२४	अकसाईसु उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	११३
२२५	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	,,
२२६	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	,,
२२७	खीणकसायवीदरागछदुमत्था अजोगिकेवली ओघं ।	,,
२२८	सजोगिकेवली ओघं ।	,,
२२९	णाणाणुवादेण मदिअण्णाणि सुदअण्णाणि-विभंगणाणीसु मिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं	

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३०५	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	१४७
३०६	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	१४८
३०७	उक्कस्सेण बे अट्ठारस सागरोवमाणि सादिरेयाणि ।	"
३०८	संजदासंजद पमत्त-अप्पमत्त-संजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
३०९	सुक्कलेस्सिएसु मिच्छादिट्ठि-असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१४९
३१०	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३११	उक्कस्सेण एक्कत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि ।	"
३१२	सासणसम्मादिट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च ओघं ।	"
३१३	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो, अंतोमुहुत्तं ।	"
३१४	उक्कस्सेण एक्कत्तीस सागरोवमाणि देसूणाणि ।	१५०
३१५	संजदासंजद-पमत्तअप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणेगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	१५१
३१६	अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
३१७	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३१८	उक्कस्समंतोमुहुत्तं ।	"
३१९	तिण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१५२
३२०	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३२१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३२२	उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।	"
३२३	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्थाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं ।	१५३
३२४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं ।	"
३२५	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं ।	"
३२६	चदुण्हं खवा ओघं ।	"
३२७	सजोगिकेवली ओघं ।	१५४
३२८	भवियाणुवादेण भवसिद्धिएसु मिच्छादिट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति ओघं ।	"

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३२९	अभवसिद्धियाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५४
३३०	एगजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
३३१	सम्मत्ताणुवादेण सम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५५
३३२	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	
३३३	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	,,
३३४	संजदासंजदप्पहुडि जाव उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था ओधिणाणिभंगो।	,,
३३५	चदुण्हं खवगा अजोगिकेवली ओघं।	,,
३३६	सजोगिकेवली ओघं।	१५६
३३७	खइयसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
३३८	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
३३९	उक्कस्सेण पुव्वकोडी देसूणं।	,,
३४०	संजदासंजद पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	१५७
३४१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	
३४२	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	
३४३	चदुण्हमुवसामगाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च जहण्णेण एगसमयं।	१
३४४	उक्कस्सेण वासपुधत्तं।	,,
३४५	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	,,
३४६	उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि।	,,
३४७	चदुण्हं खवा अजोगिकेवली ओघं।	१६१
३४८	सजोगिकेवली ओघं।	,,
३४९	वेदगसम्मादिट्ठीसु असंजदसम्मादिट्ठीणं सम्मादिट्ठिभंगो।	१६२
३५०	संजदासंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं, णिरंतरं।	,,
३५१	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	
३५२	उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि देसूणाणि।	,,
३५३	पमत्त अप्पमत्तसंजदाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि, णाणाजीवं पडुच्च णत्थि अंतरं णिरंतरं।	१६३
३५४	एगजीवं पडुच्च जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।	१६०

भावपरूवणासुत्ताणि ।

अप्पाबहुगपरूवणासुत्ताणि।

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
४१	तिरिक्खगदीए तिरिक्ख पंचिं दियतिरिक्ख–पंचिदियपज्जत्त तिरिक्ख–पंचिंदियजोणिणीसु सव्वत्थोवा संजदासंजदा ।	२६८
४२	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्ज गुणा ।	,,
४३	सम्मामिच्छादिट्ठिणो संखेज्ज गुणा ।	,,
४४	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज गुणा ।	,,
४५	मिच्छादिट्ठी अणंतगुणा, मिच्छा दिट्ठी असंखेज्जगुणा ।	२६९
४६	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्व त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	,,
४७	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज– गुणा ।	२७०
४८	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज गुणा ।	२७१
४९	संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	,,
५०	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज गुणा ।	२७२
५१	णवरि विसेसो, पंचिंदिय तिरिक्खजोणिणीसु असंजद सम्मादिट्ठि संजदासंजदट्ठाणे सव्व त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	,
२	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्ज गुणा ।	,
५३	मणुसगदीए मणुस मणुसपज्जत्त मणुसिणीसु तिसु अद्धासु उव समा पवेसणेण तुल्ला थोवा ।	,,
५४	उवसंतकसायवीदरागछदुमत्था तत्तिया चेव ।	२७३
५५	खवा संखेज्जगुणा ।	,,
५६	खीणकसायवीदरागछदुमत्था त त्तिया चेव ।	२७४
५७	सजोगिकेवली अजोगिकेवली पवेसणेण दो वि तुल्ला, तत्तिया चेव ।	,,
५८	सजोगिकेवली अद्धं पडुच्च संखेज्जगुणा ।	,,
५९	अप्पमत्तसंजदा अक्खवा अणु वसमा संखेज्जगुणा ।	,,
६०	पमत्तसंजदा संखेज्जगुणा ।	२७५
६१	संजदासंजदा संखेज्जगुणा ।	,,
६२	सासणसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	,,
६३	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	,,
६४	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७६
६५	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा, मिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	
६६	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्व त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	,
६७	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	
६८	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	२७७
६९	संजदासंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइयसम्मादिट्ठी ।	
७०	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा ।	,,

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
७१	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७७
७२	पमत्त अप्पमत्तसंजदट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२७८
७३	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
७४	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
७५	णवरि विसेसो, मणुसिणीसु असंजद संजदासंजद पमत्तापमत्त-संजदट्ठाणे सव्वत्थोवा खइय-सम्मादिट्ठी।	,,
७६	उवसमसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
७७	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२७९
७८	एवं तिसु अद्धासु।	,,
७९	सव्वत्थोवा उवसमा।	२७९
८०	खवा संखेज्जगुणा।	२८०
८१	देवगदीए देवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	,,
८२	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
८३	असंजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज-गुणा।	,,
८४	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	,,
८५	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्व त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	,,
८६	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	,,
८७	वेदगसम्मादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८१
८८	भवणवासिय-वाणवेंतर-जोदिसियदेवा देवीओ सोधम्मीसाण-कप्पवासियदेवीओ च सत्तमाए पुढवीए भंगो।	,,
८९	सोहम्मीसाण जाव सदार-सहस्सारकप्पवासियदेवेसु जहा देवगइभंगो।	२८२
९०	आणद जाव णवगेवज्जविमाण-वासियदेवेसु सव्वत्थोवा सासणसम्मादिट्ठी।	२८३
९१	सम्मामिच्छादिट्ठी संखेज्ज गुणा।	,,
९२	मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	,,
९३	असंजदसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
९४	असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्व-त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२८४
९५	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज-गुणा।	,,
९६	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	२८५
९७	अणुदिसादि जाव अवराइद-विमाणवासियदेवेसु असंजद-सम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	,,
९८	खइयसम्मादिट्ठी असंखेज्ज-गुणा।	,,
९९	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
१००	सव्वट्ठसिद्धिविमाणवासियदेवेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्व-त्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी।	२८६
१०१	खइयसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
१०२	वेदगसम्मादिट्ठी संखेज्जगुणा।	,,
१०३	इंदियाणुवादेण पंचिंदिय पंचिं-दियपज्जत्तएसु ओघं। णवरि मिच्छादिट्ठी असंखेज्जगुणा।	२८८

सूत्र संख्या	सूत्र	पृष्ठ
३६५	पमत्तसजदा संखेज्जगुणा ।	३४७
३६६	सजदासजदा असंखेज्जगुणा ।	,,
३६७	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्ज गुणा ।	,,
३६८	सम्मामिच्छादिट्ठी सखेज्ज-गुणा ।	,,
३६९	असजदसम्मादिट्ठी असंखेज्ज-गुणा ।	३४८
३७०	मिच्छादिट्ठी अणतगुणा ।	,,
३७१	असजदसम्मादिट्ठि--सजदा--सजद--पमत्त--अप्पमत्तसजद--ट्ठाणे सम्मत्तप्पाबहुअमोघ ।	,,
३७२	एव तिसु अद्धासु ।	,,
३७३	सव्वत्थोवा उवसमा ।	,,
३७४	खवा सखेज्जगुणा ।	३४८
३७५	अणाहारएसु सव्वत्थोवा सजोगिकेवली ।	,,
३७६	अजोगिकेवली सखेज्जगुणा ।	,,
३७७	सासणसम्मादिट्ठी असंखेज्ज-गुणा ।	३४९
३७८	असजदसम्मादिट्ठी असखेज्ज-गुणा ।	,,
३७९	मिच्छादिट्ठी अणतगुणा ।	,,
३८०	असजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे सव्वत्थोवा उवसमसम्मादिट्ठी ।	,,
३८१	खइयसम्मादिट्ठी सखेज्जगुणा ।	३५०
३८२	वेदगसम्मादिट्ठी असखेज्ज-गुणा ।	,,

२ अवतरण-गाथा-सूची

(भावप्ररूपणा)

क्रम सख्या	गाथा	पृष्ठ	अन्यत्र कहां
१	अप्पिदआदरभावो	१८६	
११	इगिवीस अट्ठ तह णव	१९२	
१२	एक्कोत्तरपदवृद्धो	१९३	
१०	एय ठाण तिण्णि वियं	१९२	
५	ओदइओ उवसमिओ	१८७	
४	खवए य खीणमोहे	१८६	षट्खडा वेदनाखड गो जी ६७
६	गदि लिंग कसाया वि	१८९	
९	णाणण्णाण च तहा	१९१	
२	णामिणि धम्मुवयारो	१८६	
१४	दसे खभायसमिए	१९४	
१३	मिच्छत्त दस भगा	,,	
८	लद्धीओ सम्मत्त	१९१	
३	सम्मत्तुप्पत्तीय वि	१८६	षट्खडा वेदनाखड, गो जी ६६.
७	सम्मत्त चारित्त दो	१९०	

५ पारिभाषिक शब्दसूची